# निवेदन

( तीसरे संस्करण से )

प्रस्तुत पुस्तक लिखना सन् १९४० में आरम्भ हुआ था। सबसे पहले 'रचना बोध' नाम से रचना का प्रारम्भिक ज्ञान करानेवाली छोटी-सी पुस्तक सन् १९४२ मे प्रकाशित की गयी जिसके पाँच संस्करण हो चुके हैं। इसका संशोधित-परिवर्द्धित संस्करण 'सुबोध हिंदी व्याकरण' नाम से बम्बई हिंदी-विद्यापीठ ने सन् १९४३ मे अपनी परीक्षाओं के लिए प्रकाशित किया। सन् १९४५ मे प्रस्तुत पुस्तक का प्रथम संस्करण छपा जो साल भर के भीतर ही समाप्त हो गया। जनवरी १९४८ मे यह पुस्तक दूसरी बार छपी, अक्टूबर मे तीसरी बार और अब यह चौथा संस्करण है। इसमे प्राय: उन सभी विषयों पर प्रकाश डाला गया है जिनका ज्ञान हाई-स्कूल एवं समकक्ष परीक्षाओं के छात्रों को होना चाहिए।

प्रस्तुत पुस्तक मे नमूने के लिए प्रतिष्ठित विद्वानों के चुने हुए लगभग पचास छोटे छोटे लेख संकलित हैं जिनके विषयों से प्राय: सभी विद्यार्थी परिचित हैं। ये लेख बड़े रोचक ढंग से विषयानुकूल शैली मे लिखे गये हैं। विश्वास है कि सुन्दर निबंध लिखने की इच्छा रखने वाले सभी विद्यार्थी इन्हे बार-बार पढ़ेंगे, रसास्वादन करेंगे और उन्हीं की तरह सुन्दर लेख लिखने को प्रयत्नशील होंगे। भाव-पूर्ण और सरस गद्यकाव्यों से उनका परिचय कदाचित सबसे पहले इसी पुस्तक के द्वारा हो सकेगा। इनसे उनका पर्याप्त मनोरंजन भी होगा।

प्रस्तुत पुस्तक में साठ निबंधों की विस्तृत रूपरेखाएँ हैं। इनको

देने का मुख्य उद्देश्य यह है कि विद्यार्थियों को विषय समझने में सुविधा हो और इन संकेतों के वाक्य बनाने से ही उनका संगठित लेख तैयार हो जाय। चार या पाँच संकेत प्रत्येक लेख के लिए हैं। इतने ही परिच्छेदों में निबंध लिखने का विद्यार्थी प्रयत्न करें।

इस पुस्तक से छात्रों का मनोरंजन तो होगा ही और इच्छा होने पर इससे वे लाभ भी उठायेंगे--इसका मुझे विश्वास है। परन्तु अपना श्रम मैं सार्थक तब समझूँगा जब कुछ चुने विद्यार्थी आवश्यक परिश्रम करके रचना-सम्बंधी विस्तृत ज्ञान प्राप्त करने को प्रस्तुत होंगे। ऐसी पुस्तकों की सार्थकता भी तभी समझनी चाहिए।

बम्बई विद्यापीठ और भारतीय विद्यापीठ की परीक्षाओं के लिए यह पुस्तक स्वीकृत है। इसके लिए मैं उनकी परीक्षा-समिति का कृतज्ञ हूँ। और जिन विद्वानों के सुन्दर लेख इस पुस्तक में संकलित हैं उनका हृदय से आभारी हूँ।

—लेखक

## चतुर्थ संस्करण के सम्बन्ध में

इस बार प्रस्तुत पुस्तक में लगभग ६० पृष्ठ बढ़ाये गये हैं। पिछली बार से छपाई भी सुन्दर है। फिर भी पुस्तक का मूल्य हमने नहीं बढ़ाया है। आशा है, विद्यार्थी वर्ग इससे विशेष लाभ उठायगा।

—प्रकाशक

# विषय-सूची

# (१) व्याकरण–सार

भाषा संसार के व्यवहार का मूल है। इसके द्वारा हम अपने मन के विचार प्रकट करते हैं विचार दो तरह से प्रकट किये जाते हैं—बोल कर और लिख कर। इसी से भाषा के भी दो रूप हो जाते हैं—(१) बोलने की भाषा या बोली (२) लिखने की भाषा या लिपि। बोलते समय हमें समझ–बूझकर अपने विचार प्रकट करने का उतना समय नहीं मिलता जितना लिखते समय मिलता है। बोलने और लिखने की भाषा में इसी कारण भेद हो जाता है कि बोलते समय हम उतने सावधान नहीं रहते जितना लिखते समय रहते हैं। लिखने की भाषा इसी लिए बोली से अधिक शुद्ध और सजी हुई होती है।

बोलने और लिखने की भाषा 'ध्वनि' या अक्षरों से बनती हैं। अक्षरों से 'शब्द' बनते हैं और कई शब्दों के जिस समूह द्वारा हम अपना ठीक–ठीक मतलब दूसरों को समझाते हैं उसे 'वाक्य' कहते हैं। इसलिए भाषा का सम्बन्ध वर्ण (अक्षर), शब्द और वाक्य से होता है। किसी भाषा का 'व्याकरण' जानने का उद्देश्य यही है कि उसके अक्षरों शब्दों और वाक्यों का पूरा–पूरा ज्ञान हो जाय। इसी से व्याकरण के मुख्य तीन भाग हैं—(१) वर्ण विभाग—अक्षरों या वर्णों का रूप, उनका उच्चारण, उनके मिलाने की रीति आदि। (२) शब्द विभाग–शब्दों की बनावट, उनका रूप और भेद आदि। (३) वाक्य-विचार–वाक्यों की बनावट, उनका आकार–प्रकार और रूप।

## वर्ण–विभाग

वर्ण या अक्षर उस चिह्न को कहते हैं जो किसी ध्वनि को पहचानने के लिए बनाया गया है। इनकी लिखावट 'लिपि' कहलाती है। वर्णों

या अक्षरों के समूह को 'वर्णमाला' कहते हैं। सभी वर्णमालाओं में दो प्रकार के वर्ण होते हैं। एक, जिनके उच्चारण के लिए दूसरे वर्ण की सहायता नहीं ली जाती। इन्हे 'स्वर' कहते है। वर्ण का दूसरा प्रकार 'व्यजन' कहलाता है। इनका उच्चारण स्वर की सहायता से ही होता है। हिन्दी वर्णमाला में ४४ वर्ण होते हैं—

(१) स्वर—अ आ इ ई उ ऊ ऋ ए ऐ ओ औ।

इनकी मात्राएँ— ा ि ी ु ू ृ े ै ो ौ

विशेष—इन ११ के अतिरिक्त अं ( ं ) और अः ( ः ) भी स्वर ही माने जाते हैं।

(२) व्यंजन—क ख ग घ ङ (कवर्ग)

च छ ज झ ञ (चवर्ग) ट ठ ड ढ ण (टवर्ग)

त थ द ध न (तवर्ग) प फ ब भ म (पवर्ग)

य र ल व (अतस्थ) श ष स ह (ऊष्म)

विशेष—टवर्ग के ड (जैसे—डर) और ढ (जैसे—ढकना) के नीचे बिंदी लगाने पर ड़ (जैसे—बड़ा) और ढ़ (जैसे—पढ़ना) बना लेते हैं।

## स्वरों के भेद

किसी स्वर के उच्चारण में कम समय लगता है और किसी में ज्यादा। इस उच्चारण-काल के अनुसार स्वरों के दो भेद किए जाते हैं—(१) ह्रस्व या एकमात्रिक स्वर—जिस स्वर के उच्चारण में थोड़ा समय लगे। अ इ उ ऋ ये ह्रस्व स्वर हैं। (२) दीर्घ स्वर—जिस स्वर के उच्चारण में ह्रस्व स्वर से दुगुना समय लगे। आ ई ऊ ए ऐ ओ औ अं अः—ये स्वर दीर्घ हैं। इन्हें 'गुरु' या 'द्विमात्रिक' भी कहते हैं।

विशेष—उच्चारण-काल के अनुसार स्वरों का एक तीसरा भेद प्लुत स्वर भी है। इसके उच्चारण मे ह्रस्व स्वर से तिगुना समय लगता है। यह केवल पुकारने के काम आता है। जैसे ओ राम! हिन्दी मे इसका व्यवहार बहुत कम होता है।

उत्पत्ति के अनुसार भी स्वरों के दो भेद होते हैं—(१) मूल स्वर-जिनकी उत्पत्ति अन्य स्वरों से न हुई हो; जैसे अ इ उ ऋ। (२) संधि स्वर—जिनकी उत्पत्ति मूल स्वरों के मेल से होती है· जैसे, ए ऐ ओ औ।

जाति के अनुसार भी स्वरों के दो भेद होते हैं—( १ ) सवर्ण या सजातीय स्वर—जिन स्वरों का स्थान और प्रयत्न समान होता है—अ आ इ ई उ ऊ। (२) असवर्ण या विजातीय स्वर—भिन्न स्थान और प्रयत्न वाले स्वरों के मिलने से जो स्वर बनते हैं, ए=(अ+इ), ऐ=( अ या आ+ए ), ओ=( अ+उ ), औ=( अ या आ+ओ )।

## व्यंजनों के भेद

कुछ व्यंजनों के उच्चारण में थोड़ा प्रयत्न करना होता है और कुछ में अधिक। इस उच्चारण-श्रम के अनुसार व्यंजन दो प्रकार के होते हैं— ( १ )अल्प प्राण व्यंजन—जिस व्यंजन के उच्चारण मे थोड़ा प्रयत्न किया जाय। इस प्रकार के व्यजनों मे हकार ध्वनि नहीं होती—जैसे क, ख, ग, च, ज, आदि। (२) महाप्राण व्यंजन—जिस ध्वनि के उच्चारण में अधिक प्रयत्न किया जाय। इस वर्ग के व्यंजन में हकार ध्वनि होती है। कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग और पवर्ग का पहला, तीसरा और पाँचवाँ वर्ण अल्पप्राण होता है और दूसरा तथा चौथा महाप्राण। अंतस्थ के चारों वर्ण अल्पप्राण और ऊष्म के महाप्राण होते हैं।

## संधि

एक अक्षर जब दूसरे से मिलता है तब इस मिलावट को 'संधि' कहते है। संधि होने से कभी तो एक अक्षर बदल जाता है, कभी दोनों मे परिवर्तन होता है और कभी दोनो के बदले तीसरा अक्षर आ जाता है। सधि तीन प्रकार की होती है—( १ ) स्वर सधि ( २ ) व्यंजन सधि ( ३ ) विसर्ग संधि।

### स्वर-संधि

दो स्वरों के पास पास आ जाने से जो संधि होती है उसे

'स्वर संधि' कहते हैं। इस सधि के मुख्य नियम ये है—

(१) जब दो सवर्ण स्वर, ( अ आ इ ई उ ऊ ) पास पास आ जाते हैं तो सधि होने पर दोनो के स्थान पर सवर्ण दीर्घ स्वर हो जाता है—परम + अर्थ ( अ + अ = आ ) परमार्थ । पुस्तक + आलय ( अ + आ = आ ) पुस्तकालय । विद्या + अध्ययन ( आ + अ = आ ) विद्याध्ययन । विद्या + आलय ( आ + आ = आ ) विद्यालय । रवि + इन्द्र ( इ + इ = ई ) रवीन्द्र । कवि + ईश्वर ( इ + ई = ई ) कवीश्वर । मही + इन्द्र ( ई + इ = ई ) महीन्द्र । मही + ईश ( ई + ई = ई ) महीश । शिशु + उपकार ( उ + उ = ऊ ) शिशूपकार । लघु + ऊर्मि ( उ + ऊ = ऊ ) लघूर्मि । वधू + उत्सव ( ऊ + उ = ऊ ) वधूत्सव । भू + उर्ध्व ( ऊ + ऊ = ऊ ) भूर्ध्व ।

( २ ) अ या आ के आगे इ या ई आने पर दोनों के स्थान मे 'ए' हो जाता है—गज + इन्द्र ( अ + इ = ए ) गजेन्द्र । परम + ईश्वर ( अ + ई = ए ) परमेश्वर । महा + इन्द्र ( आ + ई = ए ) महेन्द्र । रमा + ईश ( आ + ई = ए ) रमेश ।

( ३ ) अ या आ के आगे उ या ऊ आने पर दोनों के स्थान मे 'ओ' हो जाता है—धर्म + उपदेश ( अ + उ = ओ ) धर्मोपदेश । समुद्र + ऊर्मि ( अ + ऊ = ओ) समुद्रोर्मि । महा + उत्सव ( आ + उ = ओ ) महोत्सव । गंगा + ऊर्मि ( आ + ऊ = ओ ) गंगोर्मि ।

( ४ ) अ या आ के आगे ऋ आने पर अर् हो जाता है—ब्रह्म + ऋषि ( अ + ऋ = अर् ) ब्रह्मर्षि । महा + ऋषि ( आ + ऋ + अर् ) महर्षि ।

( ५ ) अ या आ के आगे ए या ऐ आने पर दोनों के स्थान मे 'ऐ' हो जाता है—एक + एक ( अ + ए = ऐ ) एकैक । परम + ऐश्वर्य ( अ + ए = ऐ ) परमैश्वर्य । तथा + एव ( आ + ए = ऐ ) तथैव । महा + ऐश्वर्य (आ + ऐ = ऐ ) महैश्वर्य ।

( ६ ) अ या आ के आगे ओ या औ आने पर दोनों के स्थान में 'औ' हो जाता है—जल + ओघ ( अ + ओ = औ) जलौघ। वन + औषध ( अ + औ = औ ) वनौषध। महा + ओज (आ + ओ = औ ) महौज। महा + औषध ( आ + औ = औ ) महौषध।

( ७ ) इ या ई के आगे इनके अतिरिक्त कोई स्वर आता है तो संधि होने पर इ या ई के स्थान में 'य्' हो जाता है।

यदि + अपि ( इ + अ = य् + अ ) यद्यपि। इति + आदि ( इ + आ = य् + आ ) इत्यादि। देवी + उचित ( ई + उ = य् + उ ) देव्युचित।

( ८ ) उ या ऊ के आगे इनके अतिरिक्त कोई स्वर आने पर उ ऊ के स्थान में य् हो जाता है—अनु + अय ( उ + अ = व् + अ ) अन्वय। सु + आगत ( उ + आ = व् + आ ) स्वागत। अनु + एषण ( उ + ए = व् + ए ) अन्वेषण। बहु + ऐश्वर्य ( उ + ऐ = व् + ऐ ) बह्वैश्वर्य।

( ९ ) ऋ के आगे इसके अतिरिक्त कोई स्वर आने पर ऋ का र् हो जाता है—पितृ + अर्थ ( ऋ + अ = र् + अ ) पित्रर्थ। पितृ + आनंद ( ऋ + अ = र् + आ ) पित्रानद।

( १० ) ए या ऐ के आगे दूसरा स्वर आने पर ए के स्थान में अय् और ऐ के स्थान में आय् हो जाता है—ने + अन ( ए + अ = अय् + अ) नयन। गै + अक। ( ऐ + अ = आय् + अ ) गायक।

( ११ ) ओ या औ के आगे इनके अतिरिक्त कोई स्वर आने पर ओ के स्थान में अव् और औ के स्थान में आव् हो जाता हैं—पो + अन ( ओ + अ = अव् + अ ) पवन। पौ + अक ( औ + अ = आव् + अ ) पावक। नौ + इक ( औ + इ = आव् + इ ) नाविक। गो + ईश ( ओ + ई = अव् + ई ) गवीश।

### स्वर-संधि के नियमों का सारांश

( १ ) सवर्ण + सवर्ण = दीर्घ सवर्ण। ( २ ) अ या आ + इ या

ई=ए ( ३ ) अ या आ + उ या ऊ=ओ ( ४ ) अ या अ + ऋ=अर् ( ५ ) अ य आ + ए या ऐ=ऐ ( ६ ) अ या आ + ओ या औ=औ ( ७ ) इ या ई + असवर्ण स्वर=य् ( ८ ) उ या ऊ + असवर्ण स्वर=व् ( ९ ) ऋ + असवर्ण स्वर=र् ( १० ) ( क ) ए + भिन्न स्वर=अय् ( ख ) ऐ + भिन्न स्वर=आय् । ( ११ ) (क) ओ + भिन्न स्वर=अव् ( ख ) औ + भिन्न स्वर=आव् ।

## व्यंजन-संधि

संधि वाले वर्णों में पहला यदि व्यंजन होता है ( दूसरा चाहे स्वर हो या व्यंजन ) तो व्यजन-संधि कहलाती है । व्यंजन सधि के मुख्य नियम ये हैं—

१—किसी वर्ग के प्रथम अक्षर के आगे कोई स्वर, अंतस्थ वर्ण ( य र ल व ) या उसी वर्ग का तृतीय अक्षर आने पर उस प्रथम अक्षर के स्थान में उसी वर्ग का तृतीय अक्षर हो जाता है—वाक् + ईश ( क् + ई=ग् + ई=गी ) वागीश । दिक् + गज ( क् + ग=ग् + ग =ग्ग ) दिग्गज ।

२—किसी वर्ग के प्रथम अक्षर के आगे सानुनासिक वर्ण आने पर प्रथम वर्ण के स्थान पर उसी वर्ग का सानुनासिक हो जाता है—वाक् + मय ( क् + म=ङ् + म=ङ्म ) वाङ्मय ।

३—ह्रस्व स्वर के आगे छ आने पर च्छ हो जाता है—परि + छेद ( इ + छ=च्छ ) परिच्छेद । पद + छेद ( अ + छ=च्छ ) पदच्छेद ।

४—त् या द् के आगे—

| | | | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| च | या | छ | आने | पर | त् | या | द् | के | स्थान | में | च् |
| ज | या | झ | ,, | ,, | ,, | ,, | ,, | ,, | ,, | ,, | ज् |
| ट | या | ठ | ,, | ,, | ट् | ,, | ठ् | ,, | ,, | ,, | ट् |
| ड | या | ढ | ,, | ,, | ड् | ,, | ढ् | ,, | ,, | ,, | ड् |
| ल् | | | ,, | ,, | त् | ,, | द् | ,, | ,, | ,, | ल् |

हो जाता है ।

जैसे—उत् + चारण (त् + च = च्च) उच्चारण। उत् + छिन्न (त् + छ = च्छ) उच्छिन्न। उत + ज्वल (त् + ज् = ज्ज) उज्ज्वल। विपद् + जाल (द् + ज = ज्ज) विपज्जाल। उत् + लास (त् + ल = ल्ल) उल्लास।

५—त् के आगे कोई स्वर या ग घ द ध ब भ य र ल व में से कोई आवे तो त् के स्थान में द् हो जाता है—चित् + आनन्द (त् + आ = दा) चिदानन्द। भगवत + रूप (त् + रू = द्रू) भगवद्रूप।

६—स के पहले अ या आ के अतिरिक्त अन्य स्वर आने पर स का ष हो जाता है—वि + सम (इ + स = ष) विषम। नि + सिद्ध (इ + सि = षि) निषिद्ध।

७—च् के पहले स् आने पर स् के स्थान में श् होता—दुस् + चरित्र (स् + च् = श्च) दुश्चरित्र।

८—ट के पहले स् आने पर स् के स्थान में ष् होता है—दुस् + ट (स् + ट = ष्ट) दुष्ट।

९—किसी वर्ग के प्रथम अक्षर के आगे ह आने पर प्रथम अक्षर के स्थान में उसी वर्ग का तृतीय और ह के स्थान में चतुर्थ अक्षर हो जाता है। वाक् + हि (क् + ह = ग्घ) वाग्घि।

विशेष—संस्कृत में व्यञ्जन-संधि के नियम बहुत विस्तार से हैं। हिंदी में इतने से ही काम चल जाता है।

## विसर्ग-संधि

विसर्ग (ः) के साथ स्वर या व्यंजन की सधि विसर्ग संधि कहलाती है। इसके मुख्य नियम ये हैं—

१—विसर्ग के पूर्व और पीछे अ आने पर तीनों मिलकर ओ होते हैं—यशः + अभिलाषी (अः + अ = ओ) यशोभिलाषी।

२—विसर्ग के पूर्व अ आने पर तथा पीछे अ के अतिरिक्त अन्य स्वर आने पर विसर्ग का लोप हो जाता है—अतः + एव (अः + ए = अए) अतएव।

३—विसर्ग के पूर्व अ आने पर और पीछे किसी वर्ग का तीसरा, चौथा, पाँचवाँ, अतस्थ वर्ण, ह आने पर 'ओ' हो जाता है—वयः + वृद्ध ( अः + व = ओ ) वयोवृद्ध ।

४—विसर्ग के पूर्व इ या उ और पीछे क ख प फ आने पर विसर्ग का ष हो जाता है—निः + काम ( इः + क = ष्क ) निष्काम ।

५—विसर्ग के पूर्व ह्रस्व स्वर और पीछे र आने पर ह्रस्व तो दीर्घ हो जाता है और विसर्ग लुप्त—निः + रस ( इ + र = ईर ) नीरस ।

६—विसर्ग से पीछे—

च या छ आने पर विसर्ग के स्थान में श हो जाता है ।

ट या ठ ,, ,, ,, ष् ,,

त या थ ,, ,, ,, स् ,,

जैसे—निः + चल ( : + च = श्च ) निश्चल । मनः + ताप ( : + त = स्त ) मनस्ताप ।

७—विसर्ग के आगे क ख प फ आने पर कोई परिवर्तन नहीं होता—रजः + कण ( : + क = : क ) रजःकण ।

८—विसर्ग के आगे श ष स आने पर या तो कोई परिवर्तन नही होता या विसर्ग के स्थान में आगे आने वाला वर्ण ही हो जाता है—निः + सकोच ( : + स = स्स ) निस्सकोच । निः + सदेह ( : + स = स्स ) निस्सदेह ।

### अभ्यास

नायक, सदैव, महात्मा, महेश, सुरेश, वधूत्सव, संतोष दिगम्बर, शरच्चद्र, नीरोग, निष्फल, निस्सार—इन शब्दों की संधि तोड़िए और नियम भी लिखिए ।

## शब्द-विचार

शब्दों के भेद, उनके रूपातर, उनकी व्युत्पत्ति और उनके प्रयोग का अध्ययन 'शब्द विचार' कहलाता है । एक या अधिक अक्षरों के जिस समूह से हम कुछ अर्थ समझते हैं उसे 'शब्द' कहते हैं ; जैसे मै,

व, घर, घोड़ा, लड़का, अजगर। एक या अधिक अक्षरों के मेल से कुछ ध्वनियाँ ऐसी बनती हैं जिनका स्वयं तो कोई विशेष अर्थ नहीं होता; पर वे जब अन्य शब्दों के साथ जोड़ी जाती हैं तब सार्थक हो जाती हैं। इन्हें 'शब्दांश' कहते हैं। ता, पन, वाला आदि ऐसी ही ध्वनियाँ हैं।

हिन्दी में अन्य कई भाषाओं के शब्द काम में आते हैं। मुख्यतः ये शब्द ६ प्रकार के होते हैं—

१ तत्सम—ऐसे शब्द जो सीधे संस्कृत से हमारी भाषा में आए हैं। आज कल हमारी भाषा में ऐसे शब्दों का प्रयोग दिन-दिन बढ़ता जा रहा है। वत्स, कार्य, अक्षर, रात्रि, अग्नि, माता आदि तत्सम शब्द हैं।

२ अर्ध तत्सम—संस्कृत के जिन शब्दों का रूप बिगड़ गया है; जैसे बच्छ, कारज, अच्छर, रात, अगिन।

३ तद्भव—जो शब्द सीधे प्राकृत से आए हैं या प्राकृत से होते हुए संस्कृत से निकले हैं; जैसे बच्चा, काज, अक्खर, आखर, आग, माँ।

४ देशज—जिन शब्दो की व्युत्पत्ति का ठीक-ठीक पता नहीं चलता; जैसे तेंदुआ, खिड़की, ठेस।

५ अनुकरण या ध्वनिवाचक—जो शब्द किसी पदार्थ की ठीक या कल्पित ध्वनि पर बने हैं; जैसे खटखटाना, चटचटाना, फड़फड़ाना।

६ विदेशज—अरबी, फारसी या अँगरेजी आदि विदेशी भाषाओं के जो शब्द हिन्दी में प्रचलित हो गए हैं, जैसे रेल, कोट, लालटेन।

## शब्दो के भेद

अर्थ के अनुसार शब्दों के दो भेद होते हैं—(१) सार्थक शब्द—जिन शब्दो का कुछ अर्थ समझ में आता हो। जैसे गाय, मा, घोड़ा, बादल। (२) निरर्थक शब्द—जिन शब्दो का कोई अर्थ नहीं होता; जैसे बादल की गरज, आँय-बाँय।

अपना अर्थ प्रकट करने के लिए शब्द के रूप में जो परिवर्तन होता है उसे 'रूपान्तर' कहते हैं; जैसे लड़का, लड़के, लड़कों। रूपान्तर के

अनुसार शब्दों के दो भेद होते हैं—( १ ) विकारी शब्द—जिन शब्दों के रूप में परिवर्तन हो सकता है ; जैसे दूध, दूधिया, दूध वाला, दुधारी। ( २ ) अविकारी शब्द—जिन शब्दों के रूप में कोई परिवर्तन नहीं होता ; जो सदा एक ही से बने रहते हैं जैसे पर, कल, आज।

एक शब्द से प्रायः कई नए शब्द बनते हैं ; जिनके अर्थ में कुछ अन्तर रहता है। नए शब्द बनाने की इस क्रिया को 'व्युत्पत्ति' कहते हैं। जैसे दूध. दूधवाला, दूधिया, दुधार। व्युत्पत्ति के अनुसार शब्द तीन प्रकार के होते हैं—( १ ) रूढ़ शब्द—जो दूसरे शब्दों के योग से नहीं बनते ; जैसे नाक, पर, झट। ( २ ) यौगिक शब्द—दूसरे शब्दों के योग से बनने वाले शब्द जैसे दूधवाला, हिमालय, भारतवासी। ( ३ ) योगरूढ़ शब्द—दूसरे शब्दों से बनने वाले ऐसे शब्द जो विशेष अर्थ रखते हैं ; जैसे दशानन, पंकज। इन शब्दों का सीधा-सादा अर्थ है ( दश + आनन ) दस मुखवाला और ( पंक + ज ) -जल से पैदा होने वाला ; परन्तु इनका विशेष अर्थ है रावण और कमल।

प्रयोग के अनुसार शब्दों के भिन्न-भिन्न भेदों को 'शब्द भेद' कहते हैं। इन भेदों को बनाना इनका 'वर्गीकरण' कहलाता है। शब्दों के आठ भेद होते हैं—संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया, क्रियाविशेषण, सम्बन्धबोधक, समुच्चयबोधक, विस्मयादिबोधक। इन आठ शब्द-भेदों में प्रथम चार प्रकार अर्थात् संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण और क्रिया शब्द विकारी होते हैं, क्योंकि इनके रूप में परिवर्तन होता है। अंतिम चार में कोई परिवर्तन नहीं होता। इसलिए वे अविकारी या 'अव्यय' हैं।

## संज्ञा

किसी वस्तु या स्थान के नाम को या उसके गुण, स्वभाव और धर्म को बताने वाले शब्द 'संज्ञा' कहलाते हैं। संज्ञा शब्द तीन प्रकार के होते हैं—( १ ) जातिवाचक संज्ञा—जिस शब्द से पूरी एक जाति या समूहवाली वस्तु या स्थान का बोध हो ; जैसे लड़का, कलम, नगर, घोड़ा। ( २ ) व्यक्तिवाचक संज्ञा—जिस शब्द से एक ही विशेष व्यक्ति, वस्तु

या स्थान का ज्ञान होता है , जैसे राम, काशी, चेतक।

विशेष—( क ) कुछ जातिवाचक संज्ञाओं का प्रयोग व्यक्तिवाचक की तरह भी किया जाता है—देवी ने दर्शन दिए। गोस्वामीजी राम के अनन्य भक्त थे। महात्माजी ने उपवास किया था। इन वाक्यों मे देवी, गोस्वामी और महात्माजी शब्द क्रमशः दुर्गादेवी, तुलसीदास और गाँधीजी के लिए प्रयुक्त हैं। इसीलिए ये व्यक्तिवाचक संज्ञाएँ हैं।

( ख ) कभी-कभी व्यक्तिवाचक सज्ञाएँ जातिवाचक की तरह भी प्रयुक्त होती हैं—राममूर्ति कलियुगी भीम हैं। शेक्सपियर का मैंने अध्ययन कर लिया है। इस दर्जे में कई रामनाथ हैं। आजकल तो हरिश्चंद्रो की भरमार है। इन वाक्यों मे भीम, शेक्सपियर, रामनाथ, हरिश्चंद्रों शब्द जातिवाचक की तरह प्रयुक्त हुए हैं।

(३) भाववाचक संज्ञा—जिस संज्ञा शब्द से किसी व्यक्ति, वस्तु या स्थान के गुण, धर्म या स्वभाव का पता चले ; जैसे चौड़ाई, मिठास, सफेदा, सत्यता, सज्जनता, बुद्धिमानी।

विशेष ( क )—भाववाचक संज्ञाएँ गुण, धर्म या स्वभाव बतानेवाले वे ही शब्द हो सकते हैं जो व्यक्ति वस्तु या स्थान से भिन्न न हो सकें। गन्ने में मिठास है। गन्ने का यह गुण उससे भिन्न नही हो सकता।

( ख ) भाववाचक संज्ञाएँ अन्य संज्ञा, विशेषण या क्रिया शब्द में प्रायः ता, त्व, पन, हट, त्य आदि लगाकर बनाई जाती हैं।

( ग ) अँगरेजी के 'कलेक्टिव' और 'मेटीरियल नाउन' के शब्द हिन्दी में जातिवाचक ही माने जाते हैं।

( घ ) जातिवाचक से बनी भाववाचक सज्ञाएँ—मित्र–मित्रता, चोर–चोरी, लड़का–लड़कपन, मनुष्य–मनुष्यता, (मनुष्यत्व), मुनि–मौन सुहृद–सौहार्द्र; राजा-राज्य, दास-दासत्व, पंडित-पांडित्य, पशु-पशुता, प्रभु-प्रभुता, शिशु-शैशव, युवा-यौवन, एक-एकता (एकता), विद्वान-विद्वता।

( ङ ) विशेषण शब्दो से बनी कुछ भाववाचक सज्ञाएँ—बुद्धिमान–बुद्धिमानी ( बुद्धिमत्ता ), गरम–गरमी, बड़ा–बड़प्पन, कठोर–

कठोरता, मीठा-मिठास, चतुर-चतुराई ( चातुर्य ) , वीर-वीरता ( वीरत्व ), क्रूर-क्रूरता, नम्र-नम्रता, शठ-शठता, स्वतंत्र-स्वातंत्र्य ,गुरु-गुरुता या गौरव, लघु-लघुता, ( लाघव ). शूर-शूरता, मधुर-मधुरता ( माधुर्य ) सुंदर-सुंदरता, या सौन्दर्य, सुजन-सुजनता या सौजन्य, एक-एकता या ऐक्य, धीर-धीरत्व, द्वि-द्वित्व ।

( च ) क्रिया शब्दों से बनी भाववाचक संज्ञाएँ--मारना-मार, चढना-चढ़ावा, भिड़ना-भिड़ाई. लड़ना-लड़ाई. घबराना-घबराहट, बहना-बहाव, दौड़ना-दौड़, चलना चलन ( चाल ) ।

( छ ) अपत्यवाचक संज्ञाएँ—माता–पिता के नाम पर संतान ( पुत्र-पुत्री ) का नाम रखा जाता है। जैसे—वसुदेव–वासुदेव, रघु-राघव, मनु–मानव, दनु-दानव. यदु-यादव, पाडु-पांडव, कुरु-कौरव, जनक–जानकी, द्रुपद-द्रौपदी पुत्र-पौत्र, दुहिता-दौहित्र, पृथा-पार्थ, सुमित्रा-सौमित्रि, दशरथ-दाशरथि दिति-दैत्य, जमदग्नि-जामदग्नि, चणक-चाणक्य, कुंती-कौंतेय, राधा-राधेय, भगिनी-भागिनेय, विष्णु-वैष्णव, शक्ति-शाक्त, शिव-शैव, द्रोण-द्रौणि ।

## अभ्यास

संज्ञा शब्द कितने प्रकार के होते है ? प्रत्येक के पॉच पाँच उदाहरण दीजिए। ता, पन, लगकर भाववाचक संज्ञा बननेवाले पाँच-पाँच शब्द बनाइए।

## संज्ञाओं का रूपांतर

विकारी शब्दों के रूप में जिन कारणों से परिवर्तन होता है वे हैं—( १ ) वचन ( २ ) लिंग और ( ३ ) कारक।

## वचन

विकारी शब्द के जिस रूप से यह पता चले कि वह एक व्यक्ति या वस्तु के लिए आया है अथवा एक से अधिक के लिए उसे 'वचन' कहते हैं। वचन दो प्रकार के होते हैं। ( क ) एक वचन—जिस रूप से एक ही पदार्थ या व्यक्ति का बोध हो ; जैसे लड़का, कलम।

(ख) बहुवचन—जिस रूप से एक से अधिक पदार्थों या व्यक्तियों का बोध हो; जैसे लड़के, कलमें ।

विशेष—कुछ शब्द प्रायः बहुवचन में ही आते हैं—नाम बड़े दर्शन थोड़े । लोग टूट पड़े । प्राण निकल गए । कुछ शब्दों का एक वचन और बहुवचन दोनों में एक ही रूप रहता है । ऐसी अवस्था में वचन का पता क्रिया से लगाते हैं—घर गिर पड़ा, घर गिर पड़े । कभी-कभी बहुवचन बनाने के लिए शब्द के अन्त में गण या लोग जोड़ देते हैं—कविगण कविलोग । व्यक्तिवाचक और भाववाचक संज्ञाएँ जब बहुवचन में आती हैं तब वे जातिवाचक हो जाती हैं—आजकल विभीषणों की भरमार है । मिठासों के मारे जी ऊब गया ।

## लिंग

संज्ञा के जिस रूप से पुरुष या स्त्री-जाति का बोध होता है उसे लिंग कहते हैं । लिंग दो तरह के होते हैं—( १ ) पुल्लिग-जिस संज्ञा से पुरुष जाति का बोध हो, जैसे लड़का, घोड़ा, कुमार, दास । ( २ ) स्त्रीलिग—जिस संज्ञा से स्त्री जाति का बोध हो; जैसे लड़की, घोड़ी, कुमारी, दासी ।

विशेष—कुछ संज्ञाओं के केवल पुल्लिग रूप ही होते हैं—कौआ, काग, झींगुर, चीता, चमगादर, खटमल, केंचुआ, भेड़िया, तीतर । कुछ संज्ञाओं के केवल स्त्रीलिग रूप ही होते हैं—चील, बटेर, तितली, जोंक, दीमक, मैना, भेड़, तूती, मछली, मक्खी, कोयल, जूँ । कुछ संज्ञा शब्द स्त्रीलिंग और पुल्लिग दोनों तरह से प्रयुक्त होते हैं—पवन, समाज, आत्मा, श्वाँस । ऐसे शब्दों का लिंग क्रियाओं से जानना चाहिए—पवन—बहा ( पुल्लिग ), पवन चली ( स्त्रीलिग ) । संस्कृत के ये शब्द हिंदी में स्त्री लिंग की तरह ही प्रयुक्त होते हैं—ऋतु, राशि, विधि ( प्रकार ) वस्तु, किरण, वायु, जय, पुस्तक, मृत्यु, वनस्पति, उपाधि आयु, शपथ, गंध, तान, समाधि ।

## कारक

संज्ञा और सर्वनाम का जो रूप वाक्य के अन्य शब्दों के साथ उसका सम्बंध बताता है उसे 'कारक' कहते हैं। जिस चिह्न से संज्ञा या सर्वनाम का कारक जाना जाता है उसे 'विभक्ति' कहते हैं; जैसे का, की, के, ने, पर। हिंदी में आठ कारक होते हैं—

( १ ) कर्ता कारक—संज्ञा के जिस रूप से क्रिया के करने वाले का बोध हो, जैसे—राम ने मारा। 'ने' इसकी विभक्ति है।

( २ ) कर्म कारक—क्रिया के काम का फल जिस पर पड़े, जैसे—राम ने रावण को मारा। को, प्रति, तईं इसकी विभक्तियाँ हैं।

( ३ ) करण कारक—कर्ता जिसकी सहायता से काम करे, जैसे—राम ने तीर से मारा। से, कारण, करके, द्वारा, मारे इसकी विभक्ति हैं।

( ४ ) सम्प्रदान कारक—जिसके लिए काम किया जाय, जैसे—राम ने सीता के लिए रावण को मारा। को, के लिए, हेतु, अर्थ, निमित्त इसकी विभक्तियाँ हैं।

( ५ ) अपादान कारक—संज्ञा के जिस रूप से एक वस्तु का दूसरे से अलग होना या किसी दूसरे से तुलना करना पाया जाय, जैसे—वृक्ष से आम गिरा। राम मोहन से अच्छा है। से, को, आगे, सामने, साथ, अपेक्षा, इसकी विभक्तियाँ हैं।

( ६ ) संबंध कारक—संज्ञा के जिस रूप से एक वस्तु का दूसरी से सम्बंध जान पड़े, जैसे राम का लड़का। का, के, की इसकी विभक्तियाँ है।

( ७ ) अधिकरण कारक—संज्ञा के जिस रूप से क्रिया के आधार का पता लगे, जैसे—वह छत पर हैं। में, पै, पर, मध्य, बीच, ऊपर, भीतर इसकी विभक्तियाँ हैं।

( ८ ) संबोधन कारक—संज्ञा के जिस रूप से किसी को पुकारा या सावधान किया जाय; जैसे हे राम! हो:हो, ओ, अरे इसकी विभक्तियाँ हैं।

विशेष—किसी शब्द की विशेषता बताने या विवरण देने के लिए जो अन्य शब्द आते हैं उनका भी कारक वही होता है। इन्हे 'समानकारकीय' या 'समानाधिकरण' कहते हैं। मोहन, स्कूल का खिलाडी, नहीं आया। 'स्कूल का खिलाडी' यहाँ 'मोहन' का समानकारकीय है।

## शब्दान्वय

वाक्य में शब्दों के भेद, उनका प्रकार, लिंग, वचन और अन्य शब्दो से उनका सम्बन्ध बताना 'शब्दान्वय' कहलाता है। संज्ञा शब्दों का अन्वय करते समय (क) प्रकार (जातिवाचक, व्यक्तिवाचक, भाववाचक); (ख) लिंग (स्त्रीलिंग, पुल्लिग); (ग) वचन (एकवचन, बहुवचन); कारक (आठ कारक) और उनका सम्बन्ध लिखना चाहिए। राम ने राक्षसों को मारा। इस वाक्य मे राम और राक्षसो को सज्ञा शब्द हैं। इनका अन्वय इस प्रकार होगा—

राम—सज्ञा, व्यक्ति वाचक, पुल्लिग, बहुवचन, कर्त्ता कारक; 'मारा' क्रिया का कर्त्ता है।

राक्षसों को—सज्ञा, जातिवाचक, पुल्लिंग, एकवचन, कर्म कारक, 'मारा' क्रिया का कर्म है।

## अभ्यास

वाक्य मे शब्दों का वचन निकालने की विधि क्या है? कारक कितने होते हैं? नीचे के वाक्यों मे आए हुए संज्ञा शब्दों का अन्वय कीजिए—राम छत पर टहल रहा है। लड़के डोरी से पतंग उड़ा रहे हैं। बढ़ई मेज बनाने के लिए वसूले से लकड़ी काट रहा है।

## सर्वनाम

जो शब्द संज्ञा के स्थान में आते हैं, उन्हें 'सर्वनाम' कहते हैं। इनके प्रयोग से लाभ यह होता है कि एक ही शब्द का बार-बार प्रयोग करने की जरूरत नही पड़ती। हिंदी मे इतने सर्वनाम होते हैं—

हम, तू, तुम, आप, वह, वे, सो, जो, कोई, कौन, क्या।

प्रयोग के अनुसार सर्वनाम के छह भेद हैं—

( १ ) पुरुषवाचक सर्वनाम—जो सर्वनाम कहनेवाले, सुननेवाले या जिसके सम्बन्ध में बात होती है उसके लिए प्रयुक्त हों। मैं, हम, तू, तुम, यह, ये, वह, वे, आप, पुरुषवाचक सर्वनाम हैं।

विशेष—यह और वह एक आदमी, स्थान या वस्तु के लिए आते हैं और ये और वे एक से अधिक के लिए। लड़का आया है, यह या ( वह ) जाने को कहता है। लड़के आए हैं; ये या ( वे ) जाने को कहते हैं।

पुरुषवाचक सर्वनाम के मुख्य तीन भेद हैं—( १ ) प्रथम या उत्तम पुरुष—जो सर्वनाम बोलनेवाले के लिए प्रयुक्त होते हैं; जैसे—मैं, हम। द्वितीय या मध्यम पुरुष—जो सर्वनाम सुननेवाले के लिए आते हैं, जैसे—तू, तुम, आप ( आदरसूचक )। ( ३ ) तृतीय या अन्य पुरुष—जिसके सम्बन्ध में बात हो रही है उसके लिए प्रयुक्त होनेवाले सर्वनाम। वह, वे, यह, ये, जो सो अन्य पुरुष में होते हैं।

विशेष—सभी संज्ञा शब्द अन्य पुरुष में होते हैं। 'हम' सर्वनाम साधारणतः एक से अधिक व्यक्तियों के लिए आता है, जैसे हम भारतवासी हैं। परन्तु एक आदमी भी कभी-कभी उसका प्रयोग अपने लिए करता है। संपादक, लेखक, बड़े-बड़े अधिकारी और राजा-महाराजा, अपने लिए 'हम' का प्रयोग करते हैं। कभी-कभी अभिमान या क्रोध में भी 'हम' का प्रयोग एक ही व्यक्ति के अर्थ में किया जाता है; जैसे—हम उसे देख और समझ लेंगे।

'तू' शब्द से निरादर प्रकट होता है। परन्तु देवताओं और ईश्वर के लिए 'तू' का प्रयोग सम्मानसूचक है—तू दीनदयाल है। पुत्र या शिष्य के लिए 'तू' स्नेहसूचक है—तू बड़ा पागल है। परम मित्र के लिए बड़े प्रेम से 'तू' का प्रयोग किया जाता है—तू बड़ा दुष्ट है। अवस्था या पद में छोटों के लिए 'तू' का प्रयोग करते हैं—तूने काम कर लिया। तिरस्कार या क्रोध में भी 'तू' का प्रयोग किया जाता है:—तू जबान

सँभाल कर नहीं बोलता ?

'वह' एक आदमी के लिए आता है । कभी-कभी बड़े आदमी के प्रति तिरस्कार दिखाने के लिए भी 'वह' का प्रयोग करते है :— वह ( कृष्ण ) तो गँवार ग्वाल है । 'वे' शब्द एक से अधिक आदमियो या वस्तुओं के लिए आता है । कभी-कभी सम्मान दिखाने को एक व्यक्ति के लिए 'वे' का प्रयोग करते हैं—वे ( महात्मा गाँधी ) उपवास कर रहे थे ।

( २ ) निश्चयवाचक सर्वनाम—जो सर्वनाम निश्चित वस्तु, स्थान या व्यक्ति के लिए आते हैं । वह ये, वह वे निश्चयवाचक हैं ।

( ३ ) अनिश्चयवाचक सर्वनाम—जो सर्वनाम अनिश्चित वस्तु के लिए आते हैं; जैसे—कोई, किसी, कुछ, कई, बहुतेरे ।

विशेष—'कोई' शब्द एक ही व्यक्ति के लिए आता है । अधिक व्यक्तियों का अर्थ निकालने के लिए 'कोई-कोई' कर देते है, जैसे कोई-कोई कहते हें । 'कुछ' का प्रयोग सर्वनाम की तरह ऐसे वाक्यों में होता है—कुछ खा लो । तुमसे कुछ पूछना है । तुम्हारे पास कुछ है ? 'कुछ और' तथा 'कुछ का कुछ' भी सर्वनाम की तरह ही आते हैं— पहले 'कुछ और' था अब 'कुछ का कुछ' हो गया है ।

( ४ ) संबंधवाचक सर्वनाम—जो सर्वनाम परस्पर कही हुई संज्ञा से अपना संबंध सूचित करते हैं । जो किया सो भोगोगे ।

विशेष—'जो' के साथ सदा 'सो' का प्रयोग करते हैं—जो करेगा सो भरेगा । कभी-कभी 'सो' के स्थान पर 'वह' भी लिखते हैं—जो करेगा वह भरेगा । अधिकता के अर्थ में इन सर्वनामों को द्वित्व कर देते है—जो-जो चाहिए सो-सो लीजिए ।

( ५ ) प्रश्नवाचक सर्वनाम—जिस सर्वनाम से प्रश्न का बोध हो , जैसे-कौन है ? क्या गिरा ? क्या खाया है ? कुछ जानता है ?

( ६ ) निजवाचक—जो सर्वनाम कर्त्ता के साथ अपनापन बताने के लिए आता है ; जैसे— मै आप जाऊँगा । राम आप करेगा ।

विशेष—निजवाचक 'आप' का प्रयोग तीनों पुरुषों में होता है. परंतु पुरुषवाचक 'आप' केवल मध्यम और अन्य पुरुषों में आता है।

उक्त सर्वनामो के अतिरिक्त कुछ अन्य शब्द भी सर्वनाम की तरह प्रयुक्त होते हैं। जैसे एक, दो, दोनों, और, सब, कई, अन्य। इनका प्रयोग इस तरह होता है—मास्टर ने कहा—दोनों यहाँ आओ, एक जा सकता है। जो कोई, कोई एक, एक दूसरा, कोई और, कोई कोई, जो कुछ, कोई न कोई, सब कोई, और कौन, कौन कौन, क्या क्या आदि भी सर्वनाम की तरह ही प्रयुक्त होते हैं।

सर्वनाम के अन्वय में (क) प्रकार (६ प्रकार) (ख) पुरुष (तीन पुरुष) (ग) वचन (दो वचन) (घ) लिंग (दो लिंग) (ङ) कारक (आठ कारक) और (च) वाक्य के शब्दों के साथ संबंध लिखा जाता है। उदाहरण—आप कुछ न कर सकेंगे।

आप—सर्वनाम, पुरुषवाचक, मध्यम पुरुष, एक वचन (आदर सूचक) पुल्लिंग, कर्त्ताकारक, 'कर सकेंगे' क्रिया का कर्त्ता है।

कुछ—सर्वनाम, अनिश्चयवाचक, अन्यपुरुष, एकवचन, पुल्लिंग, कर्मकारक, 'कर सकेंगे' क्रिया का कर्म है।

### अभ्यास

इन वाक्यो में आए हुए सर्वनामों का अन्वय कीजिए—जो मैदान में खेल रहे हैं, वे बड़े परिश्रमी हैं। आप उनसे कहिए, इसी तरह ये रोज यहाँ आया करें। उन्हें देखकर हमें प्रसन्नता होती है।

## विशेषण

संज्ञा शब्दों की विशेषता बतानेवाले शब्द 'विशेषण' कहलाते हैं। सीधी गाय। भला लड़का। दुष्ट राक्षस। जिस शब्द की विशेषता बताई जाती है उसे 'विशेष्य' कहते हैं। वाक्य में विशेषण दो प्रकार से आते हैं—एक तो विशेष्य के पहले, दूसरे विशेष्य के बाद। पहले को 'विशेष्य विशेषण' और दूसरे को 'विधेय विशेषण' कहते हैं। ऊपर के वाक्यों के विशेषण सामान्य हैं, और गाय सीधी है, लड़का भला है,

राक्षस दुष्ट है, के विशेषण विधेय रूप में आए हैं। विशेषण छः प्रकार के होते हैं—

( १ ) गुणवाचक—जो शब्द संज्ञा के गुण, अवस्था या दशा को बताए—भला लड़का।

( २ ) परिमाणवाचक—जिस विशेषण से वस्तु की तोल का पता चले—बहुत पानी। बहुत सोना। तुलनेवाली चीजों की विशेषता बताने पर थोड़ा, बहुत, कुछ, जरा, सब, पूरा, अल्प, यथेष्ट, ज्यादा, अधिक आदि परिमाणवाचक विशेषण होते हैं।

( ३ ) संख्यावाचक—गिनी जाने वाली चीजों की संख्या बताने वाले विशेषण संख्यावाचक कहलाते हैं। इसके दो भेद हैं—( क ) निश्चित संख्यावाचक—निश्चित संख्या का पता देने वाले शब्द। एक, दो, तीन, पाव, सवा, तीसरा, चौथा, दुगुना, चौगुना, आदि। ( ख ) अनिश्चित संख्यावाचक—जिन शब्दों से निश्चित संख्या का पता न चले। गिनी जानेवाली चीजों के साथ आने पर सब कुछ, कम, अनेक, कई, बहुत, अधिक, कुल, थोड़ा, बहुतेरे आदि अनिश्चित संख्यावाचक हो जाते हैं।

( ४ ) संकेतवाचक—जो विशेषण किसी संज्ञा की ओर संकेत करते हैं, जैसे—यह आदमी। वह लड़का।

विशेष—प्रश्नवाचक और संबंधवाचक सर्वनाम भी संकेतवाचक विशेषण की तरह आते हैं; जैसे—कौन लड़का। क्या बात। जो भाई।

( ५ ) प्रत्येकबोधक—जो विशेषण बहुत-सी चीजों में से केवल एक का बोध कराता है; जैसे—एक-एक बालक। प्रत्येक बालक। हर एक लड़का।

( ६ ) व्यक्तिवाचक—व्यक्तिवाचक संज्ञा से बननेवाले विशेषण जैसे—बनारसी, मथुरिया, लखनउआ, बिहारी, बंबइया।

## विशेषण की व्युत्पत्ति

कुछ शब्द मूल से ही विशेषण होते हैं; जैसे—सुंदर, बूढ़ा, पीला।

इन्हें 'साधारण विशेषण' कहते हैं। कुछ शब्द मूल से विशेषण नहीं होते, अन्य शब्दों से बना लिए जाते हैं, जैसे—दैनिक, धनी, जंगली, घरेलू, सुखी। इसको 'व्युत्पन्न विशेषण' कहते हैं। व्युत्पन्न विशेषण संज्ञा, सर्वनाम, और क्रिया से बनते हैं। संज्ञाओं से बने कुछ विशेषण ये हैं—

समय सामयिक, वर्ष वार्षिक, मास मासिक, नीति नैतिक, काल कालिक, देह दैहिक, भूत भौतिक, लोक लौकिक, योग यौगिक, कुल कुलीन, प्रदर्शन प्रदर्शित, प्रतिबिंब प्रतिबिंबित, रचना रचित, सम्मान सम्मानित, बहिष्कार बहिष्कृत, तिरस्कार तिरस्कृत, निर्वासन निर्वासित, उत्सुकता उत्सुक, संस्कार संस्कृत, तुलना तुल्य, आविष्कार आविष्कृत, चमत्कार चमत्कृत, आवश्यकता आवश्यक, उपयोगिता उपयोगी, पुरस्कार पुरस्कृत, प्रचार प्रचारित, मान मान्य या माननीय, सामर्थ्य समर्थ, शांति शांत, उन्नति उन्नत, स्थिति स्थित, आकर्षण आकर्षित, प्रकृति, प्रकृत, जागृति जाग्रत, ऋषि आर्ष, सभा सभ्य, ग्राम ग्रामीण या ग्राम्य नगर नागरिक, दिन दैनिक, शरीर शारीरिक, समाज सामाजिक, अर्थ आर्थिक, वेद वैदिक, पिता पैतृक, देश देशीय, जाति जातीय, कथन कथित, मुख मौखिक, इच्छा इष्ट, पीड़ा पीड़ित, प्रसाद प्रसन्न, मनुष्य मानुषिक, पृथ्वी पार्थिव, अग्नि आग्नेय, पुष्प पुष्पित, पूजा पूज्य या पूजनीय, अवलंब अवलंबित, व्यवहार व्यावहारिक, प्रसिद्धि प्रसिद्ध, प्रकाश प्रकाशित, दोष दूषित, आत्मा आत्मिक, प्रभाव प्रभावित, स्वभाव स्वाभाविक, मन मानसिक, प्रकृति प्राकृतिक, घृणा घृणित, आश्रय आश्रित, कुटुंब कौटुंबिक, साहस साहसिक, व्यवस्था व्यवस्थित, प्रतिष्ठा प्रतिष्ठित, संकेत साङ्केतिक, विरोध विरुद्ध, शास्त्र शास्त्रीय, शृंगार शृंगारी, प्रयोग प्रयुक्त, गृहस्थ गार्हस्थ्य, तृप्ति तृप्त, प्राप्ति प्राप्त, न्याय नैयायिक, पुराण पौराणिक, तर्क तार्किक, वेद वैदिक, अलंकार आलंकारिक, समुद्र सामुद्रिक, विषय वैषयिक, कंठ कंठ्य, तालु तालव्य, अंत अंत्य, फल फलित, मांस मांसल, पंक पंकिल, जटा जटिल, तुंद

तुंदिल, मधु मधुर, यज्ञ यज्ञीय, राष्ट्र राष्ट्रीय ।

## विशेषण की तुलना

दो सज्ञाओं के गुणों का मिलान करने को 'तुलना' कहते हैं । साथ, से, अपेक्षा, कहीं, बढ़कर, उतरकर, आदि का प्रयोग तुलना करते सम किया जाता है । तुलनावाचक विशेषण में दो के लिये 'तर' और दो से अधिक मे 'तम' जुड़ता है । तुलना की दृष्टि से विशेषणों की तीन अवस्थाएँ होती हैं—(१) मूलावस्था—तुलना न होने पर विशेषणों की जो सामान्य अवस्था होती है उसे 'मूलावस्था' कहते हैं । सभी विशेषण मूलावस्था मे रहते हैं । (२) उत्तरावस्था—जब केवल दो वस्तुओं के गुणों की तुलना करके एक को दूसरे से अधिक गुणवान या गुणहीन कहा जाय । मोहन राम की अपेक्षा चंचल है । (३) उत्तमावस्था—जब दो से अधिक वस्तुओं के गुणों की तुलना करके एक को सब से अधिक गुणवान या गुणहीन कहा जाय । मोहन सबसे चंचल है ।

विशेषण के पदान्वय में इनका लिंग और वचन विशेष्य के ही समान होता है । उदाहरण—अच्छा बालक पढ रहा है ।

अच्छा—विशेषण, गुणवाचक, एक वचन, पुल्लिंग, सामान्य, मूलावस्था, इसका विशेष्य 'बालक' है ।

## अभ्यास

इन वाक्यों में आए हुए विशेषणों का अन्वय कीजिए—दो गाएँ उस मैदान में हरी घास चर रही हैं । देखने मे वे बड़ी भली और सीधी जान पडती हैं । उनके लबे-लबे सींग हमारे बहुत काम आते हैं ।

## क्रिया

जिन शब्दों से किसी काम का करना या होना पाया जाय, उसे क्रिया कहते हैं । हवा चली । लड़का खेल रहा है । इन वाक्यो मे 'चली' और 'खेल रहा है' से काम का होना मालूम होता है । क्रियाएँ दो प्रकार की होती हैं—

( १ ) सकर्मक क्रिया—जिस क्रिया के काम का फल उसके कर्ता

को छोड़कर किसी अन्य पर पडे। राम ने रावण को मारा। 'मारा' क्रिया का फल रावण को भुगतना पड़ता है। अतः 'मारा' क्रिया सकर्मक है। 'कर्म' उस शब्द को कहते हैं जिस पर क्रिया का फल पडे। ऊपर के वाक्य में 'मारा' क्रिया का फल रावण पर पडता है। अत: रावण कर्म है।

(२) अकर्मक—जिस क्रिया के काम का फल उसके कर्त्ता पर ही पड़े। मोहन खेल रहा है। इस वाक्य मे क्रिया का फल उसके कर्त्ता 'मोहन' पर ही पडता है। जिस अकर्मक क्रिया से पूरा अर्थ नही निकलता और अर्थ पूरा करने के लिए उसमें एक या अधिक शब्द और जोडने पड़ते है, उसे 'अपूर्ण अकर्मक क्रिया' कहते हैं। उदाहरण के लिए—वह वीर है, इस वाक्य मे वीर शब्द अर्थ पूरा करता है।

अपूर्ण क्रिया के अर्थ को पूरा करने के लिए जो शब्द आते हैं उन्हे 'पूर्ति' या 'पूरक' कहते हैं। मैंने उसे मित्र बनाया, इस वाक्य में 'मित्र' शब्द 'पूर्ति' या 'पूरक' होकर आया है।

जिस सकर्मक क्रिया का अर्थ वाक्य मे उसका कर्म रहते हुए भी पूरा नही होता, और अर्थ पूरा करने के लिए किसी सज्ञा या विशेषण का प्रयोग किया जाता है उसे 'अपूर्ण सकर्मक क्रिया' कहते हैं—मैंने मोहन को नौकर रख लिया।

जो संज्ञा या विशेषण अकर्मक क्रिया का अर्थ पूरा करने के लिए आता है उसे 'कर्म पूरक' कहते हैं। उसे किसने राजा बनाया था? जिस क्रिया के साथ दो कर्म रहते हैं उसे 'द्विकर्मक क्रिया' कहते हैं। इन दो कर्मों मे एक 'मुख्य कर्म' होता है और दूसरा 'गौण कर्म'। 'मुख्य कर्म' से आशय उस पदार्थ से है जो कर्म होकर आता है। और जिससे किसी व्यक्ति का बोध होता है उसे 'गौण कर्म' कहते हैं। राजा ने कवि को पुरस्कार दिया। यहाँ 'पुरस्कार' मुख्य कर्म है और 'कवि को' गौण कर्म।

जिस क्रिया के साथ उसी क्रिया से बनी हुई भाववाचक संज्ञा कर्म

बनकर आती है। उसे 'सजातीय क्रिया' कहते हैं। यह भाववाचक सज्ञा 'सजातीय कर्म' कहलाती है। वह एक दौड़ दौड़ा। यहाँ 'दौड़ा' शब्द सजातीय क्रिया है। और 'दौड़' इसी से बना हुआ सजातीय कर्म।

जिस मूल शब्द मे परिवर्तन होने पर क्रिया बन जाती है, उसे 'धातु' कहते हैं—वह देखता है। 'देखना' क्रिया का मूल 'देख' है। अतः 'देख' धातु है।

धातु के अन्त मे 'ना' जोड़ने से जो शब्द बनता है और जिससे काम या व्यापार का नाम भर जाना जाता है, काल का पता नहीं चलता, उसे 'क्रिया का सामान्य रूप' कहते हैं। इसका प्रयोग सज्ञा के समान होता है। इसलिए इसे 'क्रियार्थ संज्ञा' भी कहते हैं। मोहन सिनेमा देखना चाहता है।

दो या अधिक क्रियाएँ मिलने से वाक्य की जो एक क्रिया बनती है, और पूरा अर्थ प्रकट करती है उसे 'सयुक्त क्रिया' कहते हैं–आजकल बहुत 'पढना पड़ता है'। संयुक्त क्रिया मे मुख्य अर्थवाली क्रिया को 'मुख्य' या 'प्रधान क्रिया' कहते हैं और जिसकी सहायता से प्रधान क्रिया सयुक्त हो जाती है उसे 'सहायक क्रिया' कहते हैं। उक्त वाक्य में 'पढना' प्रधान क्रिया है और 'पडता' है सहायक क्रिया।

जिस क्रिया से यह पता चले कि कर्त्ता स्वय काम न करके किसी दूसरे से उसके करने की प्रेरणा करता है, दूसरे से वह काम कराता है उसे 'प्रेरणार्थक क्रिया' कहते हैं। मोहन नौकर से फल मँगवाता है।' प्रेरणार्थक क्रिया का जो कर्त्ता स्वय काम न करके दूसरे से कराता है उसे 'प्रेरक कर्त्ता' कहते हैं। प्रेरित कर्त्ता की इच्छा से जो काम करता है उसे प्रेरित कर्त्ता' कहते हैं। ऊपर के वाक्य में 'मोहन' प्रेरक कर्त्ता है और 'नौकर से' प्रेरित कर्त्ता। वाक्य में प्रेरित कर्त्ता सद करणकारक में होता है।

### वाच्य

क्रिया के जिस रूप से पता चले कि वाक्य का उद्देश्य क्रिया का

कर्त्ता है या कर्म या केवल भाव के ही विषय में विधान किया गया है, उसे 'वाच्य' कहते हैं। हिन्दी मे तीन वाच्य होते हैं—

( १ ) कर्तृवाच्य—जब क्रिया अपने कर्त्ता के लिंग, वचन के अनुसार हो—लड़कियाँ गाना गा रही है। ( २ ) कर्मवाच्य—जब क्रिया अपने कर्म के लिंग, वचन के अनुसार हो; जैसे लड़कियो ने गाना गाया। लड़कियों से गाना गाया गया। ( ३ ) भाववाच्य—जब क्रिया कर्त्ता या कर्म के लिंग, वचन के अनुसार न हो और किसी भाव के ही विषय में विधान किया जाय। यहाँ क्रिया सदा एकवचन, पुल्लिंग और अन्य पुरुष में रहती है। मुझसे नहीं देखा जाता।

विशेष—कर्तृवाच्य सकर्मक और अकर्मक, दोनों क्रियाओं में होता है। कर्मवाच्य केवल सकर्मक क्रिया में और भाववाच्य केवल अकर्मक क्रिया मे होता है। कर्मवाच्य और भाववाच्य में कर्त्ता करण-कारक में रहता है। कर्तृवाच्य क्रिया से कर्मवाच्य और भाववाच्य के रूप बन सकते हैं। मैं कविता पढ़ रहा हूँ—कर्तृवाच्य की इस क्रिया का कर्मवाच्य मे रूप होगा—मुझसे कविता पढ़ी जाती है। भाववाच्य क्रिया निषेध ( मना करना ) या असमर्थता प्रकट करती है। मै नहीं पढ़ रहा हूँ—इस कर्तृवाच्य क्रिया का भाववाच्य में यह रूप होगा—मुझसे नहीं पढ़ा जाता।

## क्रिया के प्रकार

क्रिया के प्रकार-कृत तीन भेद हैं—

( १ ) साधारण क्रिया—जिस क्रिया से साधारण रूप से काम का होना बताया जाय—जैसे वह आता है। हम खेल रहे हैं। ( २ ) सभाव्य क्रिया—जिस क्रिया से अनिश्चय, इच्छा, या संशय का पता चले, जैसे यदि ऐसा हो जाय। यदि ऐसा होता। शायद वह आता हो। संभवतः वह सोता हो। ( ३ ) आज्ञार्थक या विध्यार्थक क्रिया—जिस क्रिया से आज्ञा, उपदेश या प्रार्थना प्रकट हो, जैसे—तुम जाओ। दया करो। कृपा करके अवश्य पधारिये।

क्रिया के दो प्रकार और हैं—

( १ ) पूर्वकालिक क्रिया—इस से 'क्रिया की अपूर्णता प्रकट होती है, जैसे–मैं देखकर जाऊँगा। सोकर उठना। बैठकर पढ़ो। हँसकर बात करो। खाकर जाओ। ( २ ) विशेषणार्थक क्रिया—इससे क्रिया और विशेषण दोनों का भाव प्रकट होता है; जैसे—मै देखते-देखते थक गया। पढ़ते-पढते सो गया। रोते-रोते चुप हो गया। कहते-कहते चला गया।

## क्रिया के काल

क्रिया के करने में जो समय लगता है उसे काल कहते हैं। काल तीन हैं—( १ ) भूतकाल—जिस क्रिया से बीते हुए समय का पता चले, जैसे. वह आया था। वह आ रहा था। वह आया। इससे पता चलता है कि काम समाप्त हो चुका है। ( २ ) वर्तमान काल—जिस क्रिया से वर्तमान समय में काम होने का पता चले; जैसे—वह आया है, वह आ रहा है। इससे पता चलता है कि काम अभी हो रहा है। भविष्यकाल—जिस क्रिया से आगे आने वाले समय में काम के होने का पता चले, जैसे—वह आएगा। इससे पता चलता है कि काम अभी शुरू होगा। भूतकाल के ६ भेद हैं—

( १ ) सामान्य भूतकाल—जिससे यह पता न चले कि काम समाप्त हुए थोड़ा समय हुआ है या अधिक, जैसे, मै आया। ( २ ) आसन्न भूतकाल—जिससे पता चले कि काम भूतकाल मे शुरू होकर वर्तमान काल मे ही समाप्त हुआ है, मैने पुस्तक पढ़ी है। ( ३ ) पूर्ण भूतकाल-जिससे पता चले कि काम समाप्त हुए अधिक समय हो चुका है, जैसे-वह आया था। मैने काम किया था। तू गया था। (४) संदिग्ध भूतकाल—जिससे भूतकाल का पता तो चले, पर काम के होने में संदेह हो, जैसे—वह आया होगा। तुमने काम किया होगा। तू गया होगा। ( ५ ) अपूर्ण भूतकाल—जिससे भूतकाल का पता चले, पर काम की पूर्णता न प्रकट हो; मै सोता था। वह जाता था। वह काम

करता था। ( ६ ) हेतुहेतुमद्भूतकाल—जिससे पता चले कि काम भूतकाल मे हो तो सकता था, पर कुछ और काम के होने से पूरा न हो सका—यदि वह पढता होता तो कभी फेल न होता।

वर्तमानकाल के ४ भेद:—

( १ ) सामान्य वर्तमानकाल—जिस काल के सामान्यरूप से काम होने का पता चले, पर कोई निश्चित समय न प्रगट हो। इसका प्रयोग ( क ) वर्तमानकाल के क्रिया के साधारण वर्णन ( ख ) कर्त्ता का स्वभाव ( ग ) भूतकाल की घटनाओं के वर्णन के लिए होता हैं, जैसे—मै आता हूँ। तुम दिन भर खाया करते हो। कस आता है और लड़की को पत्थर पर पटक देता है। ( २ ) अपूर्ण वर्तमानकाल—जिससे पता चले कि काम अभी हो रहा है, समाप्त नहीं हुआ है, जैसे, वह आ रहा है। तुम देख रहे हो। वे सो रहे हैं। ( ३ ) सदिग्ध वर्तमान—जिससे काम के होने मे सशय या संदेह प्रकट हो जैसे, वह आता होगा। तुम आती होगी। वे देखते होंगे। ( ४ ) हेतुहेतुमद् वर्तमान—जिससे काम के होने पर किसी दूसरी क्रिया का होना सभव हो जैसे मै सोता हूँ। तुम सोते हो।

भविष्यकाल के तीन भेद हैं—

( १ ) सामान्य भविष्यकाल—जिससे साधारण रीति से भविष्य में होने वाला काम बताया जाय, मै आऊँगा। तुम जाओगी। ( २ ) संभाव्य भविष्यकाल—जिससे भविष्य मे काम होने की संभावना जानी जाय, मै चलूँ। तुम चलो। वे चलें। ( ३ ) हेतुहेतुमद् भविष्यकाल—जिससे भविष्य मे होने वाले एक काम का दूसरे पर निर्भर होना पाया जाय। इसके रूप सभाव्य भविष्यकाल के समान होते हैं।

## क्रिया के लिंग, वचन और पुरुष

( क ) क्रिया के कर्त्ता में जब 'ने' चिह्न नहीं रहता तब क्रिया के लिंग, वचन और पुरुष कर्त्ता के समान होते हैं, जैसे—वह देखता है। हम जाते हैं। ( ख ) क्रिया के कर्त्ता मे जब 'ने' चिह्न रहे और कर्म

मे 'का' न हो तो क्रिया के लिग, वचन और पुरुष कर्म के समान होते हैं। राम ने पतंग देखी, मैंने पुस्तकें पढ़ीं। उसने खाना खाया। लड़कों ने गेंद खेला। (ग) क्रिया के कर्त्ता मे जब 'ने' और कर्म मे 'को' चिह्न रहता है तो क्रिया सदा एकवचन पुल्लिंग और अन्य पुरुष मे होती है। राम ने रावण को मारा। शिकारी ने शेर को देखा। मैंने गाय को पाला। गुरू ने लड़के को दण्ड दिया।

भाववाच्य मे भी क्रिया सदा एकवचन, पुल्लिग और अन्य पुरुष में रहती है—मुझसे पढ़ा नहीं जाता। हमसे बैठा नहीं जाता।

क्रिया के पदान्वय में भेद (अकर्मक, सकर्मक) वाच्य (कर्तृ, कर्म और भाव) काल (भूत, भविष्य और वर्तमान के भेद) लिंग वचन, पुरुष और उसका संबंधी शब्द बताना चाहिए। उदाहरण—उसने जो पुस्तक दी थी खो गई। यदि वह परिश्रम करे तो धन मिल जायगा। पुस्तकें पढ़कर लेख लिखा गया। सपादक दूसरों से लेख लिखाते हैं।

दी थी-सकर्मक, कर्मवाच्य, पूर्ण भूतकाल, स्त्रीलिग, एकवचन, अन्य पुरुष, 'पुस्तक' कर्म के अनुसार क्रिया आई है।

खो गई—अकर्मक, कर्तृवाच्य, सामान्यभूत, स्त्रीलिग, एकवचन, अन्य पुरुष, इसका कर्त्ता 'वह' है।

करे—सकर्मक, कर्तृवाच्य, सभाव्य भविष्य, पुल्लिग, अन्यपुरुष, एकवचन, इसका कर्त्ता 'वह' है।

मिल जायगा—संयुक्त क्रिया, अकर्मक, कर्तृवाच्य, सामान्य भविष्य, पुल्लिग, अन्यपुरुष, एकवचन, इसका कर्त्ता 'धन' है।

पढ़कर—पूर्वकालिक क्रिया, सकर्मक, कर्तृवाच्य, कर्म 'पुस्तकें'। (विशेष—पूर्वकालिक क्रिया के लिंग, वचन और पुरुष नहीं होते।)

लिखा गया—संयुक्त क्रिया, सकर्मक, कर्मवाच्य, सामान्य भूत, पुल्लिग, अन्य पुरुष, एकवचन, इसका कर्म 'लेख' है।

लिखाते हैं—सकर्मक, कर्तृवाच्य प्रेरणार्थक क्रिया, पुल्लिग,

अन्यपुरुष, कर्त्ता इसका 'संपादक' और कर्म 'लेख' है।

## अभ्यास

इन वाक्यों में आए हुए क्रिया शब्दों का अन्वय कीजिए—राम पुस्तक पढ़ रहा था, पढते-पढते वह सो गया। इसी समय उसके भाई आ गए। उन्होंने कहा—परीक्षा समीप है, मन लगाकर काम करो।

## क्रियाविशेषण

क्रिया की विशेषता बतानेवाले शब्दों को 'क्रियाविशेषण' कहते हैं। धीरे चलो। वह कल गया। कभी-कभी क्रियाविशेषण शब्द विशेषण और क्रियाविशेषण की भी विशेषता बताते हैं। बहुत बड़ा मूर्ख। बहुत दूर देखो। क्रियाविशेषण नौ प्रकार के होते हैं—

(१) कालवाचक—जिनसे क्रिया के होने का समय जाना जाय; जैसे—प्रतिदिन, कभी-कभी, जभी-तभी, अब, तब, आज कल, तत्काल, बहुधा, अक्सर, सबेरे, शाम, निरतर, लगातार। (२) स्थानवाचक—जिनसे क्रिया के होने का स्थान जाना जाय; जैसे—ऊपर, नीचे चारों ओर, और कहीं, अगल-बगल, कहीं, बीच, तले, किनारे। (३) रीतिवाचक—जिनसे क्रिया के होने की रीति या विधि जानी जाय, जैसे—धीरे से, शाति से, चुपचाप, ऐसे वैसे, धड़ाधड़, यों ही। (४) कारणवाचक—जिसे क्रिया के होने का कारण जाना जाय; जैसे—इसलिए, क्यो, इस पर भी, क्योंकि, अतएव, काहे को। (५) निषेधवाचक—जो क्रिया के होने में निषेध (नहीं) प्रकट करे, जैसे—नहीं, मत, न। (६) स्वीकारवाचक—जो क्रिया के करने में स्वीकृति प्रकट करे, जैसे—हाँ, बेशक, जरूर, सही, निस्सदेह, अवश्य, ठीक। (७) परिमाणवाचक—जो क्रिया की तोल या परिमाण बताए; जैसे—जरा, बड़ा, भारी, बिलकुल, अत्यत, बहुत, निरा, खूब, पूरा-पूरा, तनिक, कुछ, इतना, टुक, जितना, बढकर, और, बस, चाहे, ठीक, अस्तु, बिरले, प्रायः, करीब-करीब, लगभग, अधिकता से, कठिनता से, ठीक-ठीक, काफी, मिलजुल के, किंचित, थोड़ा-थोड़ा, क्रम-क्रम से।

( ८ ) संख्यावाचक—जिनसे क्रिया की संख्या जानी जाय; जैसे—अकेले, दुकेले, एक बार, दोबारा, तिबारा, एक-एक करके, दो-दो करके।
( ९ ) प्रश्नवाचक—जिनसे क्रिया के विषय में प्रश्न जाना जाय, जैसे—क्यों, कैसे, कहाँ, किस लिए, कितना।

क्रियाविशेषण के पदान्वय में उसका भेद और दूसरे शब्दों के साथ सम्बंध बताना चाहिए। उदाहरण—बहुत शीघ्र मत पढ़ा करो।

बहुत—परिमाणवाचक क्रियाविशेषण, 'शीघ्र' की विशेषता बताता है।

शीघ्र—रीतिवाचक क्रियाविशेषण, क्रिया की रीति बताता है।

मत—निषेधवाचक क्रियाविशेषण, निषेध सूचित करता है।

## अभ्यास

क्रियाविशेषणों का अन्वय कीजिए—इतनी जोर से मत पढ़ो कि आसपास के लोग भी काम न कर सकें। सदा आगे पीछे और दाएँ-बाएँ देखकर चला करो। वह लपककर काम करता है।

## समुच्चयबोधक

जो अव्यय एक शब्द को दूसरे शब्द से, एक वाक्यांश को दूसरे वाक्यांश से या एक उपवाक्य से दूसरे उपवाक्य को मिलता है, उसे समुच्चयबोधक कहते हैं। जैसे—मोहन 'या' राम, मोहन का भाई 'और' उसके मित्र की लड़की। मोहन आया 'पर' तुम थे नहीं। हिंदी में प्रायः ये शब्द समुच्चयबोधक होकर आते हैं—और, तथापि, तो भी, यदि, जो, तो, कि, भी, पुनः, फिर, अर्थात्, या, वा, अथवा, पर, परंतु, नहीं तो, वरन् बल्कि, प्रत्युत, यथा, इससे, एवं इस प्रकार, न कि, न तो, अगर, मगर।

समुच्चयबोधक के अन्वय में उसका नाम और जिन शब्दों, वाक्यांशों को वह जोड़ता हो उन्हे लिखना चहिए।

उदाहरण—मोहन आया पर तुम थे ही नहीं।

पर—समुच्चयबोधक; 'मोहन आया' और को 'तुम थे ही नहीं'

जोड़ता है।

### अभ्यास

इन वाक्यों मे आए हुए समुच्चयबोधकों का अन्वय कीजिए— बोलो या जाओ। यदि जाएगा तो हानि होगी। आओ तो चलें।

### सबधबोधक

जो अव्यय वाक्य के एक शब्द का दूसरे से संबंध बतलाता है उन्हें सबन्धबोधक कहते हैं, गर्मी के मारे पढ़ा नहीं जाता। यहाँ 'मारे' शब्द गर्मी का संबंध 'पढा जाता' क्रिया से जोड़ता है। संबन्धवाचक अव्यय के पहले प्रायः सबंधकारक की विभक्ति आती है। जैसे— मकान के पास, पेड के नीचे, घर के भीतर, मकान की तरफ।

अधिकतर सबधबोधक सज्ञा या सर्वनाम के पीछे ही आते हैं, जैसे ऊपर के वाक्यांशों मे आए हैं। कुछ सबंधबोधक संज्ञा के पहले भी आते हैं, जैसे बिना कलम के, मारे डर के, सिवाय मोहन के। इन्हें यो भी लिखते हैं—कलम के बिना, डर के मारे, मोहन के सिवाय। मुख्य संबंधबोधक ये हैं–मेरे कारण, पेड़ के तले; मेरे द्वारा, घर के पीछे, श्रद्धापूर्वक, मोहन के बदले, हमारी ओर, मोहन के सहित, जल के मध्य। संबंधबोधक के अन्वय का उदाहरण—नदी तक चलो।

तक—संबधबोधक, 'नदी' का 'चलो' से संबध जोड़ता है।

### अभ्यास

मेरे कारण वह घर के पास चक्कर लगाता रहा। पुस्तक के बदले वह क्या चाहता है? मेरे द्वारा यह काम मत कराइए–इन वाक्यों में आए हुए सबधबोधकों का अन्वय कीजिए।

### विस्मयादिबोधक

जो अव्यय आश्चर्य हर्ष, शोक, स्वीकृति आदि भावों को प्रकट करता है और वाक्य से कोई संबध नहीं रखता उसे 'विस्मयादिबोधक' कहते हैं। आहा, बापरे, धिक्, छिः, धन्य-धन्य, ओहा, हाँ-हाँ, हरे-हरे,

राम-राम शिव-शिव आदि विस्मयादिबोधक हैं। इसका अन्वय इस प्रकार होता है—आहा ! आप आ गए !

आहा—विस्मयादिबोधक, हर्ष सूचित करता है।

### अभ्यास

राम राम ! क्या कहते हो ! वाह वा ! क्या कहना है ! अरे अरे, कहाँ चले ! इन वाक्यो के विस्मयादिबोधको का अन्वय कीजिए।

## शब्दों के भिन्न-भिन्न रूप से प्रयोग

कुछ शब्द ऐसे हैं जो वाक्यो में भिन्न-भिन्न रूपों मे आते हैं। इनका शब्दभेद जानने के लिए प्रयोग पर ध्यान देना चाहिए। नीचे एक ही शब्द का विभिन्न भेदों में प्रयोग करके दिखाया गया है—

| | |
|---|---|
| अच्छा—अच्छे आए। अच्छा, देखूँगा। | क्रियाविशेषण। |
| अच्छा काम अच्छा इनाम। | विशेषण। |
| अच्छों से पाला पड़ा है। | संज्ञा। |
| आगे—जैसा करोगे आगे भरोगे। | कालवाचक क्रिया विशेषण। |
| आगे बढो हम आते हैं। | स्थानवाचक क्रिया विशेषण। |
| घर के आगे पेड़ है। | सबंधबोधक अव्यय। |
| आगे मे क्या रखा है। | संज्ञा। |
| आज—मैं आज न जाऊँगा। | क्रिया विशेषण। |
| आज-आज कब तक करोगे। | सज्ञा। |
| उलटा—वह उलटा लटका है। | क्रियाविशेषण। |
| यह उलटी बात कहता है। | विशेषण। |
| दुख का उलटा सुख है | सबंधबोधक। |
| एक—एक-एक करके जाओ। | क्रियाविशेषण। |
| एक व्रत किया। | विशेषण। |
| एक गया एक आया। | संज्ञा। |
| इन आमों में एक भी मीठा नहीं है। | सर्वनाम। |
| ऐसा—एक समय ऐसा हुआ। | संज्ञा। |

| | |
|---|---|
| ऐसी बात न कहो। | विशेषण। |
| यह ऐसा कठिन नहीं है। | क्रियाविशेषण। |
| और—और काम करो। | विशेषण। |
| राम और मोहन। | समुच्चयबोधक। |
| आप और लिखें। | क्रियाविशेषण। |
| और करे अपराध कोउ और पाव फल भोग। | सर्वनाम। |
| और का और कर दिया। | संज्ञा। |
| कुछ—यह कुछ बुरा नहीं है। | क्रियाविशेषण। |
| यह गलती उनसे हुई है, कुछ आपसे नहीं। | समुच्चयबोधक। |
| कुछ बात है जरूर। | विशेषण। |
| कुछ जानते हो। | सर्वनाम। |
| केवल—केवल प्रस्ताव से कुछ न होगा। | क्रियाविशेषण। |
| ईश्वर और कुछ नहीं केवल भाव देखता है। | समुच्चयबोधक। |
| उसे प्रसन्न करने को केवल धन चाहिए। | विशेषण। |
| कोई—इसमें कोई सौ आम हैं। | क्रियाविशेषण। |
| कोई बात है जरूर। | विशेषण। |
| कोई पूछ न बैठे। | सर्वनाम। |
| क्या—तुमने क्या कहा? | सर्वनाम। |
| क्या चीज है? | विशेषण। |
| क्या पढ चुके? | क्रियाविशेषण। |
| जैसा—जैसा करोगे वैसा भरोगे। | संज्ञा। |
| जैसा काम वैसा दाम। | विशेषण। |
| मुझ-जैसा कौन है? | संबंधसूचक। |
| दोनों—दुविधा मे दोनों गए। | सर्वनाम। |
| दोनों भाई वीर हैं। | विशेषण। |
| प्रति—प्रतिवादी। | उपसर्ग। |
| इस पुस्तक की एक प्रति। | संज्ञा। |

| | | |
|---|---|---|
| | पिता के प्रति तुम्हारा कुछ कर्तव्य है। | संबंधबोधक। |
| यह— | मैं यह आ गया। | क्रियाविशेषण। |
| | यह कौन है? | सर्वनाम। |
| | यह बात कठिन है। | विशेषण। |
| साथ— | साथ-साथ चलो। | क्रियाविशेषण। |
| | किसके साथ गए थे। | संबंधबोधक। |
| | उसका साथ छोड़ दो। | संज्ञा। |
| हाँ— | उनकी तो जैसी हाँ वैसी ना। | संज्ञा। |
| | वह हाँ में हाँ मिलाता है। | संज्ञा। |
| इसलिए— | मैं इसलिए जाता हूँ कि मुझे काम है। | क्रियाविशेषण। |
| | वह दुखी है इसलिए दया करो। | समुच्चयबोधक। |
| की— | उसने तैयारी की। | क्रिया। |
| | उसकी तैयारी हो गई। | संबंधकारक की विभक्ति। |
| जो— | जो जागेगा सो पावेगा। | सर्वनाम। |
| | जो काम चाहो, करो। | विशेषण। |
| | उसकी मजाल नहीं जो जवाब दे। | समुच्चयबोधक। |

## उपसर्ग और प्रत्यय

कुछ ध्वनियाँ स्वतन्त्र रहकर तो अर्थ नहीं देतीं; पर दूसरे शब्द में जुड़कर नए अर्थवाला शब्द बना देती हैं। ऐसी ध्वनि को 'शब्दांश' कहते हैं। अनुकरण में 'अनु' और बड़ाई में 'ई' ऐसी ही ध्वनियाँ हैं। स्वतंत्र रूप से इन ध्वनियों का कभी प्रयोग नहीं होता। ये शब्दांश दो प्रकार के होते हैं—(१) उपसर्ग—जो शब्दांश किसी शब्द के शुरू में जुड़कर नए अर्थवाला शब्द बनाएँ; जैसे—अनुसरण में 'अनु'। (२) प्रत्यय—जो किसी शब्द के अंत में जुड़कर नए अर्थवाला शब्द बनाएँ; जैसे बड़ाई में 'ई'। नीचे कुछ उपसर्ग दिए जाते हैं—

| उपसर्ग | अर्थ | शब्द जिसमें जुड़ा | नया शब्द |
|---|---|---|---|
| अ | मना करना | पवित्र | अपवित्र |

| | | | |
|---|---|---|---|
| अति | ज्यादा | अंत | अत्यंत |
| अन् | मना करना | अंत | अनत |
| अनु | पीछे, समान | करण | अनुकरण |
| अव | हीनता | गुण | अवगुण |
| आ | विरोध | गमन | आगमन |
| उत् | उठना | कर्ष | उत्कर्ष |
| कु | बुरा | पुत्र | कुपुत्र |
| दुस् | कठिनाई | साहस | दुस्साहस |
| परा | विरोध | जय | पराजय |
| प्रति | प्रत्येकता | दिन | प्रतिदिन |
| वि | हीनता | योग | वियोग |
| वि | विशेषता | शुद्ध | विशुद्ध |
| स | सहित | विनय | सविनय |
| सम् | सयोग | बध | संबध |

## कृदंत

क्रिया के पीछे प्रत्यय जोड़ने से जो नया शब्द बनता है उसे 'कृदंत' कहते है। जैसे 'जाना' क्रिया में 'वाला' प्रत्यय लगकर 'जानेवाला' कृदंत बना। कृदत पॉच प्रकार के होते है—

१–कर्तृवाचक कृदत—जिससे क्रिया के करने वाले का अर्थ जाना जाय। कर्तृवाचक कृदत बनाने के लिए धातु या क्रिया के पीछे 'अक' ( पालक ), 'इया' ( धुनिया ), 'ऐया' ( बचैया ), 'वाला' ( मारनेवाला ), 'वैया' ( रखवैया ) ), 'हारा' ( जाननहारा ), 'हुआ' ( गया हुआ ), आदि प्रत्यय जोड़ देते हैं।

२–कर्मवाचक कृदंत—जो कर्म को प्रकट करता है। कर्मवाचक कृदत बनाने के लिए सकर्मक क्रिया के सामान्यभूत मे 'हुआ' ( लिखा हुआ )और स्त्रीलिंग मे 'हुई' ( लिखी हुई ) लगाते हैं।

३–करणवाचक कृदंत—जिनसे काम के साधन का पता चले।

करणवाचक कृदंत बनाने के लिए (क) कभी क्रिया का पूर्णरूप बनाते हैं—ओढ़ना; (ख) कभी धातु मे 'आ' जोड़ते हैं—झूला; (ग) कभी धातु में 'नी' लगाते हैं—फूकनी; (घ) कभी क्रिया के रूप में परिवर्तन करते हैं -झाड़न।

४—भाववाचक कृदंत—जो केवल भाव का बोध कराते हैं। भाववाचक कृदंत बनाने के लिए (क) कभी तो क्रिया के धातु को ही काम में लाते हैं—उतार, झपट; (ख) कभी क्रिया के सामान्य रूप के अंतिम 'आ' को 'अ' कर देते हैं—जगन; (ग) कभी धातु में 'आई' (हँसाई), 'आव' (बहाव), 'आवा' (बुलावा), 'वट' (लिखावट), 'हट' (चिल्लाहट), आदि प्रत्यय जोड़ देते हैं।

५—क्रियाद्योतक कृदत—जो क्रिया होने का अर्थ प्रकट करे। इसे बताने के लिए हेतुहेतुमद्‌भूत के रूप मे 'हुआ' प्रत्यय जोड़ देते हैं, जैसे—रोता हुआ।

विशेष—कृदंत संज्ञा और विशेषण दोनों का काम करते हैं।

## तद्धित

संज्ञा आदि शब्दों में प्रत्यय जोड़ने पर जो नया शब्द बनता है उसे तद्धित कहते हैं। 'मोटर' संज्ञा में 'वाला' प्रत्यय जुड़कर मोटरवाला तद्धित बना है। तद्धित ६ प्रकार के होते हैं—

१—कर्तृवाचक—जो किसी काम के करनेवाले के अर्थ दे। इसे बताने के लिए शब्दों मे 'हारा' (लकड़हारा), वाला (मोटरवाला), इया (खनिया) प्रत्यय लगाते हैं।

२—भाववाचक—जो भाव का बोध कराता है। इसे बताने के लिए ता (सज्जनता), त्व (वीरत्व), पा (बुढापा), पन (लड़कपन), हट (कड़वाहट), वट (सिलावट) आदि प्रत्यय जोड़ते हैं।

३—गुणवाचक—जो गुण प्रकट करता है। इसे बनाने के लिए आ (प्यासा), ऊ (बाजारू), हरा (इकहरा), ऐल (बिगड़ैल), ला (अगला), वत (कुलवंत), इया (चटपटिया),

ईला ( चमकीला ), ऐला ( बनैला ) गुना ( तिगुना ), आदि जोड़ते हैं।

४—न्यूनता या ऊनवाचक—जो लघुता या न्यूनता का बोध कराता है। इसे बनाने के लिए आ ( बबुआ ) टी ( लँगोटी ) री ( गठरी ), ड़ी ( पँखुडी ), ई ( रस्सी ) जोड़ते हैं।

५—स्त्रीवाचक—जो स्त्रीत्व का बोध कराता है। इसे बनाने के लिए ई ( देवी ), आ ( शिवा ) जोड्ते हैं।

६—अपत्यवाचक—संतानभाव का बोव कराता है। इसे बनाने के लिए ई ( बगाली ), ज ( स्वदेशज ) आदि जोड़ देते हैं।

### अभ्यास

प्रतिकूल, विजय, अनुकरण, अनुज, उपकार, उपसभापति—इन शब्दों के उपसर्ग निकालिए। पकज, पंखडी, पढ़ाई, लड़ाई, थकावट, सतगुना घबराहट—इन शब्दो के प्रत्यय निकालिए।

## समास

दो या अधिक शब्दो के मिलने से जब एक नया शब्द बनता है तो इस मेल को 'समास' और नए बने हुए शब्द को 'सामासिक शब्द' कहते हैं, जैसे—प्रेमसागर, राजमहल। सामासिक शब्द बनने पर बीच की विभक्तियों का लोप हो जाता है। ऊपर के शब्दो में बीच की 'का' विभक्ति का लोप हो गया है। सामासिक शब्दों के भाग करके उनका सबध समझाने को 'विग्रह' कहते हैं। उक्त शब्दो का विग्रह-होगा—प्रेम का सागर, राजा का महल। समास के ६ प्रकार हैं—

( १ ) अव्ययी-भाव—जिस समास मे पहला शब्द अव्यय हो और दूसरा सज्ञा, जैसे—प्रतिदिन, यथाशक्ति, समूल, निडर, हररोज।

विशेष—जब दो शब्द मिलकर एक हो जायँ और उनका रूप विभक्तियों में न बदले, तब भी अव्ययी-भाव समास होता है। जैसे—हाथोंहाथ, एकाएक, धड़ाधड, घरघर, बीचोबीच, कानोकान।

( २ ) तत्पुरुष—जिस समास में पहला शब्द कर्त्ताकारक को

छोड़कर किसी अन्य कारक का अर्थ दे। इसमें उत्तरपद प्रधान होता है ; जैसे समाजगत, विद्याहीन, गर्वशून्य, तुलसीकृत, मनमाना, रसभरी, मदमाता, हथकड़ी, रसोईघर, बंधनमुक्त, पदच्युत, राजगृह, ब्रजभाषा, गंगाजल, सुखसागर, लखपती, घुड़सवार, पुरुषोत्तम, कार्यकुशल, आपबीती।

( ३ ) कर्मधारय—जो समास विशेषण–विशेष्य और उपमान-उपमेय के मेल से बने ; जैसे—नीलकमल, सज्जन, घनश्याम, चंद्रमुख, नीलगाय, कालकोठरी, पर्णकुटी, लालमिर्च, परमपिता।

( ४ ) द्विगु—जिस समास में पहला पद सख्यावाचक हो ; जैसे—दुपहर, दुसेरो, नवरत्न, पंचतत्व, त्रिभुवन, चतुर्भुज, तिपाई, चौपाई, चौहट्टी, चौराहा, चौअन्नी।

( ५ ) बहुव्रीहि—जो समास अपने पदों के अर्थ से भिन्न किसी विशेष अर्थ को बताए। इस समास का विग्रह करने मे जो, जिसका, जिनमें से एक का प्रयोग करना पड़ता है, जैसे मिठबोला ( मीठा बोल है जिसका वह ), सतसाला ( सात हैं साल जिसके वह ), कनकटा (कान कटा है जिसका वह ), चंद्रमुख (चंद्रमा के समान मुख है जिसका वह)।

( ६ ) द्वंद्व—शब्दों को मिलानेवाले समुच्चयबोधक अव्यय के लोप होने से जो समास बने। इसमें दोनों पद समान होते हैं ; जैसे—माँबाप रातदिन, अन्नजल, कंद–मूल–फल, पापपुण्य, हाथपाँव, हाथापाई।

### अभ्यास

नीचे लिखे सामासिक पदों का विग्रह कीजिए और उनके नाम बताइये—निधड़क, देशनिकाला, आपबीती, सुखसागर, चौमासा, नवग्रह, चंद्रमुखी, मुखचंद्र, बहुभाषी, पापकर्म, राजारानी, कानोकान।

## वाक्य-विचार

शब्दों के जिस समूह से पूरा अर्थ समझ में आता है उसे 'वाक्य' कहते हैं। प्रत्येक वाक्य में एक कर्ता और एक क्रिया रहना आवश्यक है। शब्दों का वह समूह जिससे कुछ अर्थ तो समझ में आता है, पर

जिसमें क्रिया नहीं होती उसे 'वाक्यांश' कहते हैं, जैसे—राम का लड़का।
अर्थ के अनुसार वाक्य के आठ भेद होते हैं—

(१) विधानार्थक—जिसमें बात साधारण ढंग से कही गई हो; जैसे—घास लगी है। मै पत्र लिखता हूँ। (२) निषेधसूचक—जिसमें कोई काम का निषेध या अभाव बताया गया हो; जैसे—पौधा उखाड़ना ठीक नहीं है। यहाँ मत रहो। (३) आज्ञासूचक—जिसमे आज्ञा या उपदेश दिया गया हो; जैसे—फूल तोड़ लाओ। (४) इच्छासूचक—जिसमें मन की इच्छा बताई गई हो या आशीर्वाद दिया गया हो; जैसे ईश्वर तुम्हारा भला करे। (५) संदेहसूचक—जिसमे सदेह या संभावना बताई गई हो; जैसे—शायद वह आ जाय, सभव है, वह आता हो। (६) प्रश्नार्थक—जिसमें कोई प्रश्न किया गया हो; जैसे फूल क्यों तोड़ा? (७) सकेतार्थक—जिसमे वचन, शर्त या कारण का सकेत रहे; जैसे—यदि वह परिश्रम करेगा तो अवश्य पास होगा। (८) विस्मयार्थक—जिसमें हर्ष, विस्मय, घृणा, शोक आदि मन के भावों को प्रकट किया गया हो; जैसे—हाय! बुरा हुआ!

अर्थ का ध्यान रखते हुए इन वाक्यों का परिवर्तन भी हो सकता है। इससे भाव स्पष्ट करने में बड़ी सहायता मिलती है। उदाहरण—

विधानार्थक—भारत निर्धन देश है।
निषेधार्थक—भारत धनी देश नहीं है।
विधानार्थक—मै तुम्हें यहाँ आने को मना कर रहा हूँ।
आज्ञार्थक—यहाँ मत आओ।
विधानार्थक—मै ईश्वर से तुम्हारी रक्षा के लिए प्रार्थी हूँ।
इच्छार्थक—ईश्वर तुम्हारी रक्षा करे।
विधानार्थक—यहाँ का दृश्य बड़ा रमणीय है।
विस्मयार्थक—अहा! कैसा रमणीय दृश्य है!
प्रश्नार्थक—क्या तुम्हें झूठ बोलना उचित था?
निषेधार्थक—तुम्हें झूठ नहीं बोलना चाहिए था।

## वाक्य-विभाग

प्रत्येक वाक्य के दो भाग होते हैं—( १ ) उद्देश्य—वाक्य मे जिसके सबंध में कुछ कहा जाय—मेरा लड़का कमरे में अपनी पुस्तक पढ रहा है—इस वाक्य में 'मेरा लड़का' उद्देश्य है; क्योंकि इसी के संबंध में कुछ बात कही जा रही है। ( २ )—वाक्य में उद्देश्य के, सबंध में जो कुछ कहा जाय। ऊपर के वाक्य में लड़के के संबंध में कहा गया है—कमरे मे पुस्तक पढ़ रहा है—यह विधेय है।

उद्देश्य के दो भाग होते हैं—( १ ) कर्त्ता या मुख्य उद्देश्य—जिस शब्द के बिना उद्देश्य बन ही न सके। ऊपर के वाक्य में 'लड़का' मुख्य उद्देश्य है, क्योंकि इसके न रहने पर उद्देश्य अपना काम कर नहीं सकता। ( २ ) कर्तृ विशेषण—जो शब्द मुख्य उद्देश्य की विशेषता बताते हों। ऊपर के वाक्य मे 'मेरा' कर्तृ विशेषण है। इस शब्द से लड़के के बारे में विशेष बात मालूम होती है।

वाक्य में मुख्य उद्देश्य के रूप में ये शब्द आ सकते हैं—( क ) सज्ञा—लड़का पढ रहा है। ( ख ) सर्वनाम—वह पढ़ रहा है। ( ग ) विशेषण—( जो संज्ञा की तरह प्रयुक्त हुआ हो ) वीर युद्ध में डटा रहा। ( घ ) क्रियार्थक—पढना आवश्यक है। ( ङ ) वाक्यांश—घर का घर पढ रहा है।

वाक्य में मुख्य उद्देश्य की विशेषता बताने वाले कर्तृ विशेषण के रूप में ये शब्द आ सकते हैं—( क ) विशेषण—वह लड़का। बड़ा आदमी ( ख ) सबंधकारक के शब्द—राम का भाई, मोहन की पुस्तक। ( ग ) समानाधिकरण शब्द—मोहन, राम का मित्र, आ गया। कल्लू कहार कहाँ है ? पुतुआ धोबी ने इनाम माँगा। ( घ ) वाक्यांश—खोई हुई पुस्तक। कही हुई बात।

विशेष—समानाधिकरण मुख्य उद्देश्य के बाद आता है। विभक्ति भी इसी मे लगती है। 'पुतुआ धोबी ने'—इसमें 'ने' विभक्ति 'धोबी' शब्द के साथ लगी है।

विधेय के मुख्य पाँच भाग हो सकते हैं—

( १ ) क्रिया—जिस शब्द के बिना विधेय बन ही न सके—वह लड़का अपनी पुस्तक बड़ी देर से पढ़ रहा है—इस वाक्य में 'पढ़ रहा है' क्रिया है। विधेय का सबसे मुख्य भाग 'क्रिया' ही है। इसके न होने से वाक्य बन ही नही सकता। कभी-कभी केवल एक क्रिया ही वाक्य के रूप में प्रयुक्त होकर पूरा अर्थ दे देती है; जैसे—चलिए। इस क्रिया का कर्त्ता ( आप ) छिपा हुआ है।

( २ ) विधेय-विस्तारक—जो शब्द क्रिया की विशेषता बताते हैं। ऊपर के वाक्य में 'बड़ी देर से' विधेय-विस्तारक है। विधेय-विस्तारक के रूप में ये शब्द आ सकते हैं—( क ) क्रियाविशेषण—बड़ी देर से पढ रहा है। धीरे पढ़ो। ( ख ) करणकारक—पुस्तक में से पढो क़लम से लिखो। ( ग ) अपादानकारक—वृक्ष से गिरा। राम मोहन से अच्छा है। ( घ ) अधिकरणकारक—कमरे में पढ़ो। छत पर खेलो। ( ङ ) पूर्वकालिक क्रिया—पढ कर सोया। ( च ) क्रियाद्योतक कृदंत—पढता हुआ आया।

( ३ ) कर्म—सकर्मक क्रिया के कार्य का फल जिस पर पड़े। कम के रूप में ये शब्द आ सकते हैं—( क ) संज्ञा—उसने संदूक बनाया। पुस्तक पढी। ( ख ) विशेषण—परिश्रमी को कोई रोक नहीं सकता। ( ग ) सर्वनाम—वह मुझको जानता है। क्रियार्थक—कौन पढ़ना नहीं चाहता ? ( ङ ) वाक्यांश—मोहन की दशा देखो।

( ४ ) कर्म का विशेषण—जो शब्द कर्म की विशेषता बताते हों। विशेषण के रूप में ये शब्द आ सकते हैं—( क ) विशेषण—सुंदर पुस्तक पढ रहा है। ( ख ) संबंधकारक—उसने मोहन की पुस्तक पढ़ी। ( ग ) सामानाधिकरण—मैंने पुतुआ धोबी को बुलाया। ( घ ) वाक्यांश—मैंने बाग में लगा हुआ लाल फूल तोड़ा।

( ५ ) सविशेषण पूरक—अपूर्ण क्रिया का अर्थ पूरा करने के लिए आने वाले शब्द। पूरक के रूप में ये शब्द आ सकते हैं—

( क ) संज्ञा—मोहन 'मेरा भाई' है। ( ख ) विशेषण—मोहन 'बहुत अच्छा' है।

## वाक्य-विग्रह

जिस रीति से वाक्य के उद्देश्य, विधेय और उसके भागों को अलग-अलग किया जाता है उसे 'वाक्य-विग्रह', 'वाक्य-विच्छेद', 'वाक्य-विश्लेशण' या 'वाक्यान्वय' कहते हैं।

( १ ) राम, मोहन का भाई, मैदान में बड़ी गेंद खेल रहा है।

( २ ) वह वर्षों से बहुत अच्छा खेलता है।

इन दो वाक्यों का विग्रह इस प्रकार होगा—

| उद्देश्य | | विधेय | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| मुख्य उद्देश्य | कर्तृ विशेषण | क्रिया | कर्म | कर्म-विशेषण | सविशेषण पूरक | विधेय-विस्तारक |
| ( १ ) राम | मोहन का भाई | खेल रहा है | गेंद | बड़ी | × | मैदान में |
| ( २ ) वह | × | खेलता है | × | × | बहुत अच्छा | वर्षों से |

कुछ वाक्य ऐसे होते हैं, जिनमें केवल एकही उद्देश्य और एक ही विधेय रहता है। इस तरह के वाक्यों को 'सरल वाक्य' कहते हैं।

दूसरे प्रकार के वाक्य वे होते हैं जिनमें एक से अधिक उद्देश्य और एक से अधिक विधेय हों। कलम, जो मैं लाया था, टूट गया। यहाँ दो उद्देश्य हैं—( क ) कलम ( ख ) मैं। इसी तरह दो विधेय हैं—( क ) टूट गया ( ख ) लाया था। अतः यहाँ एक बड़े वाक्य में दो 'छोटे वाक्य' हैं— ( क ) कलम टूट गया ( ख ) जो मैं लाया था। इन छोटे वाक्यों को 'उपवाक्य' कहते हैं।

उपवाक्य—जिन छोटे-छोटे वाक्यों से मिलकर एक पूरा वाक्य बनता है। मोहन, जो राम का भाई है, खेल रहा है—यह पूरा वाक्य इन दो उपवाक्यों से मिलकर बना है—( १ ) मोहन खेल रहा है ( २ ) जो राम का भाई है।

विशेष—उपवाक्य में एक उद्देश्य और एक क्रिया रहना आवश्यक है। कभी-कभी उद्देश्य तो छिपा रहता है पर क्रिया के न होने पर उपवाक्य बन ही नहीं सकता—राम आया और चला गया। यहाँ 'चला गया' क्रिया का कर्ता—'वह' छिपा हुआ है। इसलिए वाक्य में जितनी क्रियाएँ होती हैं उतने ही उपवाक्य भी होते हैं।

उपवाक्य दो प्रकार के होते हैं—( १ ) मुख्य ( प्रधान) उपवाक्य—वाक्य में जो उपवाक्य सबसे अधिक महत्व का हो और जिसके हटा देने से वाक्य के पूरे अर्थ में कुछ कमी जान पड़े। ऊपर के वाक्यों में 'कलम टूट गया' और 'मोहन खेल रहा है', प्रधान उपवाक्य हैं। कारण यदि इन्हें निकाल दिया जाय तो वाक्य का पूरा अर्थ नहीं समझ सकते।

( २ ) आश्रित-उपवाक्य—जो उपवाक्य अर्थ पूरा करने में प्रधान उपवाक्य की सहायता करता है या प्रधान उपवाक्य के किसी शब्द की विशेषता बताता है। ऊपर के वाक्यों में 'जो मैं लाया था' और 'जो राम का भाई है'—ये आश्रित उपवाक्य हैं, क्योंकि पहला अपने प्रधान उपवाक्य के 'कलम' शब्द की, और दूसरा, अपने प्रधान उपवाक्य के 'मोहन' शब्द की विशेषता बताता है।

विशेष—वाक्य में उपवाक्यों की संख्या निश्चित नहीं होती। एक से लेकर दस बारह से अधिक उपवाक्य तक एक वाक्य में हो सकते हैं। साधारण रूप से आश्रित उपवाक्यों की संख्या ही अधिक होती है; पर कुछ वाक्य ऐसे भी होते हैं जिनमें प्रधान उपवाक्य भी एक से अधिक रहते हैं। ये 'समानाधिकरण' कहलाते हैं।

समानाधिकरण—जो उपवाक्य प्रधान या आश्रित दोनों के समान ही महत्त्व के होते हैं। इस प्रकार के उपवाक्य प्रधान और आश्रित

दोनों के अलग-अलग समानाधिकरण हो सकते हैं। प्रधान के समानाधिकरण का उदाहरण—राम आया और कुछ देर पढ़ कर सो गया। 'राम आया' प्रधान उपवाक्य है 'और कुछ देर पढ़कर (वह) सो गया' उसका समानाधिकरण है। आश्रित उपवाक्य के समानाधिकरण का उदाहरण—मोहन जो राम का भाई है, और पक्का खिलाड़ी है, कल बाहर चला गया। यहाँ 'जो राम का भाई है' आश्रित उपवाक्य है और '(वह) पक्का खिलाड़ी है' उसका समानाधिकरण है—

आश्रित उपवाक्य तीन तरह के होते हैं—

(१) संज्ञा उपवाक्य—जो संज्ञा-सर्वनाम का काम करे। यह उपवाक्य कई रूपों में आता है। (क) कर्त्ता बनकर—वह सच्चा है, यह ठीक है। (ख) कर्म बन कर—राम ने कहा कि मैं जाता हूँ। (ग) पूरक बन कर—मेरी राय है कि वह चला जाय। (घ) संज्ञा के स्थान पर—यह 'बात' ठीक है कि वह चला गया। इस वाक्य में वह चला गया—'बात' संज्ञा के स्थान पर आया है। संज्ञा उपवाक्य प्रायः 'कि' से आरम्भ होता है।

(२) विशेषण उपवाक्य—जो संज्ञा या सर्वनाम की विशेषता बताता है। वह जो वीर है युद्ध से नहीं डरता। इस वाक्य में 'जो वीर है'–'वह' सर्वनाम की विशेषता बताता है। विशेषण उपवाक्य प्रायः 'जो' 'जिससे' 'जिसको' 'जिसे' आदि से आरम्भ होता है।

विशेष—हिन्दी और अंग्रेजी के विशेषण-उपवाक्यों की रचना में भेद होता है। अंग्रेजी में लिखते हैं—वे लोग ही जो घर में रहते हैं, सुखी हैं। हिन्दी में इस वाक्य को प्रायः इस ढंग से लिखते हैं—जो लोग घर में रहते हैं, वे ही सुखी हैं। अतः हिन्दी में विशेषण उपवाक्य का विशेष्य उसके साथ ही रहता है। ऊपर के वाक्य में 'जो घर में रहते हैं' विशेषण उपवाक्य है, और विशेष्य 'लोग' है।

(३) क्रियाविशेषण उपवाक्य—जो क्रिया की विशेषता बताता और क्रियाविशेषण का काम करता है। 'जब आते हो', यही करते

हो। 'जहाँ जाओ', सावधानी से रहो। 'ज्यों-ज्यों मैंने परीक्षा ली', वह असफल ही रहा। बाहर न जाओ, 'क्योंकि लू चल रही है'—आदि वाक्यों में कामा ( ' ' ) अंश वाले शब्द क्रिया विशेषण का काम कर रहे हैं। यह उपवाक्य प्रायः 'क्योंकि', 'यदि', 'यद्यपि', 'चाहे', 'जब' 'जहाँ', 'जैसे', 'ज्यों-ज्यों' आदि से आरम्भ होता है।

वाक्यों के बीच में कभी-कभी ऐसे उपवाक्य आ जाते हैं जो विषय से सम्बन्ध रखते हुए भी सर्वथा स्वतंत्र रहते हैं। ऐसे उपवाक्यों को 'गर्भित उपवाक्य' कहते हैं। जब से वह गया तब से न जाने क्यों—ईश्वर खैर करे—मेरा मन बहुत खिन्न हो गया है। इस वाक्य में 'ईश्वर खैर करे' गर्भित उपवाक्य है।

रचना के अनुसार वाक्य तीन प्रकार के होते हैं।

( १ ) सरल वाक्य—जिसमें केवल एक उद्देश्य और एक विधेय हो, जैसे—वह जा रहा है। हम पुस्तक पढ़ रहे हैं।

( २ ) मिश्रित वाक्य—जिसमें केवल एक प्रधान उपवाक्य हो और शेष उसके आश्रित हों। वह मनुष्य जिसने मुझे बताया था और घर तक पहुँचा दिया था, बहुत भला है। इस वाक्य में प्रधान उपवाक्य केवल एक है—वह मनुष्य भला है। शेष दो उपवाक्य ( क ) जिसने मुझे बचाया था और ( ख ) ( जिसने मुझे ) घर तक पहुँचा दिया था—प्रधान के आश्रित हैं।

( ३ ) संयुक्त वाक्य—जिसमें एक से अधिक प्रधान उपवाक्य हों। मोहन आया और खा-पीकर सो गया—इस वाक्य में ( क ) मोहन आया, और ( ख ) ( वह ) खा पीकर सो गया—ये दोनों उपवाक्य समान महत्व के ही हैं। अतः समानाधिकरण होने के कारण दोनों प्रधान हैं।

विशेष—मिश्रित और संयुक्त वाक्यों में मुख्य अंतर यह है कि प्रथम में केवल एक उपवाक्य प्रधान रहता है और शेष उपवाक्य आश्रित रहते हैं; परन्तु संयुक्त वाक्य में एक से अधिक प्रधान उपवाक्यों

का होना आवश्यक है, आश्रित उपवाक्य चाहें रहें या न रहें।

संयुक्त और मिश्रित वाक्यों के उपवाक्य छाँटकर उनका पारस्परिक संबंध बताना 'विग्रह' कहलाता है। इन वाक्यों का विग्रह करते समय पहले 'क्रिया' शब्द निकालना चाहिए, फिर उनके उद्देश्य या कर्त्ता। ध्यान रखना चाहिए कि वाक्य मे जितने क्रिया शब्द होंगे उतने ही उपवाक्य भी होंगे। पश्चात्, इस प्रकार वाक्य-विग्रह करना होगा—

( १ ) राम ने, जो मेरे घर में रहता है, कहा—जब मै चला जाऊँ, तुम भी आ जाना। ( २ ) राम मेरे पास आया और बोला—मैं जाता हूँ, तुम भी आना।

( क ) राम ने कहा—प्रधान उपवाक्य।

( ख ) मेरे घर रहता है—विशेषण उपवाक्य, प्रधान के आश्रित, 'राम' की विशेषता बताता है।

( ग ) जब मैं चला जाऊँ—क्रियाविशेषण उपवाक्य, प्रधान के आश्रित, समय बताता है।

( ख ) ( तब ) तुम भी आ जाना—संज्ञा उपवाक्य, प्रधान के आश्रित, "कहा' क्रिया का कर्म है।

यह वाक्य मिश्रित है।

( क ) राम मेरे पास आया—प्रधान उपवाक्य, ।

( ख ) और ( वह ) बोला— प्रधान का समानाधिकरण।

( ग ) मैं जाता हूँ—संज्ञा उपवाक्य ( ख) के आश्रित। 'बोला' क्रिया का कर्म है।

( घ ) तुम आना ( ग ) का समानाधिकरण।

यह वाक्य संयुक्त है।

विशेष—विश्लेषण करते समय उपवाक्यों को पूरा-पूरा लिखना चाहिए। उपवाक्यो को पूरा करने के लिए यदि किसी शब्द की आवश्यकता हो तो उसे कोष्टक में लिख देना चाहिए। प्रथम वाक्य के ( घ ) उपवाक्य में ( तब और दूसरे वाक्य के ( ख ) उपवाक्य

में (वह) शब्द इसी तरह लिखे गए हैं।

## अभ्यास

अर्थ के अनुसार वाक्य के कौन-कौन भेद होते हैं? प्रत्येक के पाँच-पाँच उदाहरण दीजिए। उद्देश्य और विधेय किसे कहते हैं? अपने चुने हुए वाक्यों के उद्देश्य और विधेय निकालिए और उनका विग्रह कीजिए। अपनी गद्य-पुस्तक में पाँच संयुक्त और पाँच मिश्रित वाक्य छाँटिए और उसका विग्रह कीजिए।

———

# ( २ ) निबंध-रचना

किसी विषय के सम्बन्ध मे क्रमबद्ध रूप से प्रकट किये हुए विचार 'लेख' कहलाते हैं। 'निबंध', 'प्रबंध' इत्यादि शब्द लेख के ही पर्याय वाची हैं। लेख के मुख्य तीन अग हैं—विचार, भाषा और लिखने का ढग या शैली। लेख की सबसे प्रधान विशेषता है विचारों का क्रमबद्ध संगठित रूप मे प्रकट किया जाना। इसका आशय यह है कि जो बातें पहले लिखने की हैं वे पहले लिखी जायँ और जो बाद मे लिखने की हैं वे बाद मे। उदाहरण के लिए गाय पर निबंध लिखना है। इसका आरम्भ इस तरह करना होगा जैसे आप किसी ऐसे व्यक्ति को गाय के संबध मे जानकारी की बातें बतला रहे हैं जो गाय से अपरिचित है। आरभ मे उसके रूप-रग, आकृति-प्राकृति का वर्णन करना होगा पश्चात्, उसके स्वभाव इत्यादि का। गाय के रहन-सहन का ढंग, भोजन; की चीजे, उससे होने वाले लाभ इत्यादि इसके बाद लिखे जायँगे। इस तरह लिखा हुआ लेख क्रमबद्ध होगा। पर यह क्रम बदल देने से; पीछे की बातें पहले और पहले की बाते पीछे लिखने से, लेख मे क्रमहीनता—सिलसिलेवार न होने—का दोष आ जाता है।

विचारों के प्राय: तीन भाग किए जा सकते हैं—प्रारंभिक विचार मध्यभाग, अतिम विचार।

(१) प्रारम्भिक विचार—इसे 'प्रस्तावना', 'भूमिका' अथवा 'विषय-प्रवेश' कहते हैं। इस भाग का सीधा संबंध विषय से नहीं होता; क्योंकि प्रारंभिक विचार का मुख्य उद्देश्य पाठकों का ध्यान लेख की ओर आकर्षित करना है। सभी व्यक्तियों की रुचि और संस्कार भिन्न होते हैं। इसलिए उनको आकृष्ट करने के उपाय भी अलग होना

चाहिए। प्रारम्भिक विचार लिखने का पहला ढग सीधे विषय को आरंभ कर देना है। इसमें लेखक भूमिका नहीं लिखता। उदाहरण—

(क) घर, प्यारा घर—आखिर यह इतना प्यारा क्यों है ? जिसे देखिए पैर बढ़ाए घर का रास्ता नाप रहा है। जब घर से दफ्तर जाना पड़ता है तो जल्दी-जल्दी करते हुए भी देर हो जाती है , मगर न जाने क्यों बड़े साहब इतनी देर तक आफिस में डटे रहते हैं ? देखिए पाँच बजने ही वाले हैं, लेकिन ये फाइल मँगवा रहे हैं। इन्हें क्या है, पाँच मिनट में फुर्र से घर जा पहुँचेंगे—मोटर जो है न, और हमें तो काले कोस जाना है ; घर पहुँचने में कितनी देर हो जायगी।

अरे भाई मजदूर ! हाथ-मुँह धोकर चिलम सम्हाले अभी से कहाँ जाने को तैयार हो गए ? ऐसे ही मजदूरी की जाती है ? बड़े अनोखे बेलदार हो ? क्या घर जाने के लिए मजदूरी दी जाती है ? और यह क्या ? लड़कों ! मैं तो पढ़ा रहा हूँ न ! घटी बज गई तो क्या दन्त और मूर्धन्य के अक्षर मेरे पेट में कब्र बनायेंगे जो किताब बंद कर दरवाजे की तरफ नजर दौड़ाने लगे ? घर पाँच मिनट देर से ही पहुँचे तो क्या ?

यह लीजिए—जो कुछ है, घर ले जा रहे हैं। टेबुल, कुरसी, चारपाई, कघा-शीशा, आटा-दाल, नमक-मिर्च, घी-तेल, गुड़-शकर, लोटा-थाली, पान-तमाखू, कपड़ा-लत्ता, सब कुछ घर मे जायगा। बाजार में लाखों चीजें हैं और लाखों औरत-मर्द बाजार कर रहे हैं, पर ये सब घर में समा जायेंगे और फिर दिल्लगी यह कि सब घर का ही रोना रो रहे हैं। लड़की की शादी है तो घर अच्छा चाहिए, वर की तो बात ही नहीं। लड़का अच्छे घर व्याहा जाय, इसी की तलाश है। घर चाहिए घर। तीसरे-चौथे तल्ले पर किराए की अँधेरी कोठरी है तो घर है, दो-चार टेढ़े-मेढ़े डडे, पत्तों और फूस से ढक दिए गए हैं, फिर भी घर है। सड़क से गुजरते हैं तो घर है, गलियो में घुसते हैं तो घर है, अपना है तो घर है, पराया है तो घर है, जेलखाना भी बड़ा घर है, और साढ़े तीन हाथ का घर तो सबका घर है जिसके लिए कबीर साहब ने

कहा है—कहा चुनावै मेड़िया, लाँबी भीत उसारि ।
घर तो साढ़े तीन हथ, घणा तो पौने चारि ॥

—रमाशंकर शुक्ल

( ख ) मित्रता—जब कोई युवा पुरुष अपने घर से बाहर निकलकर बाहरी संसार में अपनी स्थिति जमाता है तब पहली कठिनता उसे मित्र चुनने में पड़ती है। यदि उसकी स्थिति बिल्कुल एकांत और निराली नहीं रहती तो उसकी जान-पहचान के लोग धड़ाधड़ बढ़ते जाते हैं और थोड़े ही दिनों में कुछ लोगों से उसका हेल-मेल हो जाता है । यही हेल-मेल बढ़ते-बढ़ते मित्रता के रूप में परिणत हो जाता है। मित्रों के चुनाव की उपयुक्तता पर उसके जीवन की सफलता निर्भर हो जाती है; क्योंकि संगत का गुप्त प्रभाव हमारे आचरण पर बड़ा भारी पड़ता है। —रामचंद्र शुक्ल

( ग ) सच्ची वीरता—सच्चे वीर पुरुष, धीर, गंभीर और आजाद होते हैं। उनके मन की गंभीरता और शांति समुद्र की तरह विशाल और गहरी या आकाश की तरह स्थिर और अचल होती है। वे कभी चंचल नहीं होते। रामायण मे वाल्मीकिजी ने कुंभकरण की गाढ़ी नींद में वीरता का एक चिन्ह दिखलाया है।। सच है, सच्चे वीरों की नींद आसानी से नहीं खुलती। वे सत्वगुण के क्षीर-समुद्र में ऐसे डूबे रहते हैं कि उनको दुनिया की खबर ही नहीं होती। वे संसार के सच्चे परोपकारी होते हैं। ऐसे लोग दुनिया के तख्ते को अपनी आँख की पलकों से हलचल मे डाल देते हैं। जब ये शेर जागकर गर्जते हैं तब सदियों तक उनकी आवाज की गूँज सुनाई देती रहती है और सब आवाजें बंद हो जाती हैं। वीर की चाल की आहट कानो में आती रहती है और कभी मुझे और कभी तुझे मदमत्त करती है। कभी किसी की और कभी किसी की प्राण-सारंगी वीर के हाथ से बजने लगती है।

—सरदार पूर्णसिंह

ऊपर के तीनों अवतरणों मे विद्वान लेखको ने विषय ज्यों का त्यों

अपना लिया है। विषय-प्रवेश का ढंग ऐसा है कि पहला वाक्य पढते ही आगे बढ़ने की इच्छा मन में पैदा होती है। लेख इस कुशलता से आरंभ किया जाता है कि पाठक के मन में पढ़ने की उत्सुकता जाग ही जाती है। इस तरह सीधे विषय पर आ जानेवाले इस ढग को अपनाते समय इतना ध्यान रहे कि लेख में शिथिलता न आ जाय। इस ढग से जो लेख लिखे जायँ उनके प्रथम परिच्छेद में उसी प्रकार की रोचकता रहनी चाहिए, जैसी भूमिकावाले निबधों में रहती है।

प्रारम्भिक विचारों को प्रकट करने का दूसरा ढंग वह है जिसमें विषय को सीधे न छूकर लेख लिखनेवाला भूमिका बाँधता है। विषय से घना सबध रखनेवाले किसी शब्द या विचार को वह इस तरह समझाता है कि पाठक का ध्यान उसके लेख की ओर आकर्षित हो जाता है। उदाहरण—

(क) संतो की सहिष्णुता—भारतवर्ष वही था जहाँ हमने शताब्दियों तक राज्य किया था। हमारे शरीर मे रक्त भी उन्हीं जगद्विजयी पूर्वजों का था, हमारे घर और बाहर के टीम-टाम भी वैसे ही थे। श्रावण में हम रक्षा-बधन बाँधते थे, लेकिन उसी राखी में हिन्दू जाति को एक मे गूँथ देने की शक्ति बाकी नहीं रह गई थी। रामलीला हम बदस्तूर मानते थे, लेकिन हमारे राम-बाण में इतना बल कहाँ कि अत्याचारी रावण के दस सिर वेधन कर फिर वापस आ जाते। दिवाली हम करते थे, लेकिन हमारे दीपकों मे वह प्रकाश नहीं था जो ससार की आँखो को चकाचौंध कर देता था। होली भी हम रो-पीटकर करते ही थे, लेकिन हमारा गुलाल आर्य जाति को राष्ट्रीयता के रंग में रँगने में समर्थ नहीं था। जन्माष्टमी मे भगवान का जन्मोत्सव मनाते थे, लेकिन वह प्रचड ज्योति कहाँ, जिसके देखते-देखते परतन्त्रता की बेड़ियाँ टूटकर गिर जायँ; वे चरण कहाँ जिनके छूने से हमारे सकट की सरिता सूख जाय! वह मोहन की मूर्ति कहाँ जिसकी तान हमें देश-ममता के

मद में मस्त कर देती ! हिंदू-जाति निष्प्राण हो गई थी, केवल बाहरी ढाँचा रह गया था। भला उससे मुगल लोग या कोई भी कैसे डरने लगे ? इसलिए हम पर आघात पर आघात हुए। अत्याचार की सिल पर बेईमानी के बट्टे से नवधा भक्ति में मग्न हिंदू पीसे गए। इनको रगड़कर नौरतन की चटनी बनाई गई। —मन्नन द्विवेदी

( ख ) भारतीय चित्रकला—कविता, संगीत, चित्रकला और मूर्ति-निर्वाण-विद्या की गिनती ललित कलाओं में है। असभ्य, अशिक्षित, और असंस्कृत देशों में इन कलाओं का उत्थान नहीं होता। जिन कृतविद्य और शिक्षा-सपन्न देशो के निवासियों के हृदय, मानवीय विकारों के अनुभव से, संस्कृत और सुमार्जित हो जाते हैं, वे ही इन कलाओं के निर्माता की ओर आकृष्ट होते और वे ही इनके परमानंद की प्राप्ति भी कर सकते हैं। परंतु ऐसे देशों में एक प्रकार के और भी सौभाग्यशाली जन जन्म पाते हैं जो इन कलाओं के ज्ञाताओं और निर्माण- कर्ताओं से भी अधिक सरस हृदय होते हैं। वे इन कलाविदों की कृतियों से कभी-कभी उस अलौकिक आनंद की प्राप्ति करते हैं जो सृष्टि करनेवालों को भी नसीब नहीं। वे व्यक्ति कलावेत्ताओं के द्वारा निर्मित कलाओं के नमूनों में ऐसी बारीकियाँ खोज निकालते हैं जिनका अनुभव स्वयं निर्माताओं को भी नहीं होता, इतर जनों की तो बात ही नहीं। मनुष्य हृदय के सूक्ष्मातिसूक्ष्म तथा गुप्त भावों को हृदयगम करनेवाले ये पिछले भव्यभावुक धन्य हैं। इनके संवेद्य भावों का यथेष्ट अभिनदन इन्हींके समक्ष अन्य सहृदय सज्जन कर सकते हैं दूसरे नहीं।

—महावीरप्रसाद द्विवेदी

( ग ) समाज और साहित्य—ईश्वर की सृष्टि विचित्रताओं से भरी हुई है। जितना ही इसे देखते जाइए, इसकी छानबीन करते जाइए, उतनी ही विचित्रता की नई नई सृ खलाएँ मिलती जायँगी। कहाँ एक छोटा सा बीज और कहाँ उससे उत्पन्न एक विशाल वृक्ष। दोनों मे कितना अंतर है और फिर दोनो का कितना घनिष्ट संबंध,

तनिक सोचिए तो सही एक छोटे से बीज के गर्भ में क्या भरा हुआ है। उस नाम मात्र के पदार्थ में एक बड़े से बड़े वृक्ष को उत्पन्न करने की शक्ति है, जो समय पाकर पत्र, पुष्प और फूल से सम्पन्न होकर वैसे ही अगणित बीज उत्पन्न करने में समर्थ होता है, जैसे बीज से उसकी स्वयं उत्पत्ति हुई थी। सब बातें विचित्र, आश्चर्यजनक और कुतूहल, वर्द्धक होने पर भी किसी शासक द्वारा निर्धारित नियमावली से बद्ध हैं। सब अपने-अपने नियमानुसार उत्पन्न होते, बढ़ते, पुष्ट होते और अंत में उस अवस्था को प्राप्त हो जाते हैं जिसे हम मृत्यु कहते हैं। पर वही उनकी समाप्ति नहीं है, वहीं उनका अंत नहीं है। वे सृष्टि के कार्य-साधन में निरंतर तत्पर हैं। मर कर भी वे सृष्टि-निर्माण में योग देते हैं। यों ही वे जीते-मरते चले जाते हैं। इन्हीं सब बातों की जाँच विकासवाद का विषय है। यह शास्त्र हमको इस बात की छानबीन में प्रवृत्त करता है और बतलाता है कि कैसे संसार की सब बातों की सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप से अभिव्यक्ति हुई, कैसे क्रम-क्रम से उनकी उन्नति हुई और किस प्रकार संकुलता बढ़ती गई। —श्यामसुंदरदास

ये तीनों अंश लेख की भूमिका के रूप में लिखे गए हैं। इन तीनों के लेखक प्रसिद्ध विद्वान और निबंध-लेखक हैं। विद्यार्थियों को ऐसी भूमिका लिखने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। प्रथम लेख की भूमिका एक पृष्ठ की, द्वितीय की तीन और तृतीय की दो पृष्ठ की है। विद्यार्थियों के तो पूरे लेख भी प्रायः तीन पृष्ठ के नहीं होते; ऐसी दशा में लंबी भूमिका लिखना कहाँ तक उचित है, वे स्वयं ही सोच लें। हाँ, चार-पाँच वाक्यों को भूमिका-रूप में लिखने से अगर उनका काम चल जाय तो कोई आपत्ति की बात नहीं है।

भूमिका लिखते समय ध्यान में रखने की सबसे बड़ी बात यह है कि इसका सीधा-संबंध तो विषय से चाहे न हो, पर प्रथम वाक्य ही विषय की ओर परोक्ष संकेत करने वाला हो और धीरे-धीरे चार पाँच वाक्यों में ही लेखक को अपने विषय पर आ जाना चाहिए। विषय से

बाहर रहकर लम्बी भूमिका बाँधने के चक्कर में पड़ जाने से लेख प्रायः बिगड़ जाता है। इसलिए कुशल लेखक भूमिका लिखते समय बड़ी सावधानी से विषय की ओर ही बढ़ते रहते हैं।

लेख का आरम्भ लिखने का तीसरा ढंग अत्यन्त रोचक और प्रभावशाली है। इनमें ऊपर के दोनों ढगों का मेल सा रहता है। लेखक भूमिका भी बाँधता है और विषय पर भी साथ ही साथ आ जाता है। उदाहरण—

( क ) बुढ़ापा—लड़कपन के खो जाने पर उन्मत्त जवानी फूल फूलकर हँस रही थी, बुढ़ापे के पाने पर फूट-फूटकर रो रही है। उस 'खोने' में दुख नहीं, सुख था, सुख ही नहीं स्वर्ग भी था। इस 'पाने' में सुख नहीं, दुख है; दुख ही नहीं, नरक भी है! लड़कपन का खोना—वाह! वाह!! बुढ़ापे का पाना—हाय! हाय!!

कौन कहता है कि जीवन का अर्थ उत्थान है, सुख है, हा हा हा हा? यह सब सुफैद झूठ है, कोरी कल्पना है, धोखा है, प्रवंचना है। मुझसे पूछो। मेरे तीन सौ पैंसठ लंबे लबे दिनों और लंबी लबी रातोंवाले—एक, दो, दस, बीस नहीं—साठ वर्षों से पूछो। मेरे कटु अनुभव से पूछो, दुर्बलता से पूछो। वे तुम्हें, दुनियाँ के बालकों और जवानों को बताएँगे कि जीवन का अर्थ 'वाह' नहीं, 'आह' है, हँसी नहीं, रोना है, स्वर्ग नहीं, नरक है।

लड़कपन ने पन्द्रह वर्षों तक घोर तपस्या कर क्या पाया? जवानी के रूप में सर्वनाश, पतन। जवानी ने बीस वर्षों तक कभी धन के पीछे, कभी रूप के पीछे, कभी यश के पीछे और कभी मान के पीछे दौड़ लगाकर क्या हासिल किया? वार्धक्य के लिफाफे में सर्वनाश, पतन। और—अब यह बुढापा घंटों नाक दबाकर, ईश्वर-भजन कर सिद्धियों की साधना में दत्त-चित्त होकर, खनन-खनन का खजाना इकट्ठा कर कौन सी बड़ी विभूति अपनी मुट्ठी मे कर लोगे?—वही सर्वनाश, वही पतन। मुझसे पूछो, मै कहता हूँ—और छाती ठोंककर

कहता हूँ—जीवन का अर्थ है, प.. त...न !—पाडेय बेचन शर्मा 'उग्र'

(ख) होली है—तुम्हारा सिर है। यहाँ दरिद्र की आग के मारे होला अथवा होरा (भुना हुआ हरा चना) हो रहे हैं और इन्हे होली है !

अरे कैसे मनहूस है ? बरस-बरस का तिवहार है उसमें भी वही रोनी सूरत है ! एक बार तो प्रसन्न होकर बोलो—होली है !

अरे भाई हम पुराने समय के बंगाली भी तो नही है कि तुम ऐसे मित्रो की जबरदस्ती से होरी (हरि) बोलकर शात हो जाते। हम तो बीसवीं शताब्दी के अभागे हिंदुस्तानी हैं। कृषि, वाणिज्य, शिल्प-सेवादि किसी मे भी कुछ तंत नही है। खेतों की उपज, अतिवृष्टि, जगलों का कट जाना, रेलों और नहरों की वृद्धि इत्यादि ने मिट्टी कर दी है जो कुछ उपजता भी है वह कट के खलिहान मे नही आने पाता। ऊपर ही ऊपर लद जाता है। रोजगार त्यौहार मे कही कुछ देख नही पड़ता। जिन बाजारो में अभी दस वर्ष भी नहीं हुए, कंचन बरसता था वहाँ दूकानें अब भार्य-भार्य होती हैं। देशी कारीगरी को देशवाले ही नहीं पूछते ! विशेषतः जो छाती ठोंक-ठोंक के तखते रॅग-रॅगकर देशहित के गीत गाते फिरते हैं वह और भी देशी वस्तु का व्यवहार करना अपनी शान से बईद समझते हैं। नौकरी बी० ए०, एम० ए० पास करनेवालों को भी उचित रूप में मुश्किल से मिलती है। ऐसी दशा में हमे होली सूझनी है कि दिवाली।

—प्रतापनारायण मिश्र।

प्रभाव की दृष्टि से यह ढग उक्त दोनों से अधिक सफल है, परंतु इसके लिए विचार और भाषा पर पूरा-पूरा अधिकार चाहिए। ऐसा न होने पर लेखक के लिए सारे लेख मे इस ढग का निर्वाह करना कठिन हो जायगा और निर्वाह न कर सकने पर लेख मे रोचकता और सुदरता न रह जायगी। अतः विद्यार्थियों को प्रारंभिक विचार लिखने के लिए सबसे पहले पहला ढंग अपनाना चाहिए। सीधे विषय पर आकर

निबंध लिखने में जब वे कुशल हो जायँ तब दूसरा भूमिकावाला ढंग वे अपना सकते हैं। तीसरा ढंग कुशल विद्यार्थियों को चुने हुए विषयों के लिए ही सुरक्षित रखना होगा। सभी विषयों पर और सभी अवसरों पर अंतिम ढंग अपनाने से लाभ की जगह हानि होने की संभावना है।

ढंग कोई भी अपनाएँ, परतु यह ध्यान बराबर बना रहे कि लेख का यह अंश हमे अत्यंत आकर्षक बनाना है, पाठक आपका निबंध पढ़ने को उत्सुक नही है; वह यों ही सरसरी निगाह आपके लेख पर डालकर सफा पलटने को तैयार बैठा है। इसलिए आपको निबंध का आरंभ ऐसे रोचक ढंग से करना है कि उसके मन मे लेख पढ़ने की उत्सुकता पैदा हो जाय; वह आपका लेख पढ़ने ही लगे। लेख का ऐसा आकर्षक आरंभ लिखने के लिए बड़े अभ्यास की आवश्यकता है। इसका प्रथम वाक्य ही बहुत महत्व का होना चाहिए। अच्छा हो यदि विद्यार्थी निबंध का प्रारंभिक परिच्छेद सावधानी से अलग लिख लें। परीक्षा-भवन मे भी लेख को सुंदर बनाने के लिए यह अंश अलग लिख लेना चाहिए। कारण, ऐसा करने से चित्त एकाग्र हो जाता है, मन में उठनेवाले तरह-तरह के विचार धीरे-धीरे विलीन हो जाते हैं और मन निबंध के विषय में ही रम जाता है।

(२) माध्यमिक विचार—में विषय पर सभी दृष्टियों से प्रकाश डालना चाहिए। क्रम का सबसे अधिक ध्यान यहीं रखने की आवश्यकता है। लेख का यह भाग ठोस सामग्री से युक्त होना चाहिए। लेखक की जानकारी और योग्यता का पता निबंध के इसी भाग को देखकर लगाया जाता है। इसलिए गंभीरता पूर्वक विचार करके लेख का यह अंश लिखना चाहिए। लेख का बड़ा या छोटा होना भी इसी भाग पर निर्भर है।

लेख का मध्यम भाग लिखने का ढंग यह है कि निबंध के विषय पर थोड़ी देर सोचने से जितने विचार मन में आएँ उन्हें ज्यों-का-त्यों लिख लिया जाय। ये विचार कभी तो लेखक संकेत-रूप में लिखते हैं और कभी

विस्तार के साथ। यदि विद्यार्थी के पास समय हो तो उसे अपने विचार सविस्तार ही लिख लेना चाहिए। इससे दो लाभ होते हैं—एक,इस प्रकार लिखने, भिन्न-भिन्न विचारों को क्रमानुसार सजा देने से, लेख करीब करीब तैयार हो जाता है। दूसरे, विस्तारपूर्वक सोचते समय नई-नई बातें भी ध्यान में आती रहती हैं और इससे लेख सभी दृष्टियों से पूर्ण हो जाता है। सकेतरूप से अपने विचार केवल उसी समय लिखना चाहिए जब समय कम दिया गया हो। विद्यार्थियों को कक्षा के निबंधों का मध्य-भाग विस्तारसहित और परीक्षा भवन के लेख का मध्य-भाग संकेत-प्रणाली से लिखना चाहिए। 'धन से सुख ही है' शीर्षक लेख का मध्य भाग सकेत-प्रणाली से इस प्रकार होगा—

(क) धनी क्या सच्चा सुख पाते हैं? क्या वे सत्य ही सुखी हैं?

(ख) यदि नहीं तो क्या धनी अपना धन छोड़ने को प्रस्तुत हैं? नहीं, क्योंकि धन की चमक-दमक ने उनकी आँखें अभी चौंधिया रखी हैं।

(ग) जीवन की सच्ची सफलता क्या है? धन से इसमें सहायता भी मिल सकती है, यही धन का महत्व है।

यहाँ लेखक ने अपने लिए तीन सकेत लिख रखे हैं। इन्हीं को बढ़ाकर उसे लेख का मध्य भाग पूरा करना है। विद्यार्थियों को इन छोटे सकेतों को बढ़ाने में, सभव है, कठिनाई जान पड़े; परतु जब लेखक विषय पर एकाग्रचित्त से विचार करता हुआ संकेत लिखता है और ये बरबार उसके मस्तिष्क में चक्कर लगाते हैं तब इनके आगे के विचार अपने आप उसकी कलम से निकलते चले आते हैं। ध्यान रखने की बात यह है कि जो जितनी ही एकाग्रता से विषय पर विचार करेगा, उसे उतने ही सुदर सकेत मिलेंगे और उन्हें वह उतनी ही शीघ्रता से बढ़ा सकेगा। ऊपर के तीनों सकेतों को बढ़ाकर मध्य-भाग के तीन परिच्छेद यहाँ लिखे जाते हैं—

( क ) बड़े-बड़े धनी हैं, पूँजीपति हैं, जमींदार हैं, महाजन समझे जाते हैं, मालिक कहलाते हैं, परतु उन्हे क्या वह सुख प्राप्त है जो सच्चा समझा जाता है ? बहुमूल्य वस्त्र वे अवश्य पहनते हैं, ऊँची-ऊँची अटारियों में वे अवश्य रहते हैं, छप्पन प्रकार के भोजन सोने-चाँदी के थालों मे वे अवश्य करते हैं, नित्य नई मोटरो पर भी वे अवश्य चढ़ते है, और इसीलिए हम समझते है, धनी हैं, बड़े आदमी हैं, सभी तरह के सुख उन्हे सुलभ हैं। परतु उनके गार्हस्थ्य जीवन में नित्यप्रति बढती हुई अशांति से, इस धन के कारण ही बढी हुई उनकी सामाजिक मर्यादा के निर्वाह की कठिनता से, धन की रक्षा के लिए प्रयत्नशील उनकी चिंता से और अधिकाधिक की प्राप्ति के लिए लालायित उनकी लोभ-लालसा से पूछिए तो पता लगेगा कि वस्तुतः धन से उन्हे शाति नहीं, अशाति है, सतोष नही, असंतोष है, सुख नहीं, दुखः है।

( ख ) प्रश्न हो सकता है कि ऐसी स्थिति में धनी अपना धन छोड़ने को प्रस्तुत हैं ? जिस धन से उन्हे शाति नहीं मिलती, सुख-संतोष नहीं मिलता, क्या वे उससे विलग होने को तैयार हैं ? कदाचित नहीं। कारण यह है कि धन की ऊपरी चमक-दमक ने उनकी आँखों को चौंधिया दिया है, उसके द्वारा प्राप्त आमोद-प्रमोद के साधनों ने उन्हे लुभा रखा है, उनकी बुद्धि पर परदा पड़ रहा है। वे धन की मदिरा के इतने प्रेमी हैं; उसके नशे में इतने मतवाले हैं कि उन्हे सुख-दुख का ज्ञान ही नही है। मदिरा पान करके वे 'मदिरा' 'मदिरा' ही चिल्ला सकते हैं। जीवन की सच्ची सफलता का अर्थ उन्हें नहीं मालूम है, गंभीर होकर इस प्रश्न पर विचार करने की बुद्धि भी उनमें नहीं है, उसके लिए गभीर होने का उन्हें अवकाश ही नहीं मिलता।

( ग ) जीवन की सच्ची सफलता क्या है ? क्या बढ़िया-बढ़िया वस्त्र पहनकर अपनी झूठी सौंदर्य-लिप्सा को उत्तेजित करना ही सफलता कहलाती है ? साधारण निर्धन जन-समाज को ईर्ष्यालु बनानेवाली

गगनचुंबी अट्टालिकाओं का नाम सफलता है ? रसना के रसास्वाद के लिए छहों रसों से युक्त छप्पन प्रकार के भोजनों की तैयारी को ही सफलता समझना चाहिए ? अथवा केवल असीम धनराशि प्राप्त कर लेना ही जीवन की सफलता है ? इस प्रश्न का स्वीकारात्मक उत्तर तो कदाचित वे भी न देंगे जो दिन-रात बहुमूल्य वस्त्राभूषणों से सजे, शिल्पकला के नमूने-जैसे प्रासादों में सुख भोगते हैं।

जीवन की सच्ची सफलता अपने कर्तव्य का पालन करके सच्चा संतोष प्राप्त करना है। संसार में मनुष्य का जन्म इसी उद्देश्य को लेकर हुआ समझना चाहिए। आयु और बुद्धि के विकास के साथ-साथ यदि हमने कर्तव्य-पालन के मार्ग में आगे बढ़ने का क्रम बनाए न रखा तो मनुष्यता की दृष्टि से हम अपराधी समझे जायँगे। धन से इस कार्य में कभी-कभी बड़ी सहायता मिलती है। भूखे को कोरी सहानुभूति नहीं, रोटी चाहिए। अपाहिजों और रोगियों को कोरी सांत्वना नहीं, दवा चाहिए। रोटी, दवा और इसी तरह की सैकड़ों चीजें धन से ही सरलता से प्राप्त हो जाती हैं। धन का यही महत्व है।

( ३ ) लेख का अंतिम भाग अत्यंत प्रभावोत्पादक होना चाहिए। इस भाग को 'समाप्ति' या 'अंत' कहते हैं। इसे पढ़ कर लेखक के आचार-विचार, योग्यता ज्ञान, आदर्श-लक्ष्य इत्यादि के संबंध में पाठक अपनी धारणा बनाता है। आपका लेख पढ़कर क्षण भर यदि वह आप की रचना अथवा आपके संबंध में सोचता न रहा, दूसरा सफा पलटकर आगे बढ़ गया तो समझिए सारा प्रयत्न व्यर्थ हो गया, निबंध सफल नहीं रहा। पाठक के विचारों पर इस अंतिम परिच्छेद का सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है। इसलिए लेख का यह अंश लिखते समय वैसी सावधानी रखनी चाहिए जैसी आरंभ में रखी थी। अच्छा हो, सोच-विचार कर यह अंग भी अलग लिख लिया जाय।

अंत लिखने के प्रायः दो ढंग प्रचलित हैं। एक, उपदेशात्मक और दूसरा, प्रभावात्मक। उपदेशात्मक अंत में लेखक लेख का

साराश सा देता हुआ उपदेश या शिक्षा देता है। उदाहरण—

( क ) सच्ची वीरता—जब हम कभी वीरों का हाल सुनते हैं, तब हमारे अंदर भी वीरता की लहरें उठती हैं और वीरता का रंग चढ़ जाता है। परन्तु वह चिरस्थायी नहीं होता। इसका कारण सिर्फ यही है कि हमारे भीतर वीरता का मसाला तो होता नहीं। हम सिर्फ खाली महल उसके दिखाने के लिए बनाना चाहते हैं। टीन के बर्तन का स्वभाव छोड़कर अपने जीवन के केंद्र में निवास करो और सच्चाई की चट्टान पर दृढ़ता से खड़े हो जाओ। अपनी जिन्दगी किसी और के हवाले करो ताकि जिन्दगी के बचाने की कोशिशों में कुछ भी वक्त जाया न हो। इसलिए बाहर की सतह को छोड़कर जीवन के अंदर की तहों में घुस जाओ; तब नए रंग खुलेंगे। द्वेष और भेद-दृष्टि छोड़ो, रोना छूट जायगा। प्रेम और आनन्द से काम लो; शांति की वर्षा होने लगेगी और दुखड़े दूर हो जायेंगे। जीवन के तत्व का अनुभव करके चुप हो जाओ; धीर और गंभीर हो जाओगे। वीरों की, फकीरों की और पीरों की यह कूक है—हटो पीछे, अपने अंदर जाओ, अपने आपको देखो, दुनिया और की और हो जायगी। अपनी आत्मिक उन्नति करो। —सरदार पूर्णसिंह

( ख ) धोखा—हमें आशा है कि इतना लिखने से आप धोखे का तत्व—यदि निरे खेत के धोखे न हों, मनुष्य हों तो—समझ गए होंगे। पर अपनी ओर से इतना और समझा देना भी हम उचित समझते हैं कि धोखा खाके धोकेबाज का पहिचानना साधारण समझ वालों का काम है। इससे जो लोग अपनी भाषा, भोजन, भेष-भाव और भ्रातृत्व को छोड़ के आपसे भी छुड़वाया चाहते हों उनको समझे रहिए कि स्वयं धोखा खाए हुए हैं और दूसरो को धोखा दिया चाहते हैं। इससे ऐसों से बचना परम कर्तव्य है. और जो पुरुष एवं पदार्थ अपने न हों वे देखने में चाहे जैसे सुशील और सुंदर हों, पर विश्वास के पात्र नहीं हैं, उनसे धोखा हो जाना असंभव नहीं है। बस; इतना

स्मरण रखिएगा तो धोखे से उत्पन्न होने वाली विपत्तियों से बचे रहिएगा, नहीं तो हमें क्या अपनी कुमति का फल अपने ही आँसुओं से धोओ और खाओगे, क्योंकि जो हिन्दू होकर ब्रह्मवाक्य नहीं मानता वह धोखा खाता है। —प्रतापनारायण मिश्र

(ग) कर्तव्य और सत्यता—इसलिए हम लोगों का यह परम कर्तव्य है कि सत्य बोलने को सबसे श्रेष्ठ मानें और कभी झूट न बोलें, चाहे उससे कितनी ही अधिक हानि क्यों न होती हो। सत्य बोलने ही से समाज में हमारा सम्मान हो सकेगा। और हम आनन्दपूर्वक समय बिता सकेंगे; क्योंकि सच्चे को सब कोई चाहते और झूठे से सभी घृणा करते हैं। यदि हम सदा सत्य बोलना अपना धर्म मानेंगे तो हमें अपने कर्तव्य के पालन करने में कुछ भी कष्ट न होगा और बिना किसी परिश्रम और कष्ट के हम अपने मनमें सदा संतुष्ट और सुखी बने रहेंगे। —श्यामसुन्दरदास

इस प्रकार के उपदेशात्मक अंत होते तो ठीक हैं; पर उपदेश देने का अधिकार बड़ों को होता है, बालकों को नहीं। उपदेश देने का ढंग भी बड़ों को ही मालूम रहता है। विद्यार्थी यदि लेख का अंत उपदेशात्मक बनाएंगे, तो उतनी गहराई नहीं होगी जितनी गुरुजनों के आदेशों में होनी चाहिए। इसलिए जहाँ तक हो सके लेखों का अंत वे उपदेशात्मक न बनाकर प्रभावात्मक बनाएँ। उदाहरण—

(क) बातचीत—इसी सैर का नाम ध्यान, मनोयोग या चित्त को एकाग्र करना है जिसका साधन एक दो दिन का काम नहीं। बरसों के अभ्यास के उपरात यदि हम थोड़ी सी अपनी मनोवृत्ति स्थिर कर अवाक् हो अपने मनके साथ बातचीत कर सकें तो मानों अहो भाग्य। एक वाक्-शक्ति मात्र के दमन से न जाने कितने प्रकार का दमन हो गया। हमारी जिह्वा कतरनी के समान सदा स्वच्छंद चला करती है, उसे यदि हमने काबू में कर लिया तो क्रोधादिक बड़े-बड़े अजेय शत्रुओ को बिना प्रयास जीत अपने वश में कर डाला। इसलिए अवाक् रह

अपने आप बातचीत करने का यह साधन बहुत साधनों का मूल है, शाति का परम पूज्य मंदिर है, परमार्थ का एक मात्र सोपान है।

—बालकृष्ण भट्ट

(ख) अध्ययन—विद्याभ्यासी पुरुष पढ़ता है और पुस्तकों से प्रेम रखता है। संसार में उसकी स्थिति चाहे कितनी बुरी हो उसे साथियों का अभाव नही खल सकता। उसकी कोठरी में सदा ऐसे लोगों का वास रहेगा जो अमर हैं। वे उससे सहानुभूति प्रकट करने और उसे समझाने के लिए सदा प्रस्तुत रहेंगे! कवि, दार्शनिक जिन्होंने अपने घोर प्रयत्नों द्वारा प्रकृति के रहस्यों का उद्घाटन करके शाति और सुख का तत्व निचोड़ा है, बड़े-बड़े महात्मा, जिन्होंने आत्मा के गूढ रहस्यों की थाह लगाई है सदा उसकी बातें सुनने तथा उसकी शंकाओं का समाधान करने के लिए उद्यत रहेंगे। यदि पाठक चाहे तो उनमें से प्रत्येक व्यक्ति उसको तुच्छ चिंताओं से मुक्त करके ऐसी भावनामयी सृष्टि में ले जाने के लिए तैयार रहेगा जहाँ सांसारिक प्रपंचों का लेश न हों। चाहे कितनी ही घोर, निस्तब्धता हो, उसके कानों में प्रकृति का मधुर और रहस्यपूर्ण सगीत पड़ेगा, कोमल, और गभीर वचन सुनाई देगा।

—रामचद्र शुक्ल।

निबंध के अंतिमांश में लेखक का संदेश रहता है। अपने विचार बताने के लिए ही कोई चीज लिखी जाती है। अतः लेख का अंत या समाप्ति तभी सफल समझी जायगी जब स्पष्ट शब्दों में उसे लिख कर लेखक अपने पाठक को प्रभावित कर सके। इसी कारण लेख का यह भाग बड़ी सावधानी से लिखने की आवश्यकता है। इसका अतिमांश खूब सोच-विचार कर लिखना चाहिए। कभी-कभी लेख का मध्य भाग लिखते समय ही मन में वे विचार आने लगते हैं जिन्हे अत में देना ठीक होगा। इन विचारों को उसी समय अलग लिख लेना चाहिए। ऐसा करने से लेख का अत मध्य भाग से सबधित भी रहेगा और प्रभावात्मक भी।

## भाषा

प्रत्येक जीवित भाषा के दो रूप एक समय मे प्रचलित रहते हैं—एक, जनता के बोलने की भाषा और दूसरी, विद्वानों के लिखने की भाषा। पहला रूप बात-चीत, काम-काज और पत्र-व्यवहार के लिए रहता है और दूसरा सुंदर पुस्तकें लिखने और साहित्य-रचना करने के लिए। जनसाधारण की बोल-चाल की भाषा में काम चलाने के लिए कई भाषाओं के शब्द मिले रहते हैं। इसके विपरीत, लिखने की भाषा व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध, सजाई और सँवारी हुई रहती है। हिंदी भाषा के भी इस समय मुख्य दो रूप प्रचलित हैं। एक, जनता में प्रचलित सरल रूप जिसमें बहुत से अरबी, फारसी और अँगरेजी के शब्द घुलमिल कर उसी का अग बन गए हैं और दूसरा, सस्कृत के तत्सम शब्दों से युक्त शुद्ध साहित्यिक रूप जिसका सहारा-विद्वानों को गंभीर विषयों के लिए लेना पड़ता है। दोनों भाषाओं के उदाहरण—

( क ) सरल भाषा—यह बहुत आवश्यक है कि आत्मा जिस बात के करने की आज्ञा दे उसे, बिना अपना स्वार्थ सोचे झटपट कर डालना चाहिए। ऐसा करते करते जब धर्म करने की बान पड़ जायगी तब फिर किसी बात का भय न रहेगा। देखो, इस ससार मे जितने बड़े-बड़े लोग हो गए है, जिन्होंने ससार का उपकार किया है और उसके लिए आदर और सत्कार पाया है, उन सभी ने अपने कर्तव्य को सबसे श्रेष्ठ माना है, क्योंकि जितने कर्म उन्होंने किए उन सभी में अपने कर्तव्य पर ध्यान देकर न्याय का बर्ताव किया। जिन जातियों में यह गुण पाया जाता है वे ही ससार में उन्नति करती हैं और संसार में उनका नाम आदर से लिया जाता है।

—श्याम सुदर दास ( 'कर्तव्य और सत्यता' से)

( ख ) साहित्यिक भाषा—गीत-काव्य मे जिस प्रकार छोटे-छोटे रमणीय प्रसंगों को लेकर रचना की जाती है, प्रत्येक पद जिस प्रकार स्वतः पूर्ण तथा निरपेक्ष होता है, कवि के आतरिक हृदयोद्गार

होने के कारण उसमें जैसे कवि की अंतरात्मा झलकती देख पड़ती है, विवरणात्मक कथा-प्रसंगों का बहिष्कार कर तथा क्रोध आदि कठोर और कर्कश भावों का सन्निवेश न कर उसमें जैसे सरसता और मधुरता के साथ कोमलता रहती है, उसी प्रकार सूरसागर के गेय पदों में उपयु क्त सभी बातें पाई जाती हैं। यद्यपि कृष्ण की पूरी जीवन-गाथा भी सूरसागर में मिलती है, पर उसमे कथा कहने की प्रवृत्ति बिल्कुल नहीं देख पड़ती; केवल प्रेम, विरह आदि विभिन्न भावों की वेगपूर्ण व्यजना उसमें बड़ी ही सुदर बन पड़ी है।—श्यामसुदरदास ( 'सूरदास' से )

दोनों परिच्छेद एक ही लेखक के लिखे हुए हैं। फिर भी दोनों रूपो में बड़ा अतर है। पहले अवतरण की भाषा बिल्कुल सीधी-सादी और आसानी से समझ में आनेवाली है। पर दूसरे परिच्छेद की भाषा उतनी सरलता से विद्यार्थियों की समझ मे नही आ सकती। विद्यार्थियों की इच्छा वास्तव में दूसरी तरह की भाषा लिखने की होती है। ठीक है, और उसके हम उन्हे निरुत्साहित नहीं करते, परन्तु उन्हें ध्यान रखना चाहिए कि छोटी-छोटी सीढ़ियाँ चढ़कर ऊँचे चला जाता है। इसलिए आरम्भ मे वे सरल भाषा का प्रयोग करें। इसमे जब वे सफल हो जायँ तब धीरे-धीरे अपनी भाषा को साहित्यिक बनाने का प्रयत्न करें।

यहाँ एक निवेदन कर दूँ। केवल उर्दू शब्दों की छूत से बचने का नाम ही साहित्यिक भाषा नही है। अरबी फारसी के जो शब्द या मुहावरे बहुत दिनों से प्रचलित हैं वे अब हमारी भाषा की ही सपत्ति हैं, उन पर हमारे ही व्याकरण का अधिकार हैं। इसलिए इन शब्दों को बराबर अपनाते रहना चाहिए। आज से तीन-चार सौ वर्ष पहले होने वाले हमारे कवि भी जब इन भाषाओं के प्रचलित शब्दों को अपनाने का मार्ग दिखा गए हैं, तब हमें ऐसा करने में आगा–पीछा नही सोचना है। हाँ, इतना ध्यान रखना चाहिए कि इन शब्दो का प्रयोग अपने व्याकरण के नियमों के अनुसार करना होगा। 'कागज' का बहुवचन

'कागजात' न होकर 'कागजों' ही लिखना हमारा कर्तव्य है। ऐसा करने से ये शब्द हमारी भाषा की संपत्ति हो जायँगे। अँगरेजी जैसी विश्व-विस्तृत भाषा के विद्वान दूसरी भाषाओं के शब्दों को अपनाने के लिए सदा तैयार रहते हैं। उनकी यह उपयोगी प्रवृत्ति हमें भी ग्रहण कर लेनी चाहिए।

सरल भाषा धीरे-धीरे साहित्यिक बनाने का उपाय यह है कि पाठ्य पुस्तक के जो शब्द या वाक्यांश आपको रुचे उनका अर्थ और प्रयोग भली भाँति समझ लीजिए और तब धीरे-धीरे उनका प्रयोग कीजिए। अपने अध्यापकों को ये प्रयोग दिखा दीजिए और अगर आपने उसे ठीक ठीक समझ लिया हो तो दो-चार बार फिर उसका अन्य अवसरों पर प्रयोग कीजिए। इस तरह धीरे-धीरे उस शब्द या वाक्यांश पर आपका पूरा अधिकार हो जायगा। अपनी सूची के प्रत्येक शब्द पर इसी तरह अपना अधिकार बढ़ाते रहिए। नित्यप्रति एक बार सरसरी निगाह से अपनी सूची पलट जाया कीजिए। धीरे धीरे आपकी भाषा साहित्यिक होने लगेगी।

## शैली

प्रत्येक मनुष्य के पास कुछ विचार होते हैं और वह उनको प्रकट करने—लिखने या कहने—का प्रयत्न भी करता है। ऐसा करते समय उसकी यह हार्दिक इच्छा रहती है और इसके लिए वह शक्ति भर प्रयत्नशील भी रहता है कि उसके विचार और भाव इस तरह प्रकट किए जायँ कि पढ़ने या सुननेवालों पर अधिक से अधिक प्रभाव पड़े। भावों को प्रकट करने का जो ढंग वह अपनाता है वह उसकी 'शैली' कहलाती है। लिखने के ढंग पर विषय और मानसिक स्थिति का मुख्य प्रभाव पड़ता है। लेखक जब मन के अनुकूल विषय पा जाता है और स्वस्थ-प्रसन्न भी होता है तब मन लगाकर वह अपने विचार प्रकट करता है। ऐसा न होने पर यों ही कुछ लिखकर टाल देता है। इसी तरह कुछ लेखक तो सीधे-सादे ढंग से ही अपने विचार प्रकट करते हैं

और कुछ सजाए-सँवारे ढंग से। इसलिए भाषा-चमत्कार की दृष्टि से शैली के दो भेद होते हैं—( १ ) सरल सुबोध शैली—जिसमे सोधी-सादी भाषा में सरल ढंग से अपने विचार प्रकट किए जायँ। उदाहरण—

पीली फट गई। सूर्य उगने लगा। चारों ओर उजियाला छा-गया। अँधेरे में चैन उड़ानेवाले उल्लू छिप गए। चमगीदड़ उल्टे पाँव जा लटके। जिधर देखिये उधर निराली ही शोभा दिखाई देती है। खेतों पर बहार ही बहार है। हरियाली से हृदय को बड़ा हर्ष होता है। पृथ्वी ने मानो धानी चादर ओढ़ ली है। नन्हीं नन्ही पत्तियों पर ओस की बूँदे मोतियों-सी चमक रही हैं। क्यारियों में कहीं-कहीं तितलियाँ फुदक रही हैं।

बाग में पेड़ों पर पखेरू चहक रहे हैं। कोमल पत्तियाँ हवा में हिल-हिल कर लहलहा रही हैं। फूल फूले नहीं समाते। हँस-हँसकर लोगों को हँसा रहे हैं! वृक्षों की कुंजों पर बेलों के रंग बिरंगे बूटे बड़े सुहावने लगते हैं। फलों की शोभा दूनी हो गई है। जी चाहता है कि टकटकी लगाकर इन्हीं को देखते रहें।—'सूर्योदय' नामक लेख से।

( २ ) अलंकृत शैली—जिसमें लेखक अलकारो से अपने लिखने के ढंग को सजा-सँवार कर अपने विचार प्रकट करे। उदाहरण—प्रकृति के आँगन में सूर्य-चद्र तारे-नक्षत्र, बिजली-बादल, नदियाँ-सागर, झरने-सोते, वन-जंगल, आदि की बाल-क्रीड़ा होती रहती है। जिधर देखिए उधर आँखें नाचने लगती हैं। यदि रात में चाँदनी छिटकती है तो दिन में सूर्य की किरणें किलोल करती हैं। एक-एक दृश्य अनुपम ही है। सौंदर्य ही को लीजिए। कितना सुहावन, कितना मनोरम, कितना रमणीय कि देखते-देखते लोट-पोट हो जायँ! मनुष्यों की तो बात ही क्या, उसे देख कलियाँ तक खिल जाती हैं। उस प्रकाश-पुंज में अद्भुत आह्लादिनी शक्ति है।

प्राची दिशा के प्रांगण में जिस समय वह फुटबाल उछालती दिखाई देती है, आँखें उस उछालनेवाले खिलाड़ी के दर्शनों को आतुर हो

उठती हैं, उसके किरण-जाल में प्रफुल्लता की तरंगें अठखेलियाँ-सी करती चली आतीं, और अंधकार की छाती में तीर की तरह चुभ जाती हैं। हमारी नाड़ियों मे नए रक्त का संचार होने लगता है; और कार्य का समय आरम्भ हो जाता है।—'सूर्योदय' नामक लेख से।

दोनों परिच्छेदों मे एक ही लेखक ने सूर्योदय का वर्णन किया है, पर लिखने के ढग में बड़ा अतर है। पहले प्रकार की लेखन-शैली मे गाँव की-सी सादगी है तो दूसरे परिच्छेद में नगर का-सा बनाव-शृंगार। विद्यार्थियो को इन दोनों में से कोई भी ढग अपनाने की स्वतन्त्रता है, परन्तु अच्छा हो कि साहित्यिक भाषा की तरह आरम्भ में वे सुबोध शैली में अपने विचार प्रकट करें। पश्चात्, एक-एक परिच्छेद अलकृत शैली में भी लिख लिया करें। दूसरे रूप को अपनाते समय विशेष सावधान भी रहना चाहिए। अतः इसे अपनाने के पहले अध्यापक से पूछ लेना अधिक उत्तम होगा कि हम इस योग्य हैं या नही।

## लेख लिखते समय ध्यान रखने की बातें

अँग्रेजी की एक कहावत है कि लिखने पर ही वास्तविक योग्यता का ज्ञान होता हैं। किसी बात को सुन या पढकर विद्यार्थी प्रायः कह उठते हैं कि हम सब कुछ समझ गए, परतु जब वही बात लिखने को कही जाती है तब मुँह ताकने लगते हैं। ऐसी अवस्था उन्ही विद्यार्थियों की होती है जो लिखने से जी चुराते हैं। वस्तुतः लिखने का अभ्यासी पूरा-पूरा ज्ञान न होने पर भी प्रत्येक विषय पर दो-चार सफे लिख डालता है। इसलिए लेख लिखने का अभ्यास प्रत्येक विद्यार्थी को रुचि से करना चाहिए। लेख लिखते समय ध्यान रखने की बाते ये हैं–

(१) विषय का ज्ञान—आँख-कान खोलकर काम करने से, भ्रमण से, पुस्तकों के अध्ययन से, दूसरों से बात-चीत करने से, एकात में विचार करने से किसी विषय का ठीक ज्ञान होता है। मन मे विचार बिखरे रहते हैं। इन विचारों को हमें क्रमानुसार लिख लेना चाहिए। यों विषय-सूची बन जायगी इससे गठा हुआ और सुंदर

लेख लिखने में बड़ी सहायता मिलेगी। विषय-सूची का एक विचार 'संकेत' कहलाता है।

( ख ) आरंभ—लेख का यह भाग बड़ी सावधानी से और सोच-विचार कर लिखना चाहिए। यह इतना आकर्षक हो कि पढ़नेवाले का मन लेख में रम जाय। भूमिका छोटी, चुभती हुई, और विषय से मिलती-जुलती होनी चाहिए। भावपूर्ण कविता या कहावत से प्रायः लेख आरम्भ किया जा सकता है।

( ग ) मध्य—लेखक के ज्ञान का पता इसी भाग को देखकर लगता है। इसे लिखते समय सबसे अधिक ध्यान 'क्रम' का रखना चाहिए। आगे की बातें पीछे और पीछे की बातें आगे रख देने से पाठक झुँझला उठता है। इधर-उधर की बातें यदि लिखनी हो तो वे एक-आध वाक्य में, संकेत-रूप में ही, लिखी जायँ।

( घ ) समाप्ति—भूमिका की तरह लेख का अंत भी बहुत सुन्दर और प्रभावोत्पादक होना चाहिए। इसे भी अलग लिख लेना अच्छा होगा। गंभीरता इस भाग की जान है। कभी-कभी लेख के अंत में अपने विचार स्पष्ट कर देना चाहिए। अंत लिखने से पहले, लेख पर एक बार सरसरी निगाह डाल लेना भी उपयोगी होगा।

( ङ ) परिच्छेद—इसे 'पैरा' या 'अनुच्छेद' भी कहते हैं। लेख को छोटे-छोटे कई परिच्छेदों में लिखना चाहिए। लंबे-लंबे परिच्छेदों में लिखा हुआ लेख देखकर जी ऊब जाता है। परिच्छेद लिखते समय दो बातों का पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिए—पहली बात यह है कि एक परिच्छेद में केवल एक ही विचार या संकेत के संबंध में लिखना चाहिए। कभी-कभी एक विचार या संकेत को लेकर दो-तीन परिच्छेद भी लिख सकते हैं, पर एक ही परिच्छेद में एक से अधिक विचार कभी नहीं लिखना चाहिए। उदाहरण के लिए 'सिनेमा से लाभ और हानि' पर निबंध लिखते समय आपको कम-से-कम दो परिच्छेद तो लिखने ही हैं। अब यदि आपको लाभ में पाँच बातें लिखनी हैं तब

सबको एक ही में न लिखकर दो या तीन छोटे-छोटे परिच्छेदों में लिख सकते हैं।

ध्यान रखने की दूसरी बात यह है कि परिच्छेद में सभी वाक्यों का आगे-पीछे के वाक्यों से घनिष्ट सबंध रहना चाहिए। वाक्य एक दूसरे से इस प्रकार गठे रहे कि बीच से एक वाक्य यदि हटा दें तो पढ़ते ही मालूम हो जाय कि कुछ छूट गया है। आरंभ में विद्यार्थी परिच्छेद के वाक्यों को इसलिए, बात यह है, कारण यह है, अतः, फलतः, फल यह हुआ, आदि से प्रारंभ करके मिला सकते हैं। धीरे-धीरे इनका प्रयोग कम करते जाना चाहिए।

(च) शैली—लिखने का ढग रोचक होना चाहिए। एक ही शब्द का बार-बार प्रयोग न किया जाय। प्रत्येक वाक्य की क्रिया बदल देने से वाक्य में सुदरता आ जाती है। कभी-कभी प्रश्नवाचक वाक्य बड़े प्रभावशाली होते हैं। लेख में हास्य और व्यंग्य का पुट भी रहना चाहिए। इससे लेख मनोरजक हो जायगा। प्रचलित मुहावरों और कहावतो से इस काम में बड़ी सहायता मिलेगी। वाक्य छोटे-छोटे लिखे जायँ। परीक्षक को अपनी योग्यता से प्रभावित करने के लिए बडे-बडे वाक्य लिखना ठीक नहीं। बड़े वाक्यों में प्रायः अशुद्धियाँ हो जाती हैं।

(छ) भाषा सरल और सब जगह एक-सी होनी चाहिए। बड़े-बड़े और कठिन शब्द लिखने से भाषा में बनावटीपन आ जाता है। उन्हीं शब्दों का प्रयोग करना ठीक है जिनका ठीक-ठीक अर्थ मालूम हो। अँगरेजी या अरबी-फारसी के शब्द बीच बीच में लिख देना ठीक नहीं।

(ज) प्रसंग से बाहर की बातें लेकर लेख बढाना उचित नहीं है। 'शरीर रक्षा के साधन' शीर्षक विषय पर लेख लिखते समय किसी 'पहलवान की कुश्ती' का और 'स्कूल के खेल' पर लिखते समय 'किसी मैच' का वर्णन करना अनुचित है।

( ख ) लेख बढ़ाने की इच्छा से कभी-कभी एक ही बात दोहराकर लिख दी जाती है। यह प्रणाली भी ठीक नहीं है। एक ही बात बार-बार पढ़कर तबियत झुँझला जाती है। इसलिए लेख संक्षेप मे ही विषय के अनुसार लिखना चाहिए।

( ञ ) लेख मे कविता की दो-एक पंक्तियाँ दी जा सकती हैं; परन्तु ये बहुत चुभती हुई और सुन्दर होनी चाहिएँ।

( ट ) लेख समाप्त हो जाने पर दोहरा अवश्य लेना चाहिए। जो अशुद्धियाँ आप ठीक कर सकते हैं उन्हें पाकर अध्यापक झुँझला जाता है। आप उससे नम्बर चाहते हैं तब उसे नाराज क्यों करें?

वर्णन के अनुसार लेख के चार प्रकार

( १ ) वर्णनात्मक—वस्तु ( नाम, गाय ), कार्य ( दशहरा, यात्रा, मच ), स्थान ( दृश्य, शहर ) का आँखों देखा वर्णन।

( २ ) कथात्मक या विवरणात्मक—इतिहास, जीवनचरित्र, कहानी आदि का रोचक वर्णन।

( ३ ) भावात्मक या विचारात्मक - ईर्ष्या, क्रोध, क्षमा, दया, स्वावलम्बन, सहानुभूति, सत्य, सतोष, परोपकार आदि का वर्णन।

( ४ ) आलोचनात्मक—किसी ग्रंथ या विषय की आलोचना अथवा किसी पात्र का चरित्र-चित्रण; जैसे तुलसी की कविता, राष्ट्रभाषा हिंदी है।

# नमूने के लेख

## दो-दो बातें

कोई दिन था कि हम भी कुछ थे, कुछ नहीं बहुत कुछ थे। देवता हमारा मुँह जोहते थे, स्वर्ग मे हमारी धूम थी, और धरती हमारे उधारने से ही उधरती थी। हम आसमान में उड़ते, समुद्र को छानते, जगलों को खँगालते और पहाड़ों को हिला देते थे, दुनियाँ मे हमारे नाम-लेवा थे, देशदेश में हमारी धाक थी, दिशाएँ हमारी जोत से जगमगाती थी और आसमान के तारे हमे आँख फाड़-फाड़ कर देखते

थे। हमे अंधकार में उजाला करते थे, बद आँख को खोलते थे सोतों को जगाते थे, और उकठे काठ को भी हरा-भरा बना देते थे। सूरमापन हम पर निछावर होता था, दिलेरी हमारे बॉट में पड़ी थी, बहादुरी हमारा दम भरती थी, और आन-बान हमारा बाना था। हम बेजान में जान डालते थे, सूखी नसों मे लहू भरते थे, बिगड़ों को बनाते थे, गिरो को उठाते थे, बेजड़ों की जड़ जमाते, और भूलों को राह पर लगाते थे। बड़े-बड़े अठकपाली हमारे सामने अपना अठ-कपालीपन भूल जाते थे। हमारा तेवर बदलते ही बेतरह आँख बदलनेवाले राजा-महाराजाओं का रंग बदल जाता था, और दुनियाँ मे हवा बॉधने वालों के चेहरो पर हवाइयाँ उड़ने लगती थीं। आज ये बाते मुँह पर नहीं लाई जा सकती। अब हमारा रंग इतना बिगड़ गया है कि हम पहचाने भी नहीं जा सकते। हमीं लोगो मे ऐसे लोग है जो यह जानते ही नही कि हम क्या और कौन थे और अब क्या हो गए। इसमें न किसी का जादू काम कर रहा है और न किसी का टोना; न दैव हमारे पीछे पड़ा है, न बुरा भाग। जो कुछ हम भोग रहे हैं वह हमारी करतूतों का फल है और आज भी वे हमे रसातल ले जा रही है।

आज दिन हमारे सिरधरो का ही सिर नही फिर गया है, आगे चलनेवाले भी आग लगा रहे हैं, और भगवा पहननेवाले भी भॉग खाए बैठे है। जिनको वीर होने का दावा है, वे भाइयो की मूँछें उखाड़ रहे हैं, दूसरों का घर मूस कर अपना घर भर रहे हैं, औरो के लहू से हाथ रँग कर अपना हाथ गरम कर रहे हैं, सगो का पेट काट कर अपना पेट पाल रहे हैं, और बेबसों के घर को जला कर अपने घर मे घी के दीये बाल रहे हैं। पूँजीवालों का पेट दिन-दिन मोटा हो रहा है, पर किसी सटे पेटवाले को देखते हो उनकी आँख पर पट्टी बँध जाती है। सण्डे-मुसण्डे डण्डे के बल माल भले ही चाब लें पर भूख से जिसकी आँखे नाच रही हैं, उनको वे कानी कौड़ी भी देने की रवादार नहीं। जो हमारा मुँह देखकर जीते हैं, हम उन्हीं को निगल

रहे हैं और जो हमारे भरोसे पाँव फैला कर सोते हैं, हम उन्ही को आँखें बन्द करके लूट रहे हैं। हमी में डूब कर पानी पीने वाले हैं, आँख में उँगली करनेवाले है, खड़े बाल निकालने वाले हैं, आग लगा कर पानी को दौड़नेवाले हैं, रगे सियार हैं, भीगी बिल्ली हैं, और काठ के उल्लू हैं।

आज हमारे घरो में फूट पाँव तोड़ कर बैठी है, बैर अकडा हुआ खड़ा है, अनबन को बन आई है, और रगड़े–झगड़े गुलछर्रे उड़ा रहे हैं। हमसे लम्बी–चौड़ी बातें सुन लो, लम्बी डगें भरने की कहानियाँ कहलवा लो, लेकिन लम्बी तान कर सोना ही हमे पसन्द है। आँख होते हमे सूझता नही, कान होते हम सुनते नही, हाथ होते हम बेहाथ हैं, और पाँव होते बेपाँव। समझ चल बसी, विचारों का दिवाला निकल गया, आन पर ओस पड़ गई, सूझ को पाला मार गया, मगर कान पर जूँ तक नहीं रेंगती। बेटियाँ बिक रही हैं. माँ–बहिनें लुट रही हैं, जोरू पिस रही है मगर हमें दाँत पीसना भी नही आता। दूसरे धूल में फूल उगाते हैं, हमें फूल मे भी धूल ही हाथ आती है। लोग काँटों में फूल चुनते हैं, हम काँटों मे उलझ-उलझ मरते हैं। आबरू उतर गई, पत-पानी चला गया, बड़ाई धूल में मिल गई, मगर हम धूल फाँकने में ही मस्त हैं।

हम आसमान के तारे तोड़ना चाहते हैं, मगर काम आँखों के तारे भी नहीं देते। हम पर लगाकर उड़ना चाहते हैं, मगर उठाने से पाँव भी नही उठते। पालिसी पर पालिश कर के उसके रग को छिपाना चाहते हैं, पर हमारी यह पालिसी हमारे बने हुए रग को भी बदरग कर देती है। हम राग अलापते हैं मेल-जोल का, मगर न जाने कहाँ का खट-राग पेट मे भरा पड़ा है। हम जाति-जाति को मिलाते चलते हैं, मगर ताव अछूतो से आँख मिलाने की भी नही। हम जाति हित की तानें सुनाने के लिए सामने आते हैं, मगर ताने दे-दे कलेजा छलनी बना देते है। हम कुल हिंदू-जाति को एक रंग में रँगना चाहते हैं, मगर

अपनी-अपनी डफली और अपने अपने राग ने रही-सही एकता को भी धता बता दिया है। हम चाहते हैं देश को उठाना, पर आप सुधारने पर भी नहीं सुधरते। हम चाहते हैं जाति की कसर निकालना, मगर हमारे जी की कसर निकाले भी नहीं निकलती। हम जाति को ऊँचा उठाना चाहते हैं, पर हमारी आँख ऊँची होती ही नहीं। हम चाहते हैं जाति को जिलाना, मगर हमे मर-मिटना आता ही नहीं।

हिंदू-जाति अपनी भूलभुलैया मे बेतरह फँसी है, इससे हमारा जी दुखी है। हमारा कलेजा चोट खा रहा है, दिल मे फफोले पड रहे हैं। जितनी जल्द हिंदुओ की आँखें खुले उतना ही अच्छा। हमें उनका जी दुखाना, उन्हें कोसना, उन्हें बनाना, उन्हें खिजाना, उनकी उमगों को मटियामेट करना पसद नहीं, अपने हाथ से पॉव में कुल्हाडी कौन मारेगा, अपनी उँगलियो से अपनी आँखों को कौन कुचलेगा? मगर अपनी बुराइयों, कमजोरियों, भूल-चूकों, ऐबों, लापरवाहियों और नासमझियों पर आँख डालनी पडेगी, बिना इसके निर्वाह नहीं।

—अयोध्यासिह उपाध्याय

## सच्ची वीरता

राणाजी ने विष के प्याले से मीराबाई को डराना चाहा। मगर वाह री सचाई! मीरा ने इस प्याले को अमृत मानकर पी लिया। शेर और हाथी उसके सामने छोडे गए। किंतु वाह रे प्रेम! मस्त हाथी और शेर देवी के चरणों मे मस्तक नवाकर अपनी-अपनी राह चले गए। जिन लोगो ने अपने शरीर की परवाह करना छोड दिया है; उनको ससार मे कोई नहीं डरा सकता।

महाराज रणजीतसिह ने अपनी सेना से कहा—"अटक के पार जाओ।" अटक नदी में भयंकर लहरे उठ रही थीं। सेना में किसी का साहस नदी पार करने का न हुआ। इस पर महराज ने यह कह कर अपना घोडा नदी में डाल दिया—

सभी भूमि गोपाल की, या में अटक कहा ?
जाके मन में अटक है, सोई अटक रहा ॥

बात की बात मे सारी सेना अटक के पार हो गई ।

बुद्ध भगवान ने जगल में एक हिरन के बच्चे को दौड़ते देखा, झट गोद मे उठा लिया । थोड़ी देर में शिकारी आ पहुँचा और कहने लगा, इसको छोड़ दो, यह मेरा शिकार है । बुद्ध ने कहा, यदि शिकार करना ही स्वीकृत है तो मुझे मार डालो, मै तैयार हूँ, पर इस प्यारे बच्चे को हाथ मत लगाओ । लो, व्याध के हाथ से तीर कमान गिर पड़ा ।

बेचारी मरियम का लड़का, सुन्दर जवान, अपने मद मे मतवाला और अपने आपको संसार का सम्राट् कहनेवाला ईसामसीह क्या उस समय अशक्त मालूम होता है जब भारी सूली उठाकर कभी गिरता, कभी घायल होता और कभी अचेत हो जाता है । कोई पत्थर मारता है, कोई ढेला मारता है, कोई थूकता है, पर उस बहादुर का दिल नहीं हिलता, अपने प्रण पर अटल रहता है । ऐसे बहादुर उस बात को, जिसको संसारी प्राणी घोर दुःख समझते हैं, अपना खेल समझते हैं । ऐसे अमर लोगों को भला संसार के विषय-विकार मे डूबे हुए लोग क्या समझ सकते हैं ?

ससार में एक-दो नहीं किंतु ऐसे धीर, वीर, प्रणपालक और अपनी बात के पक्के सैकड़ों हजारों वीर पुरुष हो गये हैं । जब एक बार उनकी अन्तरात्मा ने उनको सत्य की झलक दिखला दी, वे फिर उस पर सदा अटल रहते हैं । शरीर जाय तो जाय, प्राण जाय तो, जाय, पर अपने सिद्धात से टलने का नाम वे फिर सदा के लिए भूल जाते हैं । ऐसा वह कर सकते हैं जिन्होने अपने शरीर का मोह छोड़ दिया हैं । वास्तव में ये ही सच्चे मनुष्य हैं और शेष सब तो कहने-सुनने के लिए आदमी होते हैं । ये संसार पर अपने आपको निछावर किए रहते हैं, ये लोग कभी बड़े अवसरों की खोज में नही रहते कि कभी कोई ऐसा

अवसर आवे, जब वे अपना महत्व दिखावें, किंतु अवसर स्वयं उनके पास आते हैं। छोटे से छोटे अवसर को वे बड़ा बना देते हैं। संसार भर की सम्मिलित शक्ति एक ऐसे महान् पुरुष पर विजय नहीं पा सकती।

—पूर्णसिंह।

# होली

होली हिंदुओं का एक बड़ा त्योहार है। यह भारतवर्ष के कोने-कोने में मनाई जाती है। कहते हैं कि इस दिन प्रह्लाद की बुआ होलिका उसको जलाने के लिए गोद में लेकर चिता पर बैठी थी। भगवान की कृपा से होलिका तो जल गई, परंतु प्रह्लाद ज्यों के-त्यों जीते निकल आये। इस बात पर लोगों का विश्वास नहीं होता, किंतु धर्मप्राण-हिंदू-जाति इस प्रकार की न मालूम कितनी बातों पर विश्वास करती है, जिनके सत्य और असत्य की विवेचना करना अनावश्यक है। कारण कुछ भी हो. परंतु जिस उत्साह के साथ होली मनाई जाती है वैसा कोई त्योहार नहीं मनाया जाता। इसे छोटे-बड़े, अमीर-गरीब, स्त्री पुरुष सभी मनाते हैं।

फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा की रात को होलिका दहन होता है। प्रत्येक गाँव और मुहल्ले में लकड़ियों का एक बहुत बड़ा ढेर लगाया जाता है। इसका श्रीगणेश बसंतपंचमी के दिन से होता है। लड़के गाँव में इधर उधर से लकड़ियाँ उठा लाते हैं। शहरों में मोल लेकर रखते हैं, लेकिन इस अवसर पर बहुत-सी लकड़ी चुरा कर ही होली में डाली जाती है और लोग इसे बुरा नहीं समझते। होली में पड़ी हुई लकड़ी फिर नहीं निकाली जाती। अतएव कभी-कभी लोग शत्रुतावश दूसरों का बड़ा नुकसान कर डालते हैं। ऐसा करना कदापि उचित नहीं है। शुभ मुहूर्त में लोग होली के पास इकट्ठा होते हैं। पहिले इसकी पूजा की जाती है, फिर आग लगाई जाती है। इस समय लोग अपने साथ

गोबर के बने हुए सूखे बल्ले लाते और उन्हें होली मे डालते हैं। इसी दिन से हमारा नया वर्ष भी आरभ होता है। अतएव इसी समय लोग अगले वर्ष के शुभ और अशुभ होने का विचार करते हैं। होली जलाकर लोग प्रेम से परस्पर मिलते हैं। गत वर्ष का मनोमालिन्य दूर करने और भविष्य में प्रेमभाव स्थापित करने के लिए ही होली की सृष्टि हुई है, ऐसा बहुत लोगों का विचार है। लोग एक दूसरे से यही कहते हुए सुने जाते हैं कि यदि जीवित रहे तो अगले वर्ष फिर होली मिलेंगे। गत साल भर की भूक-चूक माफ हो जाती है।

दूसरे दिन प्रातःकाल से ही रंग फेकना और गुलाल लगाना शुरू हो जाता है। कही-कही कोयला, कीचड गोबर आदि का भी उपयोग होता है, परंतु इससे झगड़ा ही होते देखा गया है. प्रेम नहीं। अतएव इन बातों से दूर ही रहना अच्छा है। नाच-रग, गाना-बजाना, शराब-भॉग आदि का भी होली में खूब मिलन होता है। आमोद-प्रमोद में ही सारा दिन बीत जाता है। बहुत से लोग गाली-गलौज भी करते हैं। ये प्रेम की गालियाँ जिन्हे क़बीर कहते है बडी अकथनीय होती हैं। इनकी सृष्टि का उद्देश्य कदाचित गंभीर रहा होगा, परन्तु आज देश में प्रेमभाव और बंधुत्व की कुछ कमी होने से कभी-कभी झगड़े भी हो जाते हैं। सभ्य समाज ने बहुत-कुछ इनका बहिष्कार कर दिया है।

प्रेम का सुंदर मिलन, बच्चों का उत्साह, युवकों की मादकता, स्त्रियों का पागलपन, और बुड्ढों का बुढ़भस आज एकत्र देखने को मिलता है। कहते हैं कि कभी व्रज में होली होती थी। कृष्ण और गोप-गोपियों के प्रेम की गाथा आज कहानी मात्र रह गई है। उस शुद्ध प्रेम की झलक आजकल देखने को कम मिलती है, हाँ कभी-कभी रसाभास भी हो जाता है। लोग मारे आनद के फूले नही समाते। कही-कही तो इतना रंग चलता है कि गलियों और मकानो की दीवालें तक रंग जाती हैं। रंग की पिचकारी और अबीर की झोली लिए हुए, भाँग खाये, मुँह बाये अनेक युवक आनद की तरगों मे हिलोरें लेते मस्त घूमते फिरते

हैं। खेलने में प्रेम, मिलने में प्रेम, गाने में प्रेम और खाने में प्रेम, जहाँ देखो वहीं होली में प्रेम ही प्रेम दिखाई देता है। हमारे भजन और होलियाँ भी देवा-देवताओं के प्रेम से भरी हुई होती हैं। आजकल राष्ट्रीय होलियों की प्रथा भी चल गई है। कई रियासतों मे बहुत अच्छी होली होती है जिसे देख चित्त प्रसन्न हो जाता है।

भगवान् करें, होली की सद्भावना प्रत्येक भारतवासी के हृदय में भर जाय। सब मिलकर एक हो जायँ, तभी सच्ची होली हो सकती है।

—मिश्रबधु।

## जूते की आत्मकथा

ससार बडा स्वार्थी है। कोई मरे या जिये लोगों को अपने काम से काम। वे रात-दिन हमें कुचलते रहते हैं और हम सदैव उन्हें अपने हृदय में स्थान देते हैं, फिर भी मेरी दशा पर किसी को तरस नही आता। किसी ने मेरा चरित्र तक न लिखा। लोग यदि कोई अच्छा काम करते हैं तो अपनी प्रशसा चाहते हैं। वक्ता और लेखक यही देखा करते हैं कि उनकी तारीफ होती है या नहीं। कविगण अपनी प्रशंसा आप कर लेते हैं। समालोचकगण अपने मित्रों की तारीफ के पुल बाँध देते हैं। यदि किसी से उनके गुण गाते न बन पड़े अथवा दोषोद्घाटन हो जाय तो उनके हिमायती हाथ धो कर पीछे पड़ जाते हैं। आलोचकगण बाल की खाल निकालकर विपक्षियों को मूर्खता की उपाधि से विभूषित करते और निज पक्षवालो को श्रेष्ठता का मुकुट पहिनाकर बरजोरी उच्चासन पर बिठा देते हैं। यही तमाशा देखकर तो आज मैं स्वय अपनी कहानी लिखने बैठा हूँ। पाठकगण मुझे आत्मगुण गाने और अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनने का दोष न दें।

आप मानें या न मानें परन्तु मैं भी द्विज हूँ। मेरा पहला जन्म प्राणियो के जन्म के साथ होता है। मै उनके शरीर की रक्षा करता हूँ। यदि मै न रहूँ तो हड्डियों को कौन सम्हाले। गर्मी और सर्दी, धूप और

मेंह सब मुझी को सहने पड़ते हैं।

मेरा दूसरा जन्म जीवों के मरने पर होता है। मनुष्य चर्म तो किसी काम नहीं आता, किंतु मै तो उन जीवों के चर्म से बनता हूँ जिन्हें सभ्यताभिमानी मनुष्यों ने पराधीन कर रक्खा है और जिन्हें वे पशु नाम से पुकारते हैं। उस समय की वेदना का स्मरण कर मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। आँखो से अविरल अश्रुधारा बहने लगती है। हाय मै बड़ी बेरहमी के साथ शरीर से जुदा किया जाता हूँ। कभी-कभी तो लोग जीवितावस्था में ही गला काटकर मुझे निकाल लेते हैं। बेचारे पशु तड़प तड़प कर प्राण दे देते हैं। इस निर्दयता पर किसी की दृष्टि नही जाती। ये सब कृत्य एकात मे किए जाते हैं जिससे आँखें मेरी दुर्दशा देखकर कही द्रवित न हो जायॅ और हृदय पसीज न जाय। फिर भी मुझे बड़ा सतोष है कि मै मनुष्यों के काम आता हूँ।

मेरा प्रसव इँगलैड की एक फैक्टरी में हुआ था। मेरा लड़कपन बड़े सुख से बीता। मैं हाथों हाथ पाला गया। अनेक प्रकार से मेरी सेवा की गई। मै रॅगा और सुखाया गया। इस सेवा से मैने अपनी कठोरता छोड़ कोमलता धारण कर ली। इसके उपरात मैं दूसरे कारखाने में भेजा गया। वहाँ मुझे यह रूप दिया गया जिसे आज-कल आप देखते हैं। मालिक के नाम पर मेरा नाम 'डासन का बूट' रक्खा गया। उन्होने मेरा नाम किया या मैने उनका इस पर विचार कर लीजिए। मैने खूब दुनियाँ देखी और बड़ा नाम कमाया। मै खूब चला। यह बात महाकवि अकबर को खटकी और उन्होंने एक शेर लिख ही तो डाला—

बूट डासन ने बनाया, मैने एक मजमूॅ लिखा।
मजमूॅ तो चलने न पाया, लेकिन जूता चल गया॥

मेरी जातिवाले मनुष्यों की अनेक प्रकार से सेवा किया करते हैं। उन पर आप स्वयं एक दृष्टि डाल लें। मै तो अपनी तथा अपने भाई-बहिनों की ही कहानी कहता हूँ। मेरे अनेक नाम और विशेषण हैं।

मै आजकल सर्वव्यापी हो रहा हूँ। ऋषि और मुनि लोग हमारा उतना सम्मान न करते थे जितना आजकल के शौकीन युवक। अतएव मै उन्हें हृदय से धन्यवाद देता हूँ। वे मुझसे डरते भी रहते हैं, क्योंकि किसी की इज्जत ले लेना हमारे बाएँ हाथ का काम है।

आजकल मेरे बुढापे के दिन हैं। अवस्था जर्जर हो गई है और चेहरा बिगड गया है। मेरा जोडा भी फट गया है। पहिले तो लोग हम दोनों को काँटो में घसीटते और पत्थरों पर पटकते थे, किंतु अब उमसे मुक्ति मिल गई है। अब मै वियोग में एक कोने मे पड़ा-पड़ा रोया करता हूँ और जीवन की अतिम घडियाँ गिन रहा हूँ।

—मिश्रबधु।

## रेलवे स्टेशन का एक दृश्य

रेलवे स्टेशन विचित्र चहल-पहल का अनोखा स्थान है। वह यद्यपि चौबीसों घंटे साधारण रूप में रौनक रहती है, फिर भी उस समय की धूम-धाम का क्या कहना जब रेल का समय होता है। लखनऊ या देहली के समान किसी-किसी बड़े स्टेशन पर जो आनन्द आता है वह किसी बड़े शहर के बडे-से बडे बाजार में न आयगा। बाहर और भीतर सभी जगह सैकड़ो की भीड़-भाड़ और शोर-गुल रहता है। ऐसा मालूम होता है कि कोई बडी बारात उतरी है।

बाहर सैकडो ताँगों और इक्को का ताँता बँधा रहता है। सस्ते भाड़े पर ले जानेवाली मोटरे भी जिन्हे टैक्सी कहते हैं, कम नहीं रहतीं। मुसाफिर बाहर से आया, ताँगे इक्के-गाडीवालो और कुलियों ने आ घेरा। 'बाबू जी हम', 'बाबूजी हम' की चीख-पुकार मे बहुधा मुसाफिर घबड़ा उठते हैं। उनसे सौदा चुकाकर आए तो स्टेशन पर सबसे बड़ी मुसीबत है तीसरे दर्जे का टिकट खरीदना। सैकड़ों की भीड-भाड, अनेक धक्के और घटों के इन्तजार के बाद कहीं टिकट नसीब होता है। फिर यदि कही सामान अधिक हुआ तो तुलाना पडता है। उसमें यदि

रेल का समय बहुत निकट आ गया हो तो बड़ी कठिनाई पड़ती है।

रेलवे स्टेशन का मुख्य प्लेटफार्म जिसे 'मेनप्लेटफार्म' कहते हैं, बड़े शान की चीज है। बड़े स्टेशनों पर यों तो कई-कई प्लेटफार्म होते हैं, किन्तु मेनप्लेटफार्म ही वास्तविक शोभा की जगह है। उसकी लम्बाई-चौड़ाई और सफाई देखकर चित्त प्रसन्न हो जाता है। लम्बे-लम्बे प्लेट-फार्म के एक ओर वेटिंगरूम, रिफ्रेशमेण्ट रूम तथा दफ्तरों के कमरों की पंक्ति और दूसरी ओर प्लेटफार्म से दो-तीन हाथ नीचे बिछी हुई रेल की पटरियाँ बड़ी सुन्दर प्रतीत होती हैं। प्रत्येक कमरे पर हाथ की तरह निकले हुए साइनबोर्ड बताते हैं कि वह तार-घर है, यह स्टेशन मास्टर का कमरा है, अथवा यह मर्दाना वेटिंग रूम है और यह जनाना। इनके अतिरिक्त इस ओर सारी दीवाल भिन्न-भिन्न प्रकार के अँगरेजी और हिन्दी विज्ञापनों से सजी-सी रहती है। टीन के बड़े और छोटे टुकड़े अनेक प्रकार के चित्रों से चित्रित लिपटन की चाय, चमवक मलहम और वाटरमैन स्याही के नोटिस का काम देते हैं। इनमें कुछ रेल के भी विज्ञापन हैं, जिनमें किसी पर काशी के मन्दिरों का दृश्य और किसी पर मथुरा के विश्राम घाट के चित्र हैं और यह लिखा है कि ई आई आर. से काशी और मथुरा की सैर करो। गाड़ी की प्रतीक्षा करनेवाले बहुत से मुसाफिर इन्हीं विज्ञापनों पर निगाहें दौड़ाकर अपना समय बिताते हैं। कुछ लोग दीवाल पर लगे हुए टाइम-टेबिलों पर टकटकी लगाये आनेवाली गाड़ी का समय खोज रहे हैं। प्लेटफार्म पर ऊपर से लटकी हुई घड़ियों से बहुत लोग अपनी घड़ियाँ मिलाते हैं और बहुत से केवल इसलिए देखते हैं कि अमुक स्थान पर सुई पहुँची या नहीं। कुछ ह्वीलर के बुक स्टाल पर किताबें और समाचार-पत्र उलटते-पलटते हैं, कुछ दूसरे स्थलों पर चाय पीते या खिलौने मोल लेते हैं, कुछ मित्रों के हाथ मे हाथ डाले अथवा बच्चों की उँगलियाँ पकड़े प्लेटफार्म पर इधर-उधर टहलते हैं। कुछ अँगरेज औरतें मर्दों के साथ टहलती हैं, कुछ लोग अपने सामान की

रखवाली करते हैं और झुक-झुक कर देखते हैं कि सिग्नल गिरा या नहीं और कुछ मुसाफिर कुलियों पर सामान रखाये आ रहे हैं। थोड़ी देर में हर प्रकार के आदमियों से प्लेटफार्म भर गया। इनमें बहुत से बंगाली हैं, बहुत से अँगरेज हैं और बहुत से पंजाबी प्रतीत होते हैं। इधर-उधर दो-चार काबुलिये भी लम्बा-चौड़ा शरीर और ढीला-ढाला पायजामा पहने दूर के लोगों का ध्यान आकर्षित करते हैं। छोटे-छोटे बच्चे अपने माता-पिताओं से पूछते हैं कि वे कौन जीव हैं?

इतने में लाइन क्लियर हुआ और थोड़ी देर में गाड़ी की धड़धड़ाहट सुनाई दी। बैठे मुसाफिर उठ खड़े हुए। कुलियों ने सामान सर पर रख लिया, बहुत से प्लेटफार्म पर फैल कर खड़े हो गये। रेल के बाबू लोग मुसाफिरों को हटाने लगे ताकि रेल का धक्का न लगे।

गाड़ी खड़ी होने की देर थी कि सारा स्टेशन नाना प्रकार की चीख-पुकार से गूँज उठा। खोंचे वाले 'सिगरेट-दियासलाई' 'पूरी-मिठाई', 'पान-गिलौरी' और 'गरम चाय' की आवाजें लगाने लगे। खानसामे अपनी चाय और बिस्कुट के थाल सजाकर फर्स्ट और सेकेंड क्लास की ओर लपके। अखबारवाले तरह-तरह के अखबारों के नाम ले-लेकर चक्कर लगाने लगे। उतरने और चढ़ने वाले मुसाफिरों का और ही रंग है। सभी अपनी-अपनी तरफ जल्दी कर रहे हैं। उतरने वाले पहले उतरना और चढ़नेवाले पहले चढ़ना चाहते हैं। कोई कुली से झगड़ रहा है, कोई सामान रख रहा है। कुछ गाड़ी पर बैठे हुए मुसाफिर ऐसा समझते हैं कि मानों उन्हीं को जाना है और वे दूसरे को अपने डिब्बे में घुसने नहीं देना चाहते। कुछ ऐसे भी हैं जो दूसरों का सामान उठाते हैं और खुद खिसककर दूसरों को बिठालते हैं। ऐसे समय मनुष्य की संकीर्णता और उदारता का पूरा परिचय मिलता है। भिन्न-भिन्न प्रकार की प्रकृतियाँ अपना आवरण हटाकर नंगी दिखाई देती हैं। पानी पाँडे के आस-पास अच्छी भीड़ है। कोई अपना घड़ा-सा लोटा लिए हटने का नाम नहीं लेता, दूसरा मुँह पर

हाथ रखे पानी की भीख माँगता है। अपने इष्ट-मित्रों, बंधु-बांधुवों को भेजने आनेवाले लोग जल्दी-जल्दी बातें करते जाते हैं और कोई पूछते जाते हैं कि अब कब मुलाकात होगी ? इतने में गार्ड ने सीटी दी और हरी झडी दिखाई गई। ऐंजिन ने पेट फुलाकर कान फोड़नेवाली सीटी और भप-भप की आवाज के साथ पैर बढ़ाये और गाड़ी चल दी। बहुत से लोग चलती गाड़ी पर चढने लगे। कोई पानी लेकर भागा आ रहा है, कोई अपना सामान गाड़ी में फेंककर गाड़ी पकड़ने के लिए दौड़ रहा है। बाबू लोग किसी-किसी को चढ़ने में मदद देते और किसी को चढ़ने से रोकते तथा डिब्बों के किसी-किसी खुले हुए दरवाजों को बंद करते हैं। अब डिब्बों में चढ़े हुए लोग बैठने की फिक्र करने लगे और एक दूसरे का परिचय पूछने लगे। कुछ लोग हाथ मिलाकर, रूमाल हिलाकर नमस्ते, गुडबाई, सलाम और राम-राम के साथ बिदा होने लगे।

प्लेटफार्म पर उतरे हुए लोगों की भीड़ भी घट गई है। टिकट बाबू इधर उधर भूले-भटके आनेवाले एक–दो और मुसाफिरों का इन्तजार करके चल दिए। खोमचेवाले और सभी ने प्लेटफार्म सूना कर दिया। सारा शोर शात हो गया मानो बारात बिदा हो गई अथवा बाजार उठ गया। बाबू लोग भी अपने–अपने कमरों में घुस गए। दो–चार आदमियों के आने–जाने को छोड़कर सारे प्लेटफार्म पर फिर वही सन्नाटा छा गया। प्लेटफार्म पर गड़े हुए खंभों में अथवा छतो पर लटकनेवाले बिजली के लट्टू दिन के कारण तारों की तरह छिपे रहे। उन्हें अपने खेल दिखाने का मौका न मिला। —कामेश्वरनाथ।

## श्रीरामेश्वर धाम

श्री रामेश्वरम् हमारे चार सबसे बड़े तीर्थों में हैं—चार धामों में, से है। चारों का स्थापन हमारे पुरखों की योग्यता और दूरदर्शिता का चमकता प्रमाण है। श्री जगन्नाथपुरी से श्री द्वारका तक, श्रीरामेश्वर से

श्री बदरिकाश्रम पर्वत तक हिंदू देश—भारतवर्ष है, इन तीर्थराजों के बीच रहनेवालों की एक सभ्यता अथवा धर्म और एक जाति है। इनके बीच हमारा – हिन्दू–जाति का धाम है। ये हमारे धामों की एकता सिद्ध करनेवाले हैं, हमारा हृदय इन स्थानों पर जाते समय इतना हुलसता है कि हम इन्हीं को अपना मुख्य धाम मानते हैं।

हमारे पुरखों के चरणरज इनके मार्ग में पड़े हैं। वहाँ पहुँचकर, अपने धाम की परिक्रमा करके वे कृतकृत्य हुए—पवित्र हुए। वे मार्ग पवित्र हैं, पावन हैं, वहाँ पहुँचकर हम भी पवित्र हो जाते हैं। फिर वे हमारे पवित्र पूर्व इतिहास के धाम हैं। कुछ नाम ऐसे होते है जो एक जाति के जातित्व, धर्म के सर्वस्व के धाम होते है। राम, कृष्ण युधिष्ठिर वैसे ही नाम हैं। इन नामों के धाम हैं। जैसे हमारी देह में हृदय इन नामों का धाम है वैसे ही हमारे देश में ये स्थान इन नायकों के धाम हैं। तब ये देश में, सबसे पुनीत-पावन स्थल क्यों न हों? इनमें ही आने वाला हिंदू अपने धाम की मर्यादा समझ जानेवाला हिंदू, पूज्य और दर्शन के योग्य कैसे न माना जाय?

इन पावन धामों में श्री रामेश्वर भारत-भूमि के दक्षिणतम स्थल में है। वहाँ पहुँच कर—

> आर्यसभ्यता-मूर्तिमय , श्रीहिंदूत्व स्वरूप ।
> विजय-धाम 'श्रीराम' यह पावन नाम अनूप ॥

का स्मरण होता है! यह नाम आर्यता—हिंदूत्व की मूर्ति है, हिंदू-विजय का धाम है। इस नाम का रामेश्वर मे बार-बार स्मरण होता है। बार-बार अपने पूर्व इतिहास की सुध आती है। बार–बार भूलता हुआ अपनापन आँखों के सामने आता है। यहाँ तक मर्यादा पुरुषोत्तम ने भारत की मर्यादा फैलाई, धर्म का राज्य स्थापन किया। यहाँ तक भारतीय धर्म का प्रचार कर आर्य–जाति और उसकी निवास–भूमि की अभिवृद्धि को भगवान् ने बाहुबल से, बुद्धिबल से, एकाकी, दूसरों को साधन बना आर्यावर्त को समुद्र पर्यंत पहुँचाया।

जातीय स्मृति के साधनीभूत इस तीर्थ-श्रेष्ठ पर पहुँचने के लिए मदुरा से रेल द्वारा जाना होता है। 'मदुरा' जाते समय कालिदास का रघुवंशांतर्गत दिग्विजय-वर्णन बहुत याद आता है। ताल-वृक्षों का यहाँ बाहुल्य है। दूसरे वृक्ष कम हैं। रामेश्वर से इधर कोई सात कोस पर समुद्र भूमि के बीच आ गया, इससे नाव या एक रद्दी 'स्टीम-लाँच' पर भर कर मनुष्य दूसरे पार ले जाते हैं। फिर वहाँ से रेल पर रामेश्वर पहुँचाया जाता है। नाव से पण्डों के नौकर जो प्राय: उत्तर भारत के हैं, समुद्र से टूटी हुई भूमि को दिखा कर कहते हैं कि यह टूटा सेतु है। यद्यपि शैल नाममात्र को भी वहाँ नहीं है और रामेश्वर अभी दूर है। इन्हीं भूमि खडों में से एक को एक असुर के पहरे का स्थान बनाते हैं जो रात को, कहते हैं, बनता हुआ सेतु तोड़ डाला करता था। पण्डे के भृत्य ने कहा कि यह राक्षस अब भी रामेश्वर में है। इस 'अबुधजना' किंवदंती का और उल्लेख आगे आवेगा।

रामेश्वर समुद्र-तट पर छोटा-सा ग्राम है। स्टेशन पर ३-४ कमरे रहने योग्य हैं और फिर पण्डो के मकान हैं। पण्डे सब महाराष्ट्र ब्राह्मण हैं। जान पड़ता है कि जब महाराष्ट्र साम्राज्य दक्षिण तक फैल गया था उसी समय महाराष्ट्र ब्राह्मणों का प्रभुत्व हुआ। मदिर का पुजारी भी महाराष्ट्रीय है। कोई भी संस्कृत नहीं जानता। पर ये तीर्थ के रक्षक हैं। अत: पोषणीय हैं। ग्रामों मे चारों ओर नारियल के वृक्ष हैं। छोटे-छोटे झोपड़े और बालूकामयी भूमि है। कुछ दूकानें मिठाई बनानेवालों की हैं जिसमे पश्चिमी (उत्तरी कहना चाहिए) लोगों की भी दो-चार हैं, शेष तैलगो की है।

मदिर के दोनों फाटकों के उच्च शिखर दूर से दीख पड़ते हैं। वे भुवनेश्वर, बुद्ध गया आदि स्थानो की बौद्ध वस्तुओ का स्मरण कराते हैं। द्वार पर खड़े होकर ऊपर देखा, तो बौद्धकाल की कारीगरी देख मन में बड़ा विस्मय हुआ। अंदर जाने के लिए पत्थर के ऊँचे खंभों पर गया हुआ मार्ग है जिसमें द्वार के पास कुछ कौड़ी इत्यादि की दूकाने

हैं। ऐसा मार्ग या गली मंदिर के चारों ओर है। ये गलियाँ योरप में पुराने मठों के भीतर भिक्षुकों के टहलने और पढ़ने के स्थान के सामने हैं। इसके विस्तृत विशाल स्तम्भ बड़े श्रीद्योतक हैं। मुख्य फाटक पर नदी नहीं, बौद्धकाल का पवित्र जतु हाथी है। मन्दिर के केन्द्र में उसी असुर की मूर्ति बताते हैं जो, कहते हैं, बनता हुआ पुल रात को उधेड़ देता था। इस पर पडे सब यात्रियों से चपत लगवाते हैं। जब लेखक ने इसे समीप से देखा, उसके रोंगटे खड़े हुए। यह मूर्ति हमारे श्रीविष्णु के अवतार ध्यानावस्थित भगवान बुद्धदेव की है। इसका पत्थर कदाचित संगमरमर है। सिर का कुछ भाग चपत मारने के पापाचार से घिस गया है।

जहाँ पर लिंग स्थापित है वह केन्द्र से दूसरी ओर मुख्य मंदिर से अलग सा दीखता हुआ एक छोटा-सा 'शिवालय' जैसा स्थान है। दर्शन समीप से नहीं करने देते। कोई बीस हाथ की दूरी पर खड़ा होना होता है। दर्शन और गध-धूप आदि से मन बहुत सुखी होता है।

मन में तर्क उठता है कि यह विशाल पाषाणमय मदिर क्या था? मंदिर की कला, बुद्ध की मूर्ति, द्वार पर हस्ती, ये सब बातें तो यही बताती हैं कि यह बौद्धकाल में बौद्ध मदिर था। लिंग–देवल के पास यह बनाया गया होगा, या जब बौद्धधर्म हिन्दूधर्म मे लुप्त हो गया पिंड अपनी जगह से लाया जाकर इस बड़े मंदिर के भीतर स्थापित किया गया होगा।

जो कुछ हो, रामेश्वर उन चार स्थानों में है जहाँ नाना प्रात के भारतीय मिलते और अपने को एक अनुभव करते हैं। ये तीर्थ मक्का, पैलेस्टाइन आदि के समान एकांत धर्म-सिद्धान्त पर स्थापित नहीं है, एक जाति के जीवित रखने, एक बने रहने के लिए है। यही कारण है कि इनमें एक नास्तिक का भी, जो हिंदू हो, प्रवेश हो सकता है, पर आस्तिक क्या, तद्देवोपासक भी अहिंदू—हिंदू-भिन्न जाति वाले—का प्रवेश नहीं हो सकता। —काशीप्रसाद जायसवाल।

## ताजमहल

संसार परिवर्तनशील है। मानव शरीर अनित्य है। स्मृति और यश अमर हैं। स्मृति अथवा यश के द्वारा अमर होना बिरले ही भाग्यवानों के भाग्य में होता है। भारतवर्ष पर मुगल शासन के प्रबल प्रताप और अमिट ऐश्वर्य की छाप सदा के लिए अटल और अमर है। भारत के इतिहास में शाहजहाँ का शासनकाल एक देदीप्यमान नक्षत्र की भाँति सदा चमकता हुआ पाया जायगा। संसार की इनी-गिनी आश्चर्यदायक विभूतियों में एक अनुपम स्मृति-विभूति के जनक स्वयं बादशाह शाहजहाँ हैं। इस अद्वितीय स्मृति का ही नाम है 'ताजमहल'।

ताजमहल पवित्र पत्नी-प्रेम का जाज्वल्य प्रकाश-स्तम्भ है जिसके प्रकाश से आज भी सारा संसार आलोकित है। बादशाह अपनी प्राणोपम राजमहिषी मुमताजमहल से अधिक प्रेम करते थे। उन्होंने उसी की इच्छानुसार इस अपूर्व और अद्भुत स्मृति चिह्न का निर्माण कराया था। यह रोजा शाहजहाँ के पत्नी-प्रेम का एक अत्यंत उत्कर्ष आदर्श है। यह इमारत संसार में अपनी सानी नहीं रखती। जो ससार यात्री भारतवर्ष में आते हैं वे इस अमर स्मृति का दर्शन करके आश्चर्य-चकित हो जाते हैं। यह अभूतपूर्व समाधि-मंदिर लगभग बीस वर्ष में बनकर तैयार हुआ था। इसके निर्माण में करोड़ों रुपये व्यय हुए थे। विकराल दुर्भिक्ष में बनने के कारण इसके द्वारा हजारों दीन-दुखियों की प्राण-रक्षा हुई थी। इसमें सगमरमर, संगमूसा आदि बहुमूल्य पत्थरों का उपयोग किया गया है। कहते हैं कि हीरा, नीलम, पद्मराग आदि मणि भी इसमें लगाए गए थे। किंतु वे सब मणि और फाटक के कपाट पीछे जाटों द्वारा लूट लिए गए।

यमुना के तट पर स्थित होने के कारण ताज की शोभा दूनी हो गई है। इसके विशाल फाटक से अंदर घुसते ही एक विचित्र दृश्य दृष्टिगोचर होता है। हृदय पर शाहजहाँ के विशाल वैभव और अनन्य प्रेम की छाप

अमिट रूप से अंकित हो जाती है। सामने थोड़ी-थोड़ी दूर पर पंक्तिबद्ध मस्तभाव से खड़े सरों के वृक्ष अनुपम शोभा प्रदर्शित करते हैं। उनके बीच में अविराम गति से चलते फौवारे मन को बरबस अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं। संगमरमर का श्वेतवर्ण रौजा नेत्रों मे चकाचौंध उत्पन्न कर देता है। आगे बढ़ने पर संगमरमर का एक बहुत बडा चबूतरा मिलता है जिसके चारो कोनो पर गगनचुम्बी चार अत्युच्च मीनार खड़े हैं। बहुत से लोग इन मीनारों पर चढ़कर ताज तथा आगरा नगर की छटा देखकर आनन्द प्राप्त करते हैं।

ताज के भीतर का शिल्प चातुर्य देखने ही योग्य है। दीवारों पर किया हुआ पच्चीकारी का कार्य मन को मुग्ध कर देता है। फूल-पत्ती का काम ऐसा नयनाभिराम है कि असली और नकली का भेद करना कठिन हो जाता है। सामने दो समाधियाँ दृष्टिगत होती हैं—एक शाहजहाँ की, दूसरी उसकी प्रियतमा मुमताज की। दोनों आदर्श प्रेमी साथ-साथ अनंत निद्रा मे विश्राम कर रहे हैं। किन्तु ये असली कब्रें नही हैं, ये इनके ठीक नीचे तहखाने में हैं। ताज के आस-पास सुन्दर उद्यान है जो अकृत्रिमता में कृत्रिमता का मेल प्रदर्शित करता है। चाँदनी रात में देखने से ताज अनुपम शोभाशाली प्रतीत होता है।

शाहजहाँ की उत्कट इच्छा थी कि ताज के ठीक सामने यमुना के दूसरे तट पर ऐसा ही सुन्दर एक दूसरा रौजा काले पत्थर का बनवाऊँ जिसमें मृत्यु के पश्चात् मैं स्वयं समाधिस्थ किया जाऊँ; परन्तु "मेरे मन कुछ और है कर्त्ता के कुछ और।" इसी बीच में औरंगजेब ने अपने पिता शाहजहाँ को जेल में डाल दिया जहाँ उसने शोकाभिभूत हो रो-रोकर प्राण परित्याग किए। उसके मन का मंसूबा उसके मन में ही विलीन हो गया।

इसमें संदेह नही कि ताजमहल का गौरव चिरकाल तक अक्षुण्ण बना रहेगा, दर्शकों के चित्त पर नित्य नया कुतूहल उत्पन्न करता रहेगा, इसे देखकर चित्तवृत्तियों में नाना प्रकार के भाव उत्पन्न होते

रहते हैं। एक बार एक अमेरिकन यात्री ताज देखने आया। ताज के अतुलनीय वैभव को देखकर वह कहने लगा—"प्राचीन समय के मनुष्य कितने मूर्ख होते थे कि इतना अपार धन ऐसी इमारतो में लगा देते थे, जो किसी काम में नहीं आ सकती हैं।" सयोगवश वहाँ उपस्थित एक हिन्दुस्तानी राजा ने उसे तत्काल ही उत्तर दिया—'उन लोगों को जो कुछ करना था कर गए, किन्तु वे लोग कितने मूर्ख हैं जो इतना धन खर्च करके विदेशों से इसके दर्शनार्थ आते हैं।'

ठगी महकमे के स्लीमन साहब एक बार अपनी मेम साहब के साथ ताज देखने गए। देखने के पश्चात् उन्होंने अपनी पत्नी से पूछा कि ताज तुम्हें पसन्द आया? मेम ने उत्तर दिया—इसके सौन्दर्य और वैचित्र्य का वर्णन तो अवर्णनीय है, पर हाँ, यदि कोई मनुष्य मेरी कब्र पर इस प्रकार का दूसरा रौजा बनवाने को तैयार हो तो मैं अभी आनन्द-पूर्वक मृत्यु का आलिंगन करने को तैयार हूँ।

—सी० एल० मालवीय।

## गंगाजी

इन तीन अक्षरों से हमारे भारत का कितना सम्बन्ध है, यह सोचने बैठते हैं तो हमारा मन हिमालय से भी लम्बा-चौड़ा और विचार-शक्ति गगा नदी, बरंच महासागर को भी लज्जित करनेवाली हो जाती है। आहा! गंगा और भारत के सम्बन्ध को पूर्ण रूप से लिखना कोई हँसी-खेल है? ऐसा भी कोई हिन्दू है जो दिन भर में इस नाम को मन व वचन से न्यूनातिन्यून एक बार न लेता हो? ऐसा भी कोई काम है, जिसमें गगा जी का कुछ न कुछ प्रत्यक्ष या प्रच्छन्न लगाव न हो? ऐसा भी किसी विषय का कोई ग्रन्थ है, जिसमें किसी रीति से यह अक्षर न आए हों? नही, नहीं, कदापि नहीं! भारत की तो गंगा प्राण है, शोभा है, बरंच सर्वस्व है। परमोत्तम पुरुषों के शिरमुकुट हमारे मुनीश्वरों को ब्रह्म-प्राप्ति की बड़ी सुविधा गगा ही से है।

कहाँ तक कहिए, ब्रह्मद्रव, देवनदी इत्यादि नामों ही से टपकता है कि ऋषियों को जगत से अनिच्छा होने पर भी गगा से ममत्व था। सैकड़ों मन खाद्य वस्तुएँ गंगाजल में सींची जाती है। सहस्रों ब्राह्मण गंगातट पर सुख से जीवन यात्रा करते हैं। लाखों जीव-जन्तु गंगा में पलते हैं। फिर क्यों न गगा 'माता' कही जाय? इधर यदि वेदों में 'इमम्मे गगे' इत्यादि मंत्र हैं, पुराणों में एतद्विषयक बहुत सी कथाएँ हैं, तो आल्हा मे भी 'गंगा किरिया राम दुहाई हम ना धरब पछाड़े पाँव' मौजूद है।

भक्तों के लिए नहाने और ठाकुर नहलाने को गंगा, व्यापारियों के लिए नावें आने-जाने के लिए गंगा, सुहृदयो के लिए सायंकाल हवा खाने को गंगा, अनेक प्रकार के रोगियों के लिए जल और बालुका द्वारा व्याधि हटाने को गगा, बेईमानों के बात-बात पर उठाने को गगा, नगर भर का अघोर बहाने को गंगा, मृतकों का अन्त्येष्ट बनाने को गगा, नए मतवालों को मुँह बिचकाने को गंगा, राह मे मिश्नरियों के बाजे सुनाने को गगा, और हाय, निर्दयी हत्यारों को मछली फँसाने के लिए जाल फैलाने को गंगा! प्यारे पाठकगण, दूर तक समझ लीजिए, कहाँ-कहाँ, कैसे-कैसे, किसको-किसको गंगा से प्रयोजन है! यद्यपि हमारे यहाँ बहुत सी नदियाँ हैं; पर ऐसा सर्वव्यापी सम्बन्ध किसी का नहीं। यमुनाजी भगवान श्रीकृष्ण के नाते पूजनीय समझी जाती हैं, पर हमारी गंगा की छोटी बहिन कहलाती हैं। ऐसा कोई सम्प्रदाय नहीं, जिसमें गगा न मानी जाती हो। ग्रन्थ के ग्रन्थ गंगाजी की महिमा से भरे पड़े हैं, और अब बनते ही चले जाते हैं।

हमारे बड़े-बड़े तीर्थ और बड़े-बड़े नगर बहुत थोड़े हैं; जो गंगा पर न हो। जहाँ से गंगाजी दूर हैं वहाँ कोई कुंड व छोटी नदी का नाम गगा सम्बन्धी अवश्य होगा। हमारे बैसवाड़े में एक कहावत है "का गग हाड लै जैहौ।" इससे मालूम होता है कि कभी किसी स्थान के हिन्दू जिनसे गंगा बहुत दूर हैं, अपने प्रिय मृतकों की हड्डियाँ

गंगा में पहुँचाना बड़ा उत्तम समझते होंगे। सभी नदियों के तटस्थ ब्राह्मण "घाटिया" इत्यादि कहाते हैं पर गंगा के नाते लाखों ब्राह्मण गगापुत्र के नाम से पुकारे जाते हैं, और कैसे ही क्यो न हो, पुजाते हैं। क्यों न कहिए कि गगा हमारी एक महत्तम प्रेमधार है? धन्य गंगे! तुझे 'सर्वदेवमयी' जिन्होंने कहा है, निहायत ठीक कहा है। तेरा स्मरण होते ही तबीयत की ताजगी होती है। फिर तुझे अमृतमयी क्यों न मानें?

बहुतों का विश्वास है, बहुत पोथियों में लिखा है कि गंगास्नातक मरणांतर शिवत्व अथवा विष्णुत्व को प्राप्त होता है। श्रीमान कविवर अब्दुल रहीमखाँ खानखाना, जो अकबर के समय में संस्कृत और भाषा के बड़े अच्छे वेत्ता थे, के एक श्लोक का सार है—विष्णु बनाओगी तो मुझे कृतघ्नता का दोष होगा, क्योंकि तुम उनके चरण से निकली कहाती हो। अतएव शिव बनाना, जिसमें तुम्हें शिर पर धारण करूँ।

अन्य मत वाले देख लें कि अच्छे मुसलमान भी हमारी गंगा को क्या कहते हैं। फिर हम उन हिन्दुओं को क्या कहें, जो गंगा से प्रीति नहीं करते! हमारी समझ में मरने पर क्या होता है यह नहीं आता। पर जीते जी गंगा ब्रह्मा, विष्णु, महेश बनाती है, प्रत्यक्ष दिखा देंगे। किनारे नहाने को खड़े हो तो पाँव के नीचे गंगा बहती रहती है, यह विष्णु भगवान का चिन्ह है, डुबकी के समय शिर के ऊपर से धारा बहती है, यह शिव जी का अंग है, बाहर निकलते ही मुख में वेद का कोई मंत्र व वेदवंद्य परमेश्वर का कोई नाम होता है जो ब्रह्म का रूप है। क्यों, तीनों हो गए? हमारे मित्र मुंशी कालीचरण साहब 'सेवक' कवि की एक सवैया इसी मतलब में है। यथाः—

सेवक तीर पै ठाढो भयो पद ह्वै बहि विष्णुता गंग दई है।
न्हात समय सिर ते कढी ता छन संकर लौ शुभ सोभा भई है।
बाहर आय पढ़े श्रुति मंत्र तबै विधि को पद साँचो दई है।
आय त्रिगामिनी तीर त्रितापहु होत सदेह त्रिदेवमयी है।

—प्रतापनारायण मिश्र।

# कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर

कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर बंगाल के सुप्रसिद्ध पुरुषों में से थे। वे बग साहित्य के देदीप्यमान रत्न थे। बगाल में ऐसा कोई भी घर न होगा जिसमे उनके काव्य और निबध, उपन्यास और नाटक तथा आख्यायिकाये न पढ़ी जाती हों और उनके गाने न गाये जाते हों। उन्होने अपनी लेखनी के बल से शिक्षित बगालियो के विचारों मे बहुत बडा परिवर्तन कर डाला है। इसीलिए वे बग-भाषा के अद्वितीय लेखक समझे जाते हैं।

रवीन्द्र बाबू का जन्म सन् १८६१ में हुआ। वे बाबू द्वारकानाथ ठाकुर के पौत्र और सुप्रसिद्ध महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर के पुत्र थे। उनका वश अपनी विद्वता के लिए चिरकाल से प्रसिद्ध है। इसी वश में कितने धार्मिक, दार्शनिक, साहित्य-सेवी और शिल्पकार पुरुषो ने जन्म लेकर बग-देश का मुख उज्ज्वल किया है।

रवीन्द्र बाबू मातृ-स्नेह से वंचित रहे। शैशवकाल ही में उनकी माता का देहान्त हो गया था। महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर ही ने उनका पालन-पोषण किया। रवीन्द्र बाबू ने किसी कालेज मे शिक्षा नहीं पाई। स्कूल की साधारण शिक्षा प्राप्त कर लेने पर उन्होंने आगे पढना बंद कर दिया। घर पर ही उनको जो शिक्षा मिली और उनके पिता ने उनके हृदय-क्षेत्र पर जिस बुद्धि-विकासक बीज का वपन किया, उसकी बदौलत रवीन्द्र बाबू कुछ के कुछ हो चले।

लडकपन ही से रवीन्द्र बाबू ने अपनी कुशाग्र-बुद्धि का परिचय देना आरम्भ कर दिया। जब वे पूरे १३ वर्ष के न थे तभी से गद्य और पद्य लिखने लगे। उन्हें गाने का शौक भी लड़कपन ही से हुआ। पिता को वे बहुधा परमार्थिक गीत गा-गाकर सुनाते थे। पिता ने उनके गाने से प्रसन्न होकर उन्हें-"बंग देश की बुलबुल"—की उपाधि दी थी। ज्यों-ज्यों रवीन्द्र बाबू की यशो-वृद्धि होती गई, त्यो-त्यो उनके

विशेष गुणों का परिचय मिलता गया। बंगाल-साहित्य के जिस विभाग में उन्होने हाथ डाला उसी मे उन्हें सफलता प्राप्त हुई। रवीन्द्र बाबू मानव जाति के भिन्न-भिन्न भावों के चित्र शब्द द्वारा खींचने मे बड़े ही कुशल थे। उनके लिखने की शैली में कुछ ऐसा जादू है कि वे जिस ओर चाहें अपने पाठक की रुचि फेर दें। उनके लेखों में आध्यात्मिकता भी रहती है। उनकी बदौलत बंगाल के आध्यात्मिक जीवन मे बहुत उलट-फेर हो गया। छोटी-छोटी शिक्षाप्रद आख्यायिकाएँ लिखने में वे अपना सानी नहीं रखते। भारती, बालक, साधना और बंग-दर्शन नामक बँगला की चार मासिक पुस्तकों का सपादन भी उन्होने बहुत काल तक किया था।

रवीन्द्र बाबू केवल लेखक ही नहीं, बड़े भारी अभिनेता भी थे। उनका सुर बहुत मीठा तो नहीं था, पर संगीत-विद्या के वे पूरे ज्ञाता थे। उन्होने अनेक गीत बनाए हैं। उन गीतो को गाने में वे नए-नए सुरों का प्रयोग करते थे। वे कभी-कभी त्योहारों या ब्रह्म-समाज के उत्सवो पर सर्वसाधारण के सामने गाते भी थे।

वे वक्ता भी अच्छे थे। उनकी वक्तृता बड़ी ही हृदय-हारिणी होती थी। उसे वे प्राय: लिख कर सुनाते थे। उनके पढ़ने का ढंग ऐसा अच्छा था कि लोग तन्मय हो जाते थे। जब कभी उनकी वक्तृता अथवा गान सर्वसाधारण में होता था तब बेहद भीड़ होती थी।

रवीन्द्र बाबू बड़े स्वदेश-भक्त थे। उन्होने स्वदेश-भक्ति पर कितनी ही कविताएँ लिखी हैं। मातृभूमि के वे पक्के आराधक थे और स्वदेश प्रेम से उनका हृदय परिपूर्ण था। परन्तु उनकी इस देशभक्ति में संकीर्णता और विदेश तथा विदेशियों के प्रति द्वेष नाम को भी नहीं था। वे राजनीतिज्ञ भी थे; परन्तु उनकी राजनीतिज्ञता चरित्र से बहुत अधिक सम्बन्ध रखती है।

रवीन्द्र बाबू न बी० ए० थे और न एम० ए०। उन्होंने किसी विश्वविद्यालय से कोई उपाधि नहीं पाई। परन्तु वे इतने अध्ययनशील

थे कि प्रसिद्ध-प्रसिद्ध भाषाओं की नामी पुस्तक में शायद ही कोई ऐसी हो जिससे वे परिचित न हों। केवल ज्ञान-वृद्धि के लिए उन्होंने भारत ही में भ्रमण नहीं किया, किंतु योरप, अमेरिका और जापान भी घूम आये थे। लदन में उन्होंने कुछ काल तक अंग्रेजी-साहित्य की शिक्षा भी प्राप्त की थी। कलकत्ता के पास बोलपुर में रवींद्र बाबू का एक "शांतिनिकेतन" है। उसमें उन्होंने एक ब्रह्मचर्याश्रम खोल रखा था। वहाँ विद्यार्थी अपने शिक्षकों के साथ रहकर, ब्रह्मचर्य-पालन करते हुए उपयोगी शिक्षा प्राप्त करते हैं।

रवीन्द्रनाथ बाबू ने गद्य-पद्यात्मक सैंकड़ो पुस्तकें बंगला में लिखी हैं। अँग्रेजी लिखने की योग्यता रखने पर भी वे उस भाषा में अपने विचार नहीं प्रकट करते थे। यहाँ तक कि जो लोग अपने देश-भाइयों और आत्मीय जनों के साथ अंग्रेजी भाषा में पत्र-व्यवहार करते हैं उनके इस काम को रवींद्र बाबू लज्जाजनक समझते थे।

रवींद्र बाबू एक महान् पुरुष थे। सरस्वती ही की आराधना करके वे महान् हुए थे। रवींद्र बाबू का बँगाल ने जो सम्मान किया और हाथी दाँत के पत्र पर खचित अभिनदनपत्र रजत-अर्घ्यपात्र, सोने का एक कमल और एक माला आदि चीजें जो उन्हें भेट की, वह सम्मान और वह भेंट यथार्थ में रवींद्र बाबू की नहीं, किंतु देवी सरस्वती की है। धन्य है वह देश और वह जाति जो अपने साहित्य-सेवियों का आदर करके भगवती सरस्वती की उपासना करे और धन्य है वह महान् पुरुष जो सरस्वती-मंदिर का पुजारी होने के कारण अपने देश और जाति-वालों से सम्मानित हो। —महावीरप्रसाद द्विवेदी।

## भरत

राम की वनयात्रा के पहले भरत के चरित्र की शृंखला संगठित करनेवाली कोई बात हम नहीं पाते। उनकी अनुपस्थिति में ही राम के अभिषेक की तैयारी हुई, राम वन को गए। ननिहाल से लौटने पर

ही उनके शीलस्वरूप का स्फुरण आरम्भ होता है। ननिहाल में दुःस्वप्न और बुरे शकुन होते हैं, तब वे माता-पिता और भाइयों का मंगल मनाते हैं, कैकेयी के कुचक्र में अणुमात्र योग के संदेह की जड़ यहीं से कट जाती है। कैकेयी के मुख से पिता के मरण का संवाद सुन वे शोक कर ही रहे हैं कि राम के बनगमन की बात सामने आती है, जिसके साथ अपना सम्बन्ध—नाममात्र का सही—समझकर वे एकदम ठक हो जाते हैं। ऐसी बुरी बात के साथ सम्बन्ध जोड़नेवाली उनको माता के रूप में नहीं दिखाई देती। थोड़ी देर के लिए उसकी ओर से मातृभाव हट-सा जाता है। ऐसा उज्जवल अंतःकरण ऐसी घोर कालिमा की छाया का स्पर्श तक सहन नहीं कर सकता। यह छाया किस प्रकार हटे इसी के यत्न में वे लग जाते हैं, हृदय का संताप बिना शांति-शील समुद्र राम के सम्मुख हुए दूर नहीं हो सकता। वे चट विरहव्यथित पुरवासियों को लिए-दिए चित्रकूट में जा पहुँचते हैं और अपना अंतःकरण भरी सभा मे लोकादर्श राम के सम्मुख खोल कर रख देते हैं। उस आदर्श के भीतर उनकी निर्मलता देख वे शांत हो जाते हैं और जिस बात से धर्म की मर्यादा रक्षित रहे, उसे करने की दृढ़ता प्राप्त कर लेते हैं।

भरत ने इतना सब क्या लोकलज्जा-वश किया? नहीं, उनके हृदय में सच्ची आत्मग्लानि थी, सच्चा संताप था। यदि ऐसा न होता तो अपनी माता कैकेयी के सामने वे दुःख और क्षोभ न प्रकट करते। वह आत्मग्लानि ही उनकी सात्विक वृत्ति की गहनता का प्रमाण है। इस आत्मग्लानि के कारण का अनुसधान करने पर हम उस तत्व तक पहुँचते हैं, जिसकी प्रतिष्ठा रामायण का प्रधान लक्ष्य है। आत्मग्लानि अधिकतर अपने किसी बुरे कर्म को सोच कर होती है। भरत जी कोई बुरी बात अपने मन मे लाए तक न थे। फिर यह आत्मग्लानि कैसी? यह ग्लानि अपने सम्बन्ध में लोक की बुरी धारणा के अनुमान मात्र से उन्हें हुई थी। लोग प्रायः कहा करते हैं कि अपना मन शुद्ध है, तो

संसार के कहने से क्या होता है ? यह बात केवल साधना की ऐकातिक दृष्टि से ठीक है, लोक-संग्रह की दृष्टि से नही। आत्मपक्ष और लोकपक्ष दोनों का समन्वय रामचरित का लक्ष्य है। हमें अपनी अतवृ ति भी शुद्ध और सात्विक रखना चाहिए और अपने सम्बन्ध मे लोक की धारणा भी अच्छी बनानी चाहिए। जिसका प्रभाव लोक पर न पड़े, उसे मनुष्यत्व का पूर्ण विकास नहीं कह सकते। यदि हम वस्तुतः सात्विक-शील हैं पर लोग भ्रमवश या और किसी कारणवश बुरा समझते हैं, तो हमारी सात्विक-शीलता समाज के किसी उपयोग की नहीं। हम अपनी सात्विक-शीलता अपने साथ लिए चाहे स्वर्ग का सुख भोगने चले जायें पर अपने पीछे दस-पाँच आदमियों के बीच दस-पाँच दिन के लिए भी कोई शुभ प्रभाव न छोड़ जायँगे। ऐसे ऐकातिक जीवन का चित्रण जिसमें प्रभविष्णुता न ;हो, रामायण का लक्ष्य नही है। रामायण भरत ऐसे पुण्यश्लोक को सामने करती है, जिसके सम्बन्ध में राम कहते हैं—

> मिटिहहिं पाप-प्रपच सब, अखिल अमगल भार।
> लोक सुजस परलोक सुख, सुमिरत नाम तुम्हार ॥

जिस भरत को अपथ की इतनी ग्लानि हुई, जिसके हृदय में धर्मभाव कभी न हटा, उनके नाम के स्मरण से लोक में यश और परलोक मे सुख दोनों क्यों न प्राप्त हों ?

भरत के हृदय का विश्लेषण करने पर हम उसमें लोक-भीरुता, स्नेहार्द्रता, भक्ति और धर्म-प्रवणता का मेल पाते हैं। राम के आश्रम पर जाकर उन्हें देखते ही भक्ति-वश "पाहि ! पाहि !" कहते हुए वे पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं। सभा के बीच जब वे अपने हृदय की बात निवेदन करने खड़े होते हैं, तब भ्रातृस्नेह उमड़ आता है, बाल्यावस्था की बाते आँखों के सामने आ जाती हैं। इतने में ग्लानि आ दबाती है और वे पूरी बात भी नहीं कर पाते।

उन्हें इस बात पर आत्मग्लानि होती है कि मै आप अच्छा बनकर

माता को भला-बुरा कहने लग गया। 'अपनी समुझि साधु सुचि कौं भा !' जिसे दस भले आदमी—पवित्र और सज्जन लोग—जड़ और नीच नहीं—साधु और शुचि मानें, उसी की साधुता और शुचिता किसी काम की है। इस ग्लानि के दुःख से उद्धार पाने की आशा एक इसी बात से होती है कि गुरु और स्वामी, वशिष्ठ और राम ऐसे ज्ञानी और सुशील हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह आशा ऐसे दृढ़ आधार पर थी कि पूर्णरूप से फलवती हुई। भरत केवल लोक की दृष्टि में पवित्र ही नहीं हुए, लोक को पवित्र करनेवाले भी हुए। राम ने उन्हें धर्म का साक्षात् स्वरूप स्थिर किया और स्पष्ट कह दिया कि—

भरत ! भूमि रह राउरि राखी।

—रामचन्द्र शुक्ल।

## कर्मवीर महाराणा प्रताप

महाराणा प्रताप के यहाँ अच्छा आदर-सत्कार पाने पर भी विभीषण मानसिंह चित्तौड़ के कुमार से बोले—"राणाज शिर में जो दर्द है उसकी दवा शीघ्र ही लेकर लौटूँगा।" विभीषण चिकित्सक मानसिंह शीघ्र ही लौटा। हल्दीघाटी के मैदान ने इस सुयोग्य चिकित्सक का आवाहन किया। प्रताप भी अपनी कठिनाइयों का पहला पाठ पढ़ने के लिए इस रणक्षेत्र की ओर आगे बढ़ा। २२००० साथी—लेकिन अंत में आठ हजार ही बचे, शेष सब प्रताप को दक्षिणा मे देने पड़े। घमासान युद्ध ! प्राणों का बाजार पूरा गरम ! भीषणता और उनका सच्चा महत्व उसी समय समझ सकते हो, जब एक किसान की कुटी की शाति और सौम्यता से इस दृश्य की तुलना करो। मनुष्य की पाशविक शक्ति का पूरा नमूना, लेकिन साथ ही संसार के उज्ज्वल गुणों का पूरा खजाना ! मर रहे और मारे जा रहे हैं ! एक पर एक टूट रहे हैं और एक पर एक गिर रहे हैं। ढाल—लेकिन अत मे कोमल शरीर ही ढाल का काम देते हैं। तलवार—मनुष्य के रक्त की तरलता देखकर

उसका पानी और भी तरल हो जाता है ! बर्छियाँ जरा सा भी अन्याय नहीं करतीं ! इस यज्ञकुंड मे, प्रताप ! तुम अपनी जान को बार-बार आहुति दे रहे हो। लेकिन तुम इससे छुटकारा नहीं पा सकते, तुम्हें संसार में रहकर ससार से संग्राम करना है ! मानसिंह !—वह विभीषण दवा लेकर प्रताप के सामने न आ सका। ओह ! सलीम बच्चा है, छोड़ो प्रताप, उसे छोड़ो ! आह ! अब तुम बेतरह घिर गए ! तुम अकेले और ये मुगल सिपाही सैकड़ो ! तुम्हारा मुकुट इस समय तुम्हारा शत्रु हो गया है। फेक दो उसे ! अरे फेक दो उसे ! फेको भी ! देश और जाति को, नही संसार को, तुम्हारी जान तुम्हारे सोने के तुच्छ मुकुट से भी ज्यादा प्यारी है। नहीं फेकोगे ? अच्छा राजपूत वीरों, आगे बढो, देखो तुम्हारा अधिपति मुफ्त ही मे जा रहा है ! बढ़ो आगे, बचाओ, बचाओ ! हाँ सादड़ी के झाला ! तुम, हाँ बढ़ो ! बस ठीक ! झाला के सिर पर मुकुट है। मुगल तलवारें झाला पर पड़ने लगीं, प्रताप को उन्होंने छोड़ दिया। एक जान के बदले दूसरी जान बचा ली ! रक्त-नदी बह उठी। लेकिन, चित्तौड़ की स्वतन्त्रता-देवी की प्यास न बुझी। अभी परीक्षा आरम्भ ही हुई है। प्रताप ! एक किले के बाद दूसरा किला दो ! अब किले नहीं रहे तो जाओ पहाड़ियों और जंगलों की खाक छानो। एं ! रसद बंद हो गई ! तो क्या हर्ज है ? पत्ते कहीं नहीं गए, जगल का सामा और कोदों का कोई हाथ न पकड़ लेगा। आज यहाँ तो कल वहाँ ! घास की रोटियाँ ! लेकिन खाते ही मुगल आ पहुँचे। लड़ते-भिड़ते निकल चलो ! सोने को बिछौने नहीं, कोई हर्ज नही ! बड़ों के लिए चट्टानें और बच्चों के लिए बाँस के पालने ही सही ! अँधेरी रात, धधकती दुपहरियाँ, जाड़े का कड़ाका, वर्षा की रिमझिमाहट, आत्मा की आग और परमात्मा की उदासीनता, साथियों का मरते जाना और सैनिकों का कम होते जाना, कठिन समस्या और कठोर व्रत ! एक दिन नहीं, दो दिन भी नहीं— एक साथ पच्चीस वर्ष तक !

२

यह कैसी चीत्कार ? चित्तौड़ की राजकुमारी के हाथ से एक बन-बिलाव घास-पात की रोटी छीन ले गया ! राजकुमारी चीख उठी। बिलाव के डर से नही, भूख के डर से। राजकुमारी, और रोटी के लिए तरसे ! लेकिन प्रताप, यह क्या ? तुम्हारी आत्मा काँप क्यों उठी ? लड़की की वेदना देखकर और परिवार के कष्टो से ? शांत हो और विचारो ! देखो, वह तुम्हारे शत्रु अपने खेमे मे घी के दीपक जला रहे हैं। क्यों ? तुम्हारी हिम्मत टूटती हुई देखकर। इन दीपकों के घी और बत्ती के साथ, सच बताओ, तुम्हारा हृदय जला कि नही ? हाँ जला, अब अब उस जले पर नमक छिड़कने की ज़रूरत नहीं।

३

हो चुका ! बस, चित्तौड़ की पवित्र भूमि ! तुझे नमस्कार है। तुझे छोड़ता हूँ। लेकिन स्वतन्त्रता का पल्ला नहीं छोड़ता। जो था, सो सब इस देवी के अर्पण हो चुका। शरीर में जो हड्डियाँ बाकी हैं, वे भी उसके अर्पण हो चुकीं। जननी—जन्मभूमि, अन्तिम दर्शन है ! तो, आज्ञा दो।

प्रताप, आगे बढ़ो, तुम्हारी सच्ची माता तुम्हें बुला रही है। हरिश्चंद्र अपनी दासता के कर्तव्य में जब हद से ज्यादा आगे बढ गये थे, तब कहते हैं कि निराकार प्रभु ने आकर उनका हाथ पकड़ा था। मेवाड़ की भूमि भी तेरा पैर पकड़ रही है। देख, उसका एक सपूत आगे बढता है। भामाशाह तेरे पैर थामता है। देश को मत छोड़, वह तुझे छोड़ने के लिए तैयार नही। भाग्य अभी तक तुझे छोड़े था, लेकिन, अब यह प्रार्थना करता है कि तू इसे मत छोड़। ले धन। २५००० आदमी इस धन से १२ वर्ष तक खा सकेंगे। तेरी तपस्या पूरी हो गयी और देख, स्वतन्त्रता देवी स्वय तेरे पास आ रही है। तेरे साहस और तेरी दृढ़ता तथा वीरता और उदारता के सामने उसका आसन डोल उठा है। देख, शाति से वह मुस्करा रही है। उसके हाथों में माला है और

देख तेरे गले में गिरती है।

४

महानपुरुष—निस्सदेह महान पुरुष! भारतीय इतिहास के किस रत्न में इतनो चमक है? स्वतन्त्रता के लिए किसने इतनी कठिन परीक्षा दी? जननी-जन्मभूमि के लिए किसने इतनी तपस्या की? देशभक्त, लेकिन देश पर एहसान जतानेवाला नहीं। पूरा राजा, लेकिन स्वेच्छाचारी नहीं। उसकी उदारता और दृढता का सिक्का शत्रुओं तक ने माना। शत्रु से मिले भाई शक्तिसिंह पर उसकी दृढ़ता का जादू चल गया। अकबर का दरबारी पृथ्वीराज उसकी कीर्ति गाता था। भील उसके इशारे के बंदे थे। सरदार उस पर जान न्योछावर करते थे। भामाशाह ने उसके पैरों पर सब कुछ रख दिया। विभीषण मानसिंह उससे नजर नही मिला सकता था। अकबर उसका लोहा मानता था। खानखाना उसकी तारीफ मे पद्य-रचना करना पुण्यकार्य समझता था। जानवर भी उसे प्यार करते थे, और घोड़े चेतक ने उसके ऊपर अपनी जान न्योछावर कर दी। स्वतन्त्रता देवी को वह प्यारा था, और वह उसे प्यारी थी। चित्तौड़ का वह दुलारा था और चित्तौड़ की भूमि उसे दुलारी थी। उदार इतना कि वेगमें पकड़ी गयी और सम्मान सहित वापस भेज दी गयीं। सेनापति फरीदखाँ ने कसम खाई कि प्रताप के खून से मेरी तलवार नहायेगी, प्रताप ने सेनापति को पकड़कर छोड़ दिया।

५

अंतिमकाल! जान नहीं निकलती। राणा क्यो? मुझे विश्वास नहीं कि मेरे बाद चित्तौड़ की स्वाधीनता कायम रह सके। क्यों? राजकुमार दृढ न सही, मेवाड़ के सोलह सरदार, राणा जी, कसम खाते हैं कि हम अपने खून से स्वतन्त्रता के उस बीज को, जो तूने बोया, सींचेंगे। शांति हुई, और उसकी आत्मा शरीर से बाहर होकर स्वतन्त्रता देवी की पवित्र गोद में जा विराजी। प्रताप! हमारे देश का प्रताप! हमारी जाति का प्रताप! दृढता और उदारता का प्रताप! तू नहीं है,

केवल तेरा यश और कीर्ति है। जब तक यह देश है और जब तक संसार में दृढ़ता, उदारता, स्वतन्त्रता और तपस्या का आदर है, तब तक हम क्षुद्र प्राणी ही नहीं, सारा संसार तुझे आदर की दृष्टि से देखेगा। संसार के किसी भी देश में तू होता, तो तेरी पूजा होती और तेरे नाम पर लोग अपने को न्योछावर करते। अमेरिका मे होता तो वाशिंग्टन और इब्राहीम लिंकन से तेरी किसी तरह कम पूजा न होती। इंगलैंड मे होता तो वेलिंग्टन और नेलसन को तेरे सामने सिर झुकाना पड़ता। स्काटलैंड मे वालेस और राबर्टब्रूस तेरे साथी होते। फ्रांस मे जान आफ आर्क तेरे टक्कर की गिनी जाती और इटली तुझे मेजनी के मुकाबले में रखती। लेकिन हा! हम भारतीय निर्बलात्माओ के पास है ही क्या, जिससे हम तेरी पूजा करे और तेरे नाम की पवित्रता को अनुभव करें! भारतीय युवक आँखों में आँसू भरे हुए नेत्रों सहित अपने हृदय को खोता हुआ लज्जा के साथ तेरी कीर्ति गा, नही, रो, नहीं, कह भर लेने के सिवा और कर ही क्या सकता है!

—गणेशशंकर विद्यार्थी।

## ग्रीष्म

ग्रीष्म तेरी मूर्खता पर ससार हँसता है, बुरा—भला कहकर मुँह पर थूकता है, घृणा भरी दृष्टि से तेरी ओर घूरता है, किन्तु न मालूम क्यो तेरी आँखें नहीं खुलती! तूने अकारण ही अपनी चढ़ती हुई जवानी के मद में मनमानी करने की ठानी है। ऋतुराज ने जिस सृष्टि-प्रकृति के सजाने में अपनी सारी शक्ति खर्च कर दी थी, सूखे हुए वृक्षों में कोमल किसलय प्रदान कर अपने उदार हृदय की बानगी संसार के आगे रखी थी, उजड़े हुए कानन में लोनी-सलोनी लताएँ, हरे-भरे वृक्ष, चहचहाती सब्जियाँ सजाकर, श्रेय प्राप्त किया था; सुंदर सुगधित सुमनो को सँवार कर सृष्टि को सजीव श्रीसम्पन्न किया था, तूने अपना पाँव द्वार पर रखते ही उसको उजाड़ना प्रारम्भ किया। कानन-कुञ्जों

को करील की भाँति पत्र-हीन कर दिया। लोनी-लताओं की लुनाई चाट खाई। हरी-भरी सब्जियों को अपने उष्ण-उसाँस से भस्मीभूत किया, विटपपुंजों पर नाग लू छिटकाकर उनकी पत्तियों को झुलसा दिया। वसुन्धरा की छाती पर अपने हृदय के उष्ण-उद्गार, ज्वालामुखी के अंगारों की भाँति ऐसे बरसाए कि पृथ्वी आग की आँच से भी अधिक उत्तप्त हो नाच उठी। खुले मैदान में तूने अपना नाच ऐसा दिखाया कि किसी की शक्ति नहीं कि उसको अपने निर्निमेष नयनों से क्षण भर भी देख सके। कानन-केसरी तुझसे हार खाकर, अपने अभेद्य किले की कोट-ओट से निकले और अठारह अंगुल की जिह्वा निकालते हुए वृक्षों की छाया में बैठ तेरे चरणों पर अपना सिर झुकाते हैं। हिरनी उनके आगे चौकड़ी भरती है, गौएँ पास ही चरती हैं, किन्तु तेरे अंकुश की मार से ये सब ऐसे विकल हैं कि किसी को कुछ कहने का साहस ही नहीं होता। दिन को दिवाकर देव की किरणों के साथ तू सृष्टि पर अपना अधिकार स्थापित कर भैरव-नाद से अपनी विजय-दुंदुभी उद्घोषित करता हुआ ताण्डव-नृत्य करने लगता है। तेरे अनय-अत्याचार से आर्तनाद करते हुए जीव विह्वल हो जाते हैं। तमाम जलाशयों के जल को तू अपनी गहरी उदर-दरी में समेट कर 'प्यास-प्यास' 'पानी-पानी' की आवाज से हाहाकार मचवा देता है। भगवान सुधाधर निशा-निविड में सुधा-किरण बरसाकर जीवों को जीवित करने की चेष्टा करते हैं सही, परन्तु तेरे अत्याचारों से उत्पीड़ित जीव अपनी रक्षा के लिए परमात्मा को पुकारते हैं। क्या तुझको दुनिया का परिचय नहीं मिला है! और यदि मिल गया है तो फिर ऐसा क्यों करता है? विश्वास रख यहाँ अत्याचारी होकर कोई अपना अमर-अधिकार प्रस्थापित नहीं कर सका है। तूने कितने अत्याचारियों की खोपड़ी पर कुत्तों को लेटते देखा होगा, कितनों के अधिकृत स्थानों पर गीदड़ों की दौड़ सुनी होगी, उनकी गगनचुम्बी अट्टालिकाओं का भग्न-खंडहर पाया होगा। अतीत की ओर आँख उठाकर भी यदि तू राह

पर नहीं आता है तो तेरे अंधकारमय भविष्य पर तरस आता है, तेरी विचार-बुद्धि पर चिंता छा जाती है। देख, क्षितिज की ओर आँखें उठा, तेरे अत्याचारों को चाट जानेवाला काला बादल, वह देख—नभ-मण्डल में बड़े वेग से बढ़ने लगा है, गम्भीर-गर्जन से तुझको डाटने लगा है, अपने विजय-धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ानेवाला है, कमर मे लटकती हुई विद्युत-तलवार म्यान से खीचकर झाड़ने लगा है, अब तेरी रक्षा की युक्ति नही दिखाई देती।

पावस के सदय हृदय में इतने जीवों की पुकार ने दया का स्रोत उमड़ा दिया। अभी-अभी वह मूसलाधार वारि बरसाकर जीवों के कष्टों का निवारण करेगा, तेरी कूटनीति पर कालिमा परिलेपन कर आगे बढ़ जायगा। यदि तुझको कुछ भी अपनी मान प्रतिष्ठा का ख्याल है तो कान उमेठकर अपनी भूल स्वीकार कर ले, अन्यथा लेने के देने पड़ेगे।

—जगदीश झा 'विमल'

## जन्म-भूमि

परस्पर विद्वेष जाति के लिए कलंक है वैसा ही स्वदेशानुराग जाति के लिए गौरव है। स्वजाति-विद्वेष हृदय को नीच से नीचतर बना देता है और स्वदेश का प्रेम हृदय को प्रशस्त और उन्नत करता है। मान्यवर महात्मा भूदेव मुखोपाध्याय ने अपनी पुस्तक मे किसी जगह लिखा है—'जो लोग अपने देश और अपनी जाति मे पूर्ण प्रेम रखते हैं, उन्हें मनुष्यों मे देवता समझना चाहिए।' भारत देश में भिन्न-भिन्न जाति के लोग हैं, भाषा भिन्न-भिन्न हैं, आचार-व्यवहार भी पृथक्-पृथक् हैं और जल-वायु भी सर्वत्र एक सा नही है। एक ही देश में इतनी जाति-विभिन्नता और व्यवहार-विभेद देखकर विशेष कौतूहल उत्पन्न होता है। अन्य जातियों मे इस प्रकार की विभिन्नता रहते भी भारतवासियों की अपेक्षा स्वदेशानुराग अधिक देखने में आता है। स्काटलैंड के रहनेवाले कोई अँगरेज वेल्स निवासी अँगरेज

को स्वजाति कहकर पुकारने में कुंठित नहीं होते, किंतु एक गुजराती एक बंगी को स्वजाति न कहेगा, यद्यपि दोनों हिंदूधर्मावलम्बी हैं और दोनो ही एक ही उपदेश-पथ के पथिक हैं। जब दोनों ही एक धर्म के उपासक हैं, देश के निवासी हैं और दोनो ही की मूल भाषा ( संस्कृत ) एक है, तब केवल प्रादेशिक भाषा के भेद से अथवा पहनावे-ओढावे की विभिन्नता से अपने को अलग-अलग मानना अनुचित है। जो लोग इस प्रकार की परस्पर भेद-बुद्धि रखते हैं वे जन्मभूमि का अर्थ नहीं समझते। यदि इसका ठीक-ठीक अर्थ उन्हे मालूम हो जाय तो ऐसी भेद-बुद्धि न रहने पाये।

ऐसा कभी न समझो कि जिस घर में, जिस गाँव में, अथवा जिस प्रदेश में तुमने जन्म ग्रहण किया है वही स्थान मात्र तुम्हारी जन्म-भूमि है। हम लोगों की जन्म-भूमि बहुत बड़ी है। तुम चारों ओर जो कुछ देख रहे हो, चारों ओर से जिनके बीच तुम घिरे हुए हो, धानो से हरे भरे खेत, नाना प्रकार के फलों से भरपूर बाग, बड़े विस्तृत मैदान, घने जगल, भाँति भाँति के सरोवर और नदियाँ, बड़े-बडे ऊँचे विंध्य-हिमालय आदि पर्वत, राजधानी की अनेकानेक ऊँची अटारियों से लेकर गाँव के छोटे छोटे तृणकुटीर तक अतुल धन-संपत्ति के अधिकारी राजा-महाराजा से लेकर दुर्भिक्ष पीडित अस्थिचर्मावशेष स्त्री-पुरुष पर्यंत, दो-एक सुखी जनों का आनदोत्सव और शत-सहस्र दुखियों का एक साथ आर्तनाद करना, थोडा-बहुत बनिज-व्यापार और अधिकतर खेती—ये सब तुम्हारी जन्मभूमि के अतर्गत हैं। हम लोगों के माँ बाप, भाई बहन, चचा भतीजे, मामा और भानजे आदि जितने परिवार के लोग हैं और जितने पडोसी हैं उन सबके साथ प्रेम, सद्भाव और मधुर भाषण का अवसर जो हमें प्राप्त होता है वह जन्म-भूमि की ही बदौलत। सुख की जितनी सामग्रियाँ हैं हम लोगों को जन्म-भूमि के द्वारा प्राप्त हो सकती हैं। अतएव हम लोग जिस पूज्य-दृष्टि से अपनी माता को देखते हैं उचित

है कि उसी दृष्टि से जन्मभूमि को भी देखें।

हम लोग सभी इसी भारतमाता की संतान हैं। संतानों के द्वारा पूजा पाने का जितना अधिकार माँ को है उतना ही जन्मभूमि को है। आज तक जितने पराक्रमी, महाशक्तिशाली सम्राट हुए हैं, जितने महान् वीर, धीर, धार्मिक पुरुषों ने संसार में जन्म लिया है और जो मनुष्य समाज में देवता की तरह पूज्य दृष्टि से देखे जा चुके हैं, क्या उनमें तुम ऐसे एक व्यक्ति का भी नाम बतला सकते हो जो मातृ-भक्त न रहे हो? तुम सैकड़ों पुराण के और हजारों इतिहास-ग्रन्थ के पन्ने उलटकर देखो। मातृभक्तिविहीन या स्वदेश-विद्रोही एक व्यक्ति का भी नाम कहीं न पाओगे। जो मातृभक्त नहीं हैं, जिन्हें जन्मभूमि से अनुराग नहीं है, वे कदापि बड़ाई नहीं पा सकते। वे मान्यमंडली में कभी परिगणित नहीं हो सकते।

द्वापर में धर्मप्रवीर युधिष्ठिर आदि और कलिकाल के ऐतिहासिक महावीर एलेक्जेंडर, महाप्राज्ञ पिटर, चार्ल्स, वाशिंग्टन, गारफील्ड, और भारतीय वीरवर शिवाजी, महात्मा राममोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, रामगोपाल घोष आदि कितने ही जननी और जन्म-भूमि की सेवा कर गये हैं। जो संसार में बड़े होते हैं वे माता और मातृ-भूमि की सेवा से कभी पराङ्मुख नहीं होते। अतएव मनुष्यमात्र का कर्तव्य है कि मातृसेवा के साथ ही साथ जहाँ तक हो सके जन्मभूमि-का भी उपकार करे।

—अनु० जनार्दन झा।

## स्वदेश-प्रेम

जन्म-भूमि ही की दूसरी संज्ञा स्वदेश है। आजकल कितने ही अनभिज्ञ स्वदेशानुराग का अर्थ बिगाड़कर देश के अनेक अनिष्ट साधन में प्रवृत्त हो रहे हैं। विदेशियों को गाली देने अथवा प्रचलित राजशासन के विरुद्ध कोई काम करने, किंवा सामाजिक नियम के

विरुद्ध आदोलन करने से स्वदेशानुराग प्रगट नहीं होता। जन्मभूमि के जो सच्चे हितैषी हैं वे ऐसा काम कभी नहीं करते। देश के अंश मे जो हितकर कार्य है उसका अनुष्ठान करना और जो हानिकारी है उसके प्रतिकार का नीति-सम्मत यत्न करना स्वदेश-प्रेमी पुरुषों का कर्तव्य है, किन्तु देशसुधार का कोई अच्छा प्रयत्न न कर केवल सुधार-सुधार चिल्लाने से कोई फल नही होता। जो यथार्थ में स्वदेशानुरागी और स्वजाति-हितैषी हैं वे स्वदेश के बाहरी सौन्दर्य बढ़ाने पर या सुनीति-सम्मत नियमावली पर या कठोर शासन-पद्धति पर लक्ष्य नहीं रखते। वे सामाजिक बाह्य नियमों पर भी मनोयोग न देकर सामाजिक मनुष्यों के हृदय की उन्नति और उनके चरित्रसुधार की ओर विशेष ध्यान देते हैं। देशवासी जब तक सत्यवादी, शिष्ठ और कर्तव्य-परायण न होंगे तब तक हजार कठोर नियमों का पालन करके तथा विशेष विद्या, बुद्धि और प्रचुर धनरत्न प्राप्त करके भी देश को उन्नत दशा में न ला सकेंगे। राजा के कठोर शासन से भी बढ़कर आत्म-शासन आवश्यक है। जो अपनी ही रक्षा करने से असमर्थ है वह दूसरे की रक्षा कहाँ तक कर सकता है ? दूसरे की उन्नति देखकर हृदय में विद्वेष-भाव का उदय होना अत्यंत गर्हित है। जो उच्च हृदय के मनुष्य हैं उनके हृदय मे ऐसा विद्वेष उत्पन्न नही होता। ये गुण का ग्रहण करते हैं, दोषों का त्याग करते हैं, और जिसमे उन्हे कल्याण की आशा होती है उसका आदर करते हैं और जिससे अमगल होने की सभावना देखते हैं, उससे विरत होते हैं। महान् पुरुषों का यही कर्तव्य है। विजातियों की निन्दा करने और उन लोगो के साथ अशिष्ट व्यवहार करने से हृदय इतना सकीर्ण हो जाता है कि मनुष्यत्व और महत्व दोनों एक साथ लुप्त हो जाते हैं और उदारता की सब बातें एक-एक करके हृदय से बाहर हो जाती हैं।

हृदय का भाव बातों से और कामों से प्रत्यक्ष होता है। अन्य

देश-वासी काम देखकर ही प्रशंसा या निंदा, श्रद्धा अथवा घृणा, करते हैं। जो लोग ईर्ष्यावश दूसरी उन्नत जाति के साथ सदय व्यवहार करने से मुँह छिपाते हैं और जिन्हें मारे अभिमान के अपने जाति गत दोष और अन्य जातियों के गुण नहीं सूझते वे स्वदेशानुरागी नहीं कहला सकते, बल्कि वे भारत-माता की अयोग्य सन्तान और स्वदेश-विद्वेषी कहलाने योग्य हैं।

यह एक स्वाभाविक धर्म है कि सभी देशवासी अपने-अपने देश का हित चाहते हैं। क्या धनी, क्या दरिद्र, क्या संसारी, क्या विरक्त, बालक, वृद्ध, युवा, सभी अपने-अपने देश को प्यार की दृष्टि से देखते हैं। जो जाति पराधीन है उसे भी अपने देश का अनुराग होता है। अनुराग की सार्थकता तभी है जब उचित रीति से अपने देश का उपकार किया जाय। जो लोग अयुक्त रीति से देश का उपकार करना चाहते हैं वे वास्तव में उपकार न करके देश का अपकार ही करते हैं। यदि सब लोग, नीति-नियमानुसार उपकार करना चाहें तो देश का बहुत कुछ कल्याण कर सकते हैं।

जो लोग अपने पड़ोसवालों का साहाय्य करते हैं, जो माँ-बाप अपनी संतति को सचरित्र और सुशिक्षित बनाते हैं, जो अध्यापक विद्यार्थियों को अपने पुत्र के समान जान विद्या-दान देते हैं और उन्हें स्वदेशानुराग का प्रकृत अर्थ और स्वजाति-प्रीति का महत्व बतलाते हैं तथा सुशिक्षा, सुनीति के द्वारा उनके चरित्र सुधारते हैं; जो बालक अपने गुरुजनों के आज्ञाकारी, सत्यभाषी और सच्चरित्र हैं और जो लोग जन्मभूमि का अमंगल अपना ही अमंगल समझते हैं, वे ही स्वदेश के सच्चे प्रिय पात्र हैं। —अनु० जनार्दन झा।

## सुवर्ण

सब धातुओं में सुवर्ण ही एक उत्कृष्ट धातु है। यह खनिज पदार्थ है। कभी-कभी वह गंगातट पर बालू में भी पाया जाता है। विशुद्ध

अवस्था में इसका वर्ण उज्वल हल्दी का सा पीला होता है तथा देखने में बड़ा ही सुन्दर मालूम होता है। सोना, रूपा, ताँबा, लोहा आदि आठ धातुओं में इसे प्रधान समझ कर संस्कृत में इसका नाम अष्टापद रक्खा गया है। हिंस्र जंतुओ मे जिस प्रकार सिंह है उसी प्रकार खनिज धातुओं में सुवर्ण है। जिस प्रकार सिंह गभीर स्वभाव का तथा कष्ट सहनेवाला होता है उसी प्रकार सुवर्ण भी सब धातुओ से भारी— पानी से साढे उन्नीस गुना भारी तथा भार को सहन करनेवाला होता है।

प्राचीन और नवीन महाद्वीप में सुवर्ण की कई खानें निकली हैं। पृथ्वी के भीतर कहाँ पर कौन सा पदार्थ हैं यह निर्णय करना बड़ा ही कठिन है। मनुष्यों के अविश्रान्त परिश्रम से पेरू, चीली, मेक्सिको, कोलम्बिया और ब्राजिल आदि देशों में सुवर्ण की कई खाने खोदी गई हैं। केलिफोर्निया और आस्ट्रेलिया में सोने की जितनी खानें पायी जाती हैं उतनी पृथ्वी के किसी भाग में नही मिलतीं। भारत और अफ्रिका में नदी के किनारे बालू मे भी जहाँ-तहाँ सोने की कणिका पायी जाती हैं।

नम्रता साधुओं का स्वाभाविक गुण है। क्या शोक, क्या मोह सभी अवस्था में उनकी स्वाभाविक गुरुता नहीं जाती। उसी प्रकार सुवर्ण भी आग जलाने से बिंदुमात्र भी हलका नहीं होता, और इसका वर्ण भी नहीं बदलता। बल्कि विशुद्ध सुवर्ण और भी कोमल होता है तथा इसे जिधर जैसे झुकाओ झुक जाता है। इसीलिए जब सुवर्ण का भूषण बनाया जाता है तब उसमे ताँबा मिला दिया जाता है। ताँबा मिलाने से सोने में कठिनता आ जाती है। ताँबा मिले हुए सोने को लोग गिन्नी का सोना कहते हैं।

सुवर्ण बड़ी उपयोगी धातु है। इससे गिन्नी, मोहर तथा अनेक प्रकार के अलकार बनाए जाते हैं। सोने का बहुत पतला तार रूपा अथवा रेशम में देने से जरी बन जाती है। यही जरी टोपी और

दूसरे कपड़ों के हाशिए पर चढ़ाने से वह चीज जरीदार कहलाने लगती है। भारतीय वैद्य सुवर्ण से कई तरह की दवायें भी बनाते हैं।

रसायन विद्या की उन्नति होने से सुवर्ण की और भी उपकारिता मालूम होने लग गयी है। रूपा, ताँबा, पीतल आदि धातुओं के पात्रो अथवा अलकारो पर सोने का पानी चढा देने से वह चीज ठीक सोने की सी बन जाती है।

— हरनाथ द्विवेदी।

## परोपकार

जिन सद्गुणों के कारण अन्य-अन्य जीवों की अपेक्षा मनुष्य श्रेष्ठ समझा जाता है, उनमे परोपकार का स्थान पहला है, इसमें सदेह नहीं। जिस मनुष्य में यह गुण वर्तमान नहीं रहता, समझना चाहिए उसका पशुत्व अभी दूर नहीं हुआ; अवश्य ही यह मनुष्य के रूप में पशु है। स्वार्थ के लिए मरना तो पशु भी जानता है, इसलिए स्वार्थ-त्याग मनुष्य का परम गुण समझा जाता है। जिसमें जितना स्वार्थ-त्याग रहता है वह उतना ही बड़ा आदमी है। यह स्वार्थ-त्याग परोपकार का प्रधान अंग है। जहाँ-तहाँ शास्त्र-पुराणों में परोपकार की प्रशसा पाई जाती है। वास्तव मे परोपकार समस्त पुण्यों की जड है। यह मनुष्य के हृदय को अनेक सद्गुणों से भर देता है। यह मनुष्य के अन्तःकरण को पवित्रता, सहनशीलता, दया, भक्ति, प्रेम और करुणा की लीला-भूमि बना देता है और हिंसा, कुटिलता, क्रूरता और क्रोध को निकाल कर फेंक देता है। इससे प्रत्यक्ष प्रकट होता है कि परोपकार सकल सद्गुणों की खान है। एक परोपकार का व्रत ग्रहण करने ही से मनुष्य में कितने ही अच्छे-अच्छे गुण आ जाते हैं।

भगवान् ने प्रत्येक मनुष्य को एक दूसरे की सहायता करने के लिए बनाया है। उनका अभिप्राय यही है कि जीवगण जगत् का कल्याण करें,

वह अभिप्राय कैसे सिद्ध होगा? कैसे जगत का कल्याण होगा? इन प्रश्नों का उत्तर केवल यही है कि सब प्रकार से परोपकार करना, दूसरे की भलाई के लिए सदा तैयार रहना। जो परोपकारी होता है वह सदा दूसरे के दुःख से दुःखी रहता है और प्राण-पण से चेष्टा करता है कि कैसे उस दुखिये का दुःख दूर होगा। वास्तव में यही लोग जगत का कल्याण करते और उन जगत्पिता जगदीश्वर के अभिप्राय को पूरा करते हैं। पुराणों में ऐसे अनेक महात्माओं की कथायें लिखी हुई है जिन्होंने जगत का बड़ा उपकार किया है; दूसरे की विपद् छुड़ाने के लिए जिन्होंने प्राण तक दे डाले हैं। उनका चरित्र पढ़ने पर आश्चर्य और विस्मय में डूबना पड़ता है और उनके प्रति बड़ी श्रद्धा और भक्ति हृदय में उपजती है। दधीचि मुनि का ही उदाहरण लीजिए। जिस समय सुरपति इन्द्र उनकी हड्डी लेने के लिए उनके पास जाकर भी अपने मन की बात उनसे नहीं कह सके, उस समय कुछ देर ध्यानावस्थित होकर मुनि ने कहा—'हे पुरन्दर! आज हमारा जीवन पवित्र हो गया; आज का दिन हमारे लिए बड़े ही सौभाग्य का है कि मेरी यह पुरानी हड्डी देवताओं की प्राणरक्षा करने को समर्थ होगी।' अहा! कैसा आत्मन्याय है! कैसी उदारता, कैसी अतुलनीय लोक-हितैषिता! कैसा परोपकार और जीवों के दुःख के साथ कैसी सहानुभूति!!! फिर दधीचि मुनि ने कहा—"महाराज! अब इस सुख-लाभ में देर क्यों हो रही है?" अहा! परोपकार में मरने के लिए मुनि का कैसा आग्रह है! यह सुनकर निश्चय ही मनुष्य के मन में श्रद्धा और भक्ति उपजती है। मुनि के शिष्यों ने जब यह हाल देखा तब व्याकुल होकर रोने लगे। ऐसे परम महात्मा मुनि के सहवास का आनन्द वे लोग फिर कभी नहीं पा सकेंगे यह चिंता उनके हृदय को बार-बार सालने लगी। अंतर्यामी दधीचि ने तब जो कहा था वह बात प्रत्येक मनुष्य के हृदय-पट पर सदा अमिट अक्षरों में लिखी रहनी चाहिए—

वत्स ! तुम लोग क्यों रो रहे हो ? इस जगत् मे बतलाओ तो सही, दूसरे के लिए कब कौन मरता है ? यह सौभाग्य किसी बिरले ही के भाग्य मे बदा होता है। बिना प्राण दिये परोपकार कैसे किया जा सकता है ? शिष्य मण्डली ! तुम लोग शोक छोड़ो, यह नश्वर देह परोपकार ही के लिए बनायी गई है। जिसकी देह परोपकार में नहीं गयी, निश्चय जानो, उसकी यह नरदेह व्यर्थ हो गई।

धन्य दधीचि ! तुम धन्य हो, धन्य तुम्हारा योग-साधन, धन्य तुम्हारी परोपकारिता ! वास्तव मे तुम्हीं ने मनुष्य का मुख्य कर्तव्य समझा था, तुमने प्रत्यक्ष ही दिखला दिया कि परोपकार कैसी मूल्यवान् वस्तु है। वस्तुतः परोपकारी का हृदय उच्च, चरित्र महत् और कीर्ति चिरस्थायिनी होती है। आज कितने ही युग-युगान्तर बीत गये हैं, इतने युगो मे कितने ही प्रकार के परिवर्तन हो चुके हैं तो भी अब तक दूसरों के लिए प्राण देनेवालों के नाम बड़े आदर, भक्ति और श्रद्धा के साथ लिए जाते हैं और सदा इसी प्रकार लिये जायँगे।

—सत्यनारायण पाडेय

## स्वार्थ

इस गुण को हमारे ऋषियो ने बुरा कहा है, पर हमारी समझ में इस विषय में उनका कहना अप्रमाण है क्योंकि जो जिस बात को जानता ही नहीं उसके वचनों का क्या प्रमाण ? वन मे रहे, कंद-मूल खाए, भोजपत्र पहिने, पोथियाँ उलटाते व राम-राम श्याम-श्याम करते जन्म बिताया। न कभी कोई धन्धा किया न किसी की नौकरी की, न किसी विदेशी से काम पडा, फिर उन्हें स्वार्थ का मजा क्या मालूम था ? यदि कहिए नवीन ऋषियो में महाराजा भर्तृहरि ने भी तो 'तेमी मानुस राक्षसः परहित स्वार्थाय विघ्नन्तिये' लिखा है तो हम कहेंगे उन्होंने पुराने लोगों की हाँ में हाँ मिलाई है, या जान-बूझ के धोखा दिया है। नहीं तो स्वार्थ कोई बुरी वस्तु नहीं है। सदा से सब उसी को सेवन करते आये

हैं। हिंदुओं का राज्य था तब ब्राह्मण चाहे जो करें अदण्ड्य थे, क्योंकि राजमंत्री तथा कवि यही होते थे। इससे अपने को हर प्रकार स्वतंत्र बना रक्खा था। यह स्वार्थ न था तो क्या था? चाहे जितना सोचिए अंत में यही कहिएगा। फिर हम क्या बुरा कहते हैं कि स्वार्थ में बुराई कोई नहीं, सभी सदा से करते आए हैं। रामायण में देवताओं का चरित्र पढ़िए। रामचंद्र, लक्ष्मण, सीता को चौदह बरस वन वन फिराया! भरतजी को अयोध्या में रख के उपवास कराया। दशरथ जी के प्राण लिए। क्यों? स्वार्थ के अनुरोध से। गोस्वामी जी ने खोज के कह दिया है—'आये देव सदा स्वारथी'। जब देवताओं का यह दशा है तब मनुष्य स्वार्थपरता से कैसे पृथक् रह सकता है? सच पूछो तो जो लोग स्वार्थ की निंदा करते हैं वे स्वार्थ-साधन के लिए ही दूसरों को भकुआ बनाते हैं! दूसरों को दया, धर्म, सत्य, न्याय, निस्वार्थ इत्यादि के भ्रमजाल में न फँसावे तो अवसर पर अपनी टट्टी कैसे जमावें? इस से हमें निश्चय हो गया है कि चतुर, बुद्धिमान, नीतिज्ञ पुरुषों के लिए स्वार्थ कभी किसी दशा में त्याज्य नहीं है! जो लोग दूसरों को पर-स्वार्थ सिखाते हैं वे तो खैर अपना काम चलाने के लिए लोगों को फुसलाते हैं, पर जो उनकी बातों मे फँसकर परस्वार्थी बनने का उद्योग करते हैं वे नेचर के नियम को तोड़ते हैं, अथवा अपने सुख सम्पति, सौभाग्य से मुँह मोड़ते हैं! नहीं तो बड़े-बड़ों मे निस्वार्थी हैं कौन? क्या देवता लोग राक्षसों का भला चाहते हैं? क्या महात्मा लोग नास्तिकों की खैर मनाते हैं? क्या स्वयम् परमेश्वर प्रेमिकों से अप्रसन्न रहे? फिर परस्वार्थ कहाँ की बलाय हैं? सब स्वार्थ-तत्पर हैं! हाँ, अपने-अपने कुटुम्ब, अपनी जाति अपने देश की जूठन-जाठन थोड़ी सी इतरों को भी दे देना चाहिए जिसमें यश हो। परस्वार्थ-ऐसी मजेदार चीज को बुरा समझ के उससे दूर रहना निरी मूर्खता है! जो लोग बड़े त्यागी वैरागी भक्त होते हैं वे तो स्वार्थ को छोड़ते ही नहीं! वे दुनियाँ को छोड़ के स्वर्ग के महासुखस्वरूप सच्चिदानंद को चाहते हैं; अतः बड़े भारी स्वार्थ

साधक हैं। फिर गृहस्थी करके दुनियाँ में रहके निस्वार्थ या परमार्थ पर मरना कहाँ की बुद्धि है! स्वार्थ न हो तो संसार की स्थिति ही न हो। बड़े बड़े परिश्रम करके जिन उत्तम बातों को लोग सूचित करें वह दूसरे को सौंप दे, दूसरा तीसरे को सौंप दे। इसी तरह होते-होते थोड़े दिन में किसी के पास कुछ रही न जाय। हाँ, बहुत ही न्यून स्वार्थ बुरा है। 'आप जियते जग जिये दुसरा मरे न हानि'—का आचरण निंदित है। इससे अधिक से अधिक स्वार्थ बढ़ाते रहना चाहिए। अपने देश के स्वार्थ के लिए दुनिया भर की कैसी ही हानि हो, कैसा ही कर्त्तव्या-कर्त्तव्य होकर उठाना चाहिए, क्योंकि इसके बिना निर्वाह नही है। परस्वार्थी मरने पर चाहे बैकुंठ जाते हों पर दुनियाँ में सदा दुखी ही रहते हैं और हमारे महामत्र को माननेवाले दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति करते हैं। भारत और इङ्गलैंड इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। फिर भी न जाने कब हमारे देशी भाई स्वार्थ की महिमा जानेंगे ! हम प्रतिज्ञा-पूर्वक कहते हैं जो कोई स्वार्थ-साधन के लिए निंदा-स्तुति पाप-पुण्यादि का विचार न करेगा वह थोड़े ही दिन मे सब प्रकार सपन्न हो जायगा और अत में किसी को उसकी निंदा करने का साहस न होगा। महात्मा कह गए हैं—समरथ को नहिं दोस गुसाईं। स्वार्थ-साधन में दक्ष होने से बेईमान मनुष्य चतुर कहलाता है, हत्यारा वीर कहलाता है, परनिंदक स्पष्टवक्ता कहलाता है। जिसपर परमात्मा की दया होती है वही स्वार्थ-साधन पर तत्पर होता है। इससे हे भाइयों, ब्राह्मण के वाक्य को वेद की रिचा समझ के दिन-रात सोते-जागते स्वार्थ-स्वार्थ रटा करो। इसी में भला होगा। नहीं सदा यों ही अवनति होती रहेगी जैसी महाभारत के समय से होती आई है। —प्रतापनारायण मिश्र।

## समय का सदुपयोग

यदि संसार में कोई ऐसा पदार्थ है जो मनुष्य के हिस्से में बहुत ही थोड़ा आया है और जिसका सबसे अधिक अपव्यय और नाश होता है

तो वह समय ही है। और बातों में तो हम लोग बहुत कुछ सचेत रहते हैं, पर समय को बड़ी बुरी तरह नष्ट करते हैं। ऐसे लोग बहुत ही कम हैं जो इस बात का ध्यान रखते हों कि उनका कितना समय आवश्यक और उपयोगी कामों में लगता है और कितना हँसी-दिल्लगी, सैर-तमाशे और दूसरे व्यर्थ के कामों में नष्ट होता है। यदि आप कभी अपने समय के सद् और असद् उपयोग का हिसाब लगावें तो लज्जित और दुःखी होने के सिवा आपसे कुछ भी न बन पड़ेगा।

लोग कहा करते हैं दुनियाँ एक सराय है, जीवन पानी का बुलबुला या स्वप्न है, आदमी की जिंदगी का कोई ठिकाना नहीं आदि। अधिकाश कवियों ने भी जीवन की अल्पता के ही गीत गाये हैं और प्रकारातर से समय का महत्त्व ही सिद्ध किया है। पर तो भी लोगों को ज्ञान नहीं होता, वे समय का कोई मूल्य नहीं समझते।

मनुष्य ज्यों ही समय की उपयोगिता समझने लगता है, त्यों ही उसमें महत्ता, योग्यता आदि अनेक गुण आने लगते हैं। मनुष्य मे चाहे कितने ही गुण क्यों न हों, पर जब तक वह समय की कदर करना न सीखे, उपस्थित अवसरों का उपयोग न करे तब तक उसे कोई लाभ नहीं हो सकता। यदि सच पूछिए तो समय का दुरुपयोग करनेवालों को कभी अच्छे अवसर मिल ही नहीं सकते। जिस समय को मनुष्य व्यर्थ गँवाता है, उसी मे प्रयत्न करके वह बहुत सफलता प्राप्त कर सकता है। जो मनुष्य अपना कर्तव्य-पालन करना चाहता हो, जो युवक जीवन में सफलता प्राप्त करने का इच्छुक हो, उसे सबसे पहले यही शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। अपनी योग्यता, शक्ति और साधनों की शिकायत छोड़कर उसे यह समझना चाहिए कि समय ही मेरी "संपत्ति" है और उसी से लाभ उठाने के लिए उसे प्रयत्नशील होना चाहिए।

समय का ठीक-ठीक उपयोग करने के लिए हमें उसका उचित विभाग करना चाहिए। उसपर पूरा-पूरा अधिकार रखने के लिए कुछ निश्चित नियमों का बना लेना आवश्यक है। कोई-कोई आदमी उतना

ही काम केवल एक दिन में कर लेते हैं जितना कि और लोग एक सप्ताह में भी नही कर पाते। विचार करने से ज्ञात होगा कि इस भेद का कारण समय का सदुपयोग ही है, उस मनुष्य की असाधारण योग्यता-बुद्धि नही। काम-काजी आदमी के मुँह से आप फुरसत का नाम भी न सुनेंगे क्योंकि उसे फुरसत है ही नहीं। फुरसत केवल निकम्मे और सुस्त आदमियों को ही होती है; और वह भी काम करने के लिए नहीं बल्कि गप्पे लड़ाने, इधर-उधर घूमने और सैर-तमाशे आदि में जाने के लिए। उन्हें इतनी अधिक फुरसत होती है कि काम करने का अवसर ही नहीं मिलता। फुरसत में आप ही आप बढ़ जाने की इतनी अधिक शक्ति है कि यदि उसे दबाने का प्रयत्न न किया जाय तो मनुष्य का सारा जीवन ही उसकी नजर हो जाय। जिस मनुष्य को इस प्रकार की बहुत सी फुरसत हो उसके जीवन को बड़ा ही दुःखपूर्ण समझना चाहिए। ऐसे मनुष्यों को समय के मूल्य और सदुपयोग की आवश्यकता कुछ भी ज्ञात नहीं होती।

संसार का सबसे अधिक उपकार उन्हीं लोगों द्वारा हुआ है जिन्होंने कभी अपना एक क्षण भी व्यर्थ नहीं गँवाया। ऐसे ही लोग बड़े-बड़े कवि महात्मा, दार्शनिक और आविष्कर्ता हुए हैं। सर्व-साधारण जिस समय का कुछ भी ध्यान नहीं रखते, उसी समय में उन्होंने बड़े-बड़े काम किए हैं, उन्होंने एक क्षण भी व्यर्थ नहीं जाने दिया। एक महात्मा का मत है—हमे उत्तम अवसरों के आसरे न बैठना चाहिए। और यही सफलता प्राप्त करने का बहुत बड़ा सिद्धान्त है। —रामचद्र वर्मा।

## समीर और सुमन

समीर—( सुमन से ) तुम सौरभ के बोझ से दबे जाते हो। लाओ, मैं तुम्हारा भार-संवहन करूँ।

सुमन—( सिर हिलाकर ) नहीं, मुझे इससे नति मिलती है और नति का मुझे गर्व है।

समीर—( सुमन के कपोल पर एक मीठी थपकी लगाते हुए ) नति

का गर्व—बड़ी विचित्र बात है। हाँ, तू चार दिन के लिए फूलता है, इसी से तेरी बुद्धि ऐसी विचित्र है।

सुमन—और तू दूसरे का भार-संवहन करने में मतवाला हुआ नहीं डोलता ?

समीर—क्यों ? दूसरे के भार वहन करने का गर्व स्वाभाविक ही है।

सुमन—( और भी खिलकर ) किंतु विचार तो करो, यदि तुम दूसरे के गौरव से झूम सकते हो तो मैं अपने ही मोद में भी न झूमूँ ?

समीर—तो क्या नति गौरव का जन्म देने के लिए होती है ?

सुमन—नही, गौरव ही से नति का उद्भव है।

समीर—और तुम मुझे उसी से वञ्चित रखना चाहते हो ?

सुमन—ध्यान रक्खो कि पराई निधि अपने पर ओढ़कर यदि तुम बड़े बनना चाहोगे तो तुम्हारी गति में मंदता अवश्य आ जायगी और तो कुछ न होगा

समीर—मेरी चाहे जो भी कदर्थना हो, पर मै तुम्हारा सौरभ तो निखिल विश्व में फैलाऊँगा।

सुमन—नहीं, मेरा जन्म इसीलिए होता है कि मै चार दिन इसी बृत पर झूलूँ अपने सौरभ से मस्त होकर यही झूमूँ और फिर चुप-चाप अपनी माता धरित्री की गोद मे चिर-विश्राम ले लूँ। मेरा आमोद तुम मुझसे हरण करते हो तो वह बेचारा मेरी खोज में दर दर मारा फिरता है और अंत को शतधा विकीर्ण हो हाय-हाय करता हुआ तुम्हारे सग हवा हो जाता है। मेरा आमोद मेरे हृदय से न बिलगाओ।

समीर—अच्छा, तो मै यहाँ से चला जाऊँ ?

सुमन—हाँ, तुम मेरी चार दिन की शाति भग न करो।

तब वह पवन द्रुत गति से चल पड़ा कि उस पुष्प की पंखुड़ियाँ बिखरकर, क्षणभर के लिए अंतरिक्ष मे लहराती हुई धराशायी हो गईं।

—रायकृष्णदास।

# पं० जवाहरलाल नेहरू

इस शताब्दी के प्रथम चतुर्थांश में भारतमाता की स्वतन्त्रता के लिए जिन व्यक्तियों ने महान् त्याग और तप किया था, उनमें पंडित जवाहरलाल नेहरू का नाम कदाचित् अग्रगण्य है। इनका जन्म इलाहाबाद मे सन् १८८६ की १४ वीं नवम्बर को हुआ। इनके पिता पं० मोतीलाल नेहरू ने देश की स्वतंत्रता के युद्ध में बड़े उत्साह से भाग लिया था। वे हाइकोर्ट के प्रतिष्ठित वकील थे और सारे राजसी ठाठ उन्हें सुलभ थे। परंतु उन्होंने देश के लिए सब कुछ ठुकरा दिया। इनकी पत्नी श्रीमती स्वरूप रानी ने सदैव पति की इच्छानुसार कार्य किया। जब तक पति वकालत करते रहे, उन्होंने रानी की तरह ही ऐश्वर्य का सुख भोगा, जिस दिन पति ने देश के लिए ऐश्वर्य को त्याग दिया, उसी दिन से उन्होंने भी तपस्विनी का जीवन बिताना आरम्भ कर दिया। ऐसे स्त्री-पुरुषों का चरित्र सभी के लिए अनुकरणीय है।

पंडित जवाहरलाल योग्य पिता के योग्य पुत्र हैं। इनकी प्रारंभिक शिक्षा घर पर हुई। पहले अँगरेज अध्यापिका ने और बाद मे दो अध्यापकों ने उन्हें शिक्षा दी। जब ये पंद्रह वर्ष के थे, तब पंडित मोतीलाल जी ने योरप की यात्रा की। इँगलिस्तान में उन्होंने अपने योग्य पुत्र को 'हीरो आव दि हिल' नामक शिक्षालय में भरती कराया। पश्चात्, इन्होंने ट्रिनिटी कालेज में शिक्षा पाई। यहाँ इनकी योग्यता से प्रभावित होकर केम्ब्रिज विश्वविद्यालय के अधिकारियों ने बिना परीक्षा लिए ही इन्हें एम० ए० की उपाधि प्रदान की। उन्होंने स्पष्ट कहा कि ऐसे प्रतिभासंपन्न छात्र अधिक नहीं होते।

तेइस वर्ष की अवस्था में इँगलिस्तान से वे बैरिस्टर होकर स्वदेश लौटे। पिता की इच्छा थी कि पुत्र बैरिस्ट्री करे। पंडित जवाहरलाल ने उनकी आज्ञा मान ली। पिता जी की धाक चारों ओर थी ही, पुत्र ने भी अच्छा नाम कमाया। एक सुशील और आदर्श युवती से उनका

विवाह भी हो गया। जीवन बड़े सुख से बीत रहा था।

तभी देश में स्वतन्त्रता-प्रप्ति के लिए आदोलन हुआ। १९१९ की बात है। पंजाब के अँगरेज गवर्नर ने जलियाँवाला बाग में निहत्थी जनता पर गोलियाँ चलवा दीं। उधर महात्मा गाँधी सत्याग्रह की घोषणा कर रहे थे। प० जवाहरलाल भारतमाता की पुकार अनसुनी न कर सके। पंजाब जाकर उन्होंने जनता को सात्वना दी; अत्याचार सहने की शक्ति अपने मे उत्पन्न करने को उत्साहित किया। लौटने पर उन्होंने बैरिस्ट्री छोड़कर देशवासियों की सेवा का व्रत लिया। शीघ्र ही वे प्रातीय काग्रेस समिति के प्रधान मंत्री चुन लिए गए। देश के नवयुवकों का सगठन करने के लिए उन्होंने 'इडिपेंडेंट' नामक पत्र निकला और शिक्षित भारतवासियों को स्वदेशोद्धार के लिए कटिबद्ध हो जाने का सदेश दिया।

विदेशी सरकार का विरोध करने के फलस्वरूप उन्हे कई बार जेल भी जाना पड़ा। सुख के बीच मे पले हुए जवाहरलाल ऐसी कठिनाइयाँ झेल सकेंगे या नही, बहुतों को इस बात का सदेह था। परतु वे इन कसौटियो पर खूब खरे उतरे और कई बार जेल जाने पर भी जरा विचलित न हुए।

अँगरेजों की राजनीतिक चालें समझने के लिए उन्होने कुछ समय पश्चात् योरप की यात्रा की। बेलजियम मे १९२७ में साम्राज्यों का विरोध करने के उद्देश्य से एक सभा हो रही थी। नेहरू जी उसमें भारतीय कॉग्रेस के प्रतिनिधि बनकर सम्मिलित हुए। इस अधिवेशन में विदेशी राजनीतिज्ञों ने नेहरू जी को अपनो कार्यकारिणी का सदस्य चुन लिया। इस प्रकार उन्हें संसार की राजनीति का अच्छा ज्ञाता स्वीकार कर लिया गया।

रूस होते हुए भारत लौटने पर वे मद्रास काग्रेस के प्रधान मत्री और लाहौर कॉग्रेस के राष्ट्रपति चुने गए। पिछली बार उन्होंने भारत के पूर्ण स्वराज्य की बात शुरू की। राष्ट्रपति बनते ही उन्होंने यह

यह प्रस्ताव पास करा लिया और सरकार के सामने रखा गया। साम्राज्य-वाद के प्रचारक विदेशी शासकों ने इस माँग पर ध्यान न दिया। विवश होकर गाँधी जी ने नमक सत्याग्रह चलाया जिससे चिढ़कर सरकार ने सब नेताओं के साथ नेहरू जी को भी कृष्णमंदिर भेज दिया।

इस समय के बाद ईश्वर ने पंडित जवाहरलाल की बड़ी कड़ी परीक्षा ली। जेल से वे छूटे ही थे कि उनके पूज्य पिता जी का स्वर्गवास हो गया। फिर जेल गए तो पत्नी की भयानक बीमारी का समाचार मिला।

उस समय श्रीमती कमला जी स्विटजरलैंड में थीं। नेहरू जी शीघ्र ही वहाँ पहुँचे; परतु वे रोग से मुक्त न हो सकीं और नेहरू जी को उन का वियोग सहना ही पड़ा। स्वदेश लौटने पर वे ठीक तरह से स्वस्थ हो भी न पाए थे कि आदर्शमाता स्वरूपरानी भी उन्हे छोड़ गई। पंडित जवाहरलाल इन सब दैवी आपत्तियों को सहन करके भी अपने ध्येय की पूर्ति के लिए निरंतर आगे बढ़ते रहे। इससे उनकी सहनशीलता का अद्भुत परिचय मिलता है।

स्वतत्रता-प्राप्ति के लिए संग्राम चलता रहा। ज्यों ज्यों विदेशियो के अत्याचार बढ़े त्यों त्यों उनका विरोध बढ़ा और काँग्रेस की शक्ति भी बढ़ती गई। कॉग्रेस को शक्तिशाली बनाने के लिए पडित जवाहरलाल जी की ओजपूर्ण वक्तृताओं ने बड़ा काम किया। अपने उग्र विचारों के कारण उन्हें कई बार सरकार का स्वागत-सत्कार भी स्वीकार करना पड़ा। अंत में अँगरेजों से भारत छोड़ देने की माँग की गई और विवश होकर उन्हें यह स्वीकार करना पडा। भारत से विदेशी गए, पराधीनता की बेड़ियाँ कटीं, माता स्वतन्त्र हुई। इस महान् और गौरव-पूर्ण कार्य का श्रेय देश की जिन विभूतियों को है उनमे पंडित जवाहरलाल का स्थान बहुत ऊँचा है। विदेशियों के भारत से जाने पर वे देश के प्रधान मन्त्री बने और बडी योग्यता से इस दायित्व का निर्वाह कर रहे हैं। नेहरू जी गाँधी जी के राजनीतिक उत्तराधिकारी हैं—उनपर हमें गर्व

है। हमारी हार्दिक कामना है कि वे दीर्घकाल तक स्वस्थ और प्रसन्न रहकर देखें कि उनके देश के होनहार उन्ही का अनुकरण करने मे जीवन की सार्थकता समझते हैं।

## अहिंसा

सभी सभ्य हिंसा को बुरा समझते हैं। जो माँस खाते हैं वे भी प्राय: हिंसा से घृणा करते हैं, पर उनके माँस खाने की रुचि इतनी प्रबल होती है कि दूसरे की की हुई हिंसा को वे हिंसा नहीं समझते। कोई मनुष्य यह नहीं चाहता है कि हमें किसी प्रकार कष्ट हो, फिर दूसरे की हिंसा पर क्यों उतारू होता है; इसका कारण स्वार्थ अथवा अभ्यास है। मनुष्य स्वार्थ अथवा अभ्यास से बुरे से बुरे काम करते हैं जिनका नाम तक हम किसी सभ्य समाज में नहीं ले सकते।

सर्व-साधारण हिंसा का अर्थ जान से मारना समझते हैं, पर सूक्ष्म अर्थ है किसी भी प्रकार जीव को कष्ट पहुँचाना। मार डालना पूरी हिंसा इसलिए कहा जाता है कि इससे बढकर जीव को किसी दूसरे प्रकार से दु:ख नही होता। यदि कोई मनुष्य किसी की जान न मारे पर ऐसा उद्योग करे कि उसकी आत्मा को अधिक कष्ट पहुँचे जिससे थोड़े दिनों के बाद अथवा कुछ महीनों के बाद मर जाय तो वह कानून की दृष्टि में निरपराध हो सकता है, ईश्वर की दृष्टि में वह घातक है। कानून बनाने-वाले भी इस हिंसा को जानते हैं, अतएव पशुओं के साथ निर्दयता का व्यवहार करने वाले को बंधन से जकड देते हैं। संभव है कि निर्दय व्यवहार से पशुओं का जीवन कम हो जाय! ऐसी अवस्था में निर्दयी भी भारी हिंसक है। उसे समयानुसार दंड मिलना उचित है। हिंदू तो हिंसको का इतना विचार करते हैं कि मास को पकाने, परोसने तथा खरीदने वालों को भी घातक मानते हैं, मारनेवाले की बात ही क्या है! कहते हैं कि जो मनुष्य जिस जीव की हिसा नहीं करता उसे उस जीव से कोई भय नहीं रहता। अग्रवाले साँप नहीं मारते, अतएव

किसी अग्रवाले को साँप के काटने से मरते हुए कभी नहीं देखते हैं। योगशास्त्र में भी लिखा हुआ है कि जो जीव की हिंसा नहीं करता उसका प्रभाव इतना बढ जाता है कि जीव परस्पर बैर छोड़ देते हैं। एक के प्रभाव से सभी अहिंसक बन जाते हैं।

थोड़े दिनों की बात है कि अमेरिका में एक भारी विद्वान् मि० एमर्सन हो गए हैं। उनके साथ भिड़ें आदि खेलती थीं, बदन में लिपटी रहती थी और कभी नहीं काटती थी। वे कहते थे कि इन्हे मैंने कभी दुःख नही दिया। ये भी मुझे दुःख नहीं देंगे। सभ्य देश में अपराधियों को प्राण दंड दिया जाता है। उस समय यही ध्यान रक्खा जाता है कि अपराधी को अधिक कष्ट न हो। बहुत से विज्ञानी कहते हैं कि मरने के समय कुछ कष्ट नही होता। बहुत से उपाय हैं जिनसे कोई किसी को मारे तो मरनेवाले को तनिक कष्ट नहीं होगा। ऐसी स्थिति में हिंसा बुरी कैसे कहलावेगी?

यद्यपि यह विचार सर्व-सम्मत नहीं है तथापि मान लें तो यह आदर-भाजन नहीं हो सकता: क्योंकि सभी हिंसकों का ऐसा विचार होना कठिन तथा दुर्लभ है कि मरनेवाले को हिंसा से कष्ट नहीं पहुँचे। हिंसा को बुरी कहने वाले इसको एक दूसरे कारण से भी खराब समझते हैं। वह यह कि संसार में जितने जीव हैं वे कुछ सीखने आये हैं। जो हिंसा के द्वारा अपने नियत समय के पहले मार दिया जाता है, उसका व्यावहारिक ज्ञान पूरा नहीं हुआ। उसकी आत्मा उन्नत नहीं हुई। उसका जन्म सुफल नहीं हुआ। सृष्टिकर्त्ता का परिश्रम नष्ट हो गया। इसलिए हिंसा बुरी और अहिंसा सबसे अच्छी है। कोई मनुष्य कभी एक चींटी को भी बचाता है तो उसे हर्ष होता है।

एक दिन अमेरिका के प्रेसिडेंट दर्बार को जा रहे थे। राह में एक बूढा सुअर कीच में फँसा देखा। वह निकल नहीं सकता था। उसके प्राण निकलने की तैयारी कर रहे थे। उन्होंने अपने हाथ से उसे निकाला। वह बच गया। उनके कपड़े में कीच लग गई। वे उसी प्रकार से दर्बार में आए। उनके चेहरे से अलौकिक ज्योति छिटक रही

थी अथवा भीतर दौड़ते हुए रक्तों की बूँदों से प्रसन्नता निकल निकल-कर प्रतिक्षण बाहर दिखाई पड़ती थी।

दर्बारियों ने हाथ जोड़कर पूछा कि आज क्या हुआ ? वे बोले आज मैंने सृष्टिकर्त्ता की सेवा की है, एक जीव की रक्षा मेरे द्वारा हुई है। इससे मैं आज इतना प्रसन्न हूँ कि उसका वर्णन नहीं हो सकता। जो लोग दूसरे की जान लेने पर तैयार हैं अथवा जो दूसरों के प्राण बचाते हैं, दोनों श्रेणी के लोग इस पर तनिक ध्यान देकर सोचें कि कौन अच्छा काम करने पर तैयार है। —सत्यनारायण पाडेय।

## देवि चाटुकारिते

कमलिनी-कुलवल्लभ भगवान् भुवन भास्कर के प्रचड प्रकाश में अथवा राकेश की शुभ्र ज्योत्सना में जहाँ देखो तेरी सत्ता का आभास दृष्टिगोचर होता है। देवि ! तेरी अपार शक्ति की दुहाई देश-देशातरों में फिर चुकी है। आज तेरा प्रतिद्वन्द्वी, बिरला ही कोई निकलेगा। तेरी मोहिनी में वह जादू है जो चढ़कर बोले; तेरे हाव-भाव पर मनुष्य क्या देवता तक लट्टू हो जाते हैं। अतः हे सर्व शक्तिमती देवि ! तुझे साष्टाग प्रणाम है।

देवि ! तेरा क्रीडा-स्थल कलियुग है। यदि देश के सौभाग्य से दासता का जोडा तुझसे मिल जाय तो फिर सर्वत्र तू ही है। आत्माभि-मानियों के अभिमान को तू ही तोड़ सकती है। आत्माभिमान की आराधना करते हुए जो तुझसे विरोध करते हैं, उन्हें तू समुचित दड देती है। तुझसे विरोध करने वाले यदि अनेक आपत्तियों में पडे रहें तो इसमें आश्चर्य ही क्या ? पहिले तो अभिमान करना यही पर्याप्त रूप से दंडनीय है, फिर कोरा अभिमान नहीं आत्माभिमान, और वह भी तुझसे विरोध करते हुए ! भगवान् तक तो अभिमान सह नहीं सकते। देवि ! ऐसे विद्रोहियों को कठोरतम दंड देना चाहिए। ये लोग सामयिक नीति की अवहेलना करते हैं, तेरे साम्राज्य में रहकर तेरा ही तिरस्कार करते हैं। ये लोग विद्रोही हैं, विप्लवकारी हैं, 'जैसा देश वैसा भेष' के अनुसार न चलने वाले अदूरदर्शी हैं और हठवी

हैं। तेरी आराधनारूपी कोमल कुसुम में ये कंटक हैं। इनका दमन करना तेरे लिए सर्वथा न्यायसंगत है।

देवि! सतयुग, त्रेता आदि युगों में बैठे-ठाले निठल्लों ने तमाम गुण गिना डाले हैं, परन्तु तेरा कहीं नाम तक नहीं लिया। तेरी महिमा को वे बेचारे समझ ही क्या सकते थे? 'मुल्ला की दौड़ मसजिद तक' बहुत बढ़े तो 'शील' को सबसे बड़ा गुण कहकर रह गये। आधुनिक विद्याधारी सरस्वती के सच्चे सपूत तेरे महत्त्व को पूर्णतया जानते हैं। उनसे कोई पूछ कर देखे कि सबसे बड़ा गुण कौन है। वे शीघ्र तेरा ही नाम ले देंगे। तेरी महत्ता का ध्यान उन्हें जागते सोते सदा बना रहता है। वास्तविकता अधिक समय तक छिपी भी तो नहीं रह सकती।

पाश्चात्य प्रदेशों में विद्यार्थी के लिए अपना शिक्षण समाप्त कर लेने पर देशाटन करना आवश्यक होता था, इसके बिना उसका शिक्षण पूर्ण नहीं समझा जाता था। इसी प्रकार हे देवि! दासत्व-शृङ्खला-बद्ध भारत मही में भी सब-कुछ पढ़कर यदि तेरी कृपा प्राप्त नहीं की, तो सब पढ़ाई व्यर्थ ही है। दास देश में पढ़ाई का उद्देश्य प्रायः नौकरी ही होता है, परंतु कितना भी पढ़ा-लिखा हो, देवि जब तक तुझसे वह प्रशंसापत्र प्राप्त न कर ले तब तक कहीं टिकने की कम संभावना होती है, और यदि कहीं जम भी जावे तो फिर उसकी उन्नति या अवनति का कारण प्रायः तेरी कृपा ही होती है। विश्व-विद्यालयों में तेरी कृपा-प्राप्ति का पर्याप्त आयोजन किया गया है। तेरा विषय भी इतना गूढ़ है कि उस पर न तो पुस्तकें लिखी जा सकती हैं, न कुछ निश्चित नियम ही बनाये जा सकते हैं। तू तू ही है। काव्य एक साधारण कला है, उसके लिए दैवी प्रतिभा की आवश्यकता है, फिर तेरा महान् विषय तो उससे ऊँचा है। तेरे प्रसाद का श्रेय सर्वथा भाग्य को ही मिल सकता है।

देवि! दासता का सुयोग पाकर तेरी शक्ति पूर्णता को प्राप्त होती

है। यही कारण है कि भारत मे तेरे पुजारी अधिक सख्या में हैं। तुझे अपने भक्तों से जितना प्रेम है उतना अन्य किसी से नही। एक बार तेरी आराधना की कि तूने निहाल कर दिया। न्याय की अकड़ तेरे पास नहीं फटकती। तेरे सेवक कभी दुखी नहीं रह सकते।

अतः हे देवि! तुझे शतशः प्रणाम है। —राकेश।

## आशा

आशा! आशा! अरी भलीमानस! जरा ठहर तो सही, सुन तो सही, कहाँ खींचे लिए जा रही है? इतनी तेजी से, इतने जोर से! आखिर सुनूँ तो पड़ाव कितनी दूर है? मंजिल कहाँ है? ओर-छोर किधर है? कही कुछ भी तो नही दीखता! क्या अंधेर है! छोड़, मुझे छोड़। इस उच्चाकाक्षा से मै बाज आया। पड़ा रहने—मरने दे, अब और दौड़ा नहीं जाता। ना-ना—अब दम नहीं रहा! यह देखो वह हड्डी टूट गई। पैर चूर-चूर हो गए, साँस रुक गई, दम फूल गया, क्या मार ही डालेगी सत्यानाशिनी? किस सब्ज बाग का झाँसा दिया था? किस मृगतृष्णा मे ला डाला मायाविनी? छोड़, छोड़, मै तो यही मरा जाता हूँ, मेरी जान छोड़। मैं यही पड़ा रहूँगा। भूख और प्यास सब मजूर है। हाय! वह कैसी कुघड़ी थी जब मैं प्यारी शाति का हाथ छोड़, उससे पल्ला छुड़ा उसे धक्का मार, अंधे की तरह—नही, नही, पागल की तरह पीछे भागा था? कैसी भग खा ली थी, कैसी कुपत गवाँई थी? कहाँ है मेरी शाति? कुछ भी तो पता नहीं—जीती भी है या मर गई!

क्या करता! तेरी मोह-भरी चितवन, उन्मादक मुस्कराहट, और दिल को लोट-पोट करने वाली चपलता ने मुझे मार डाला। मुझ पर, मेरे दिल पर, मेरी शाति पर इन सबने डाका डाला। शाति छूटी, सुख छुटा, घर बार छुटा, आराम छुटा, अब भी दौड़ बंद नहीं? अब भी मंजिल पूरी नहीं? तैंने कहा था—वहाँ एक करोड़ स्वर्गों का

निचोड़ा हुआ रस सड़कों पर छिड़का जाता है। तैंने कहा था शातियों का वहाँ ढलाई का कारखाना खुला हुआ है। तैंने कहा था, सुख के सात समुद्र भरे पड़े हैं। तैंने कहा था, रूप का वहाँ अतर खींचा रखा है। तेरे इतने प्रलोभनों में यदि मै भटक गया तो भगवान मेरा अपराध क्षमा करें। यहाँ तो मार्ग ही मार्ग है—मजिल का कहीं ठिकाना नहीं है। क्या जाने कही है भी या नहीं।

प्यास के मारे कंठ चिपक गया है। जीभ तालू से सट गई। घर में कुएँ का ठडा जल था, उसे छोड़ अमृत के लोभ मे निकला तो प्यास पल्ले पड़ी। घर में रोटियाँ तो थीं—जैसी थीं—मोहन भोग के लोभ में गधे की तरह वे छोड़ दीं। अब भूख के मारे आँखें निकल रही हैं। चटाई का बिछौना क्या बुरा था? सिहासन कहाँ है? यहाँ चलते-चलते पैर टूट गये हैं। वह बीहड़ मैदान, रेगिस्तान, नदी, नद, तालाब, झील, जगल, बन, नगर, पहाड़, गुफा, खोह, ऊबड़, खाबड—ओफ बराबर तय किए आ रहा हूँ। अभी और भी उँगली उठ रही है। तेरी तेजी बराबर जारी है? तू नहीं थकी? पसीना भी नहीं आया? होश-हवास बराबर कायम है? भीषण सुन्दरी! तू कौन है? वही आगे को उँगली उठा रही है। 'थोड़ी दूर और है' यही तेरा मन्त्र है। बढी चली जा रही हैं आँधी और तूफान की तरह। छोड दे मेरी उँगली को, छोड़ दे, नहीं तो मै उँगली काट डालूँगा। थोड़ी दूर हो या बहुत दूर हो, बस मुझसे चला नही जाता। घुटने छिल गए, बाल पक गए। पेट कमर मे लग गया। कमर धरती पर झुक गई। अब भी दया नहीं—अब भी आराम नहीं। रहने दे, मै यहीं आराम करूँगा—यही गिरूँगा, यहीं मरूँगा—जा—छोड़, छोड़।

लौट ही जाता शायद शाति मिल जाती। पर! पर! पर! लौटने का ठिकाना किधर है और आ किधर से रहा हूँ। कुछ भी तो नहीं मालूम। दौडा दौड़ा आ रहा हूँ—इधर देखा न उधर। आज से आ

रहा हूँ ? जन्म समाप्त हो चला। सारा समय मार्ग ही में बीत गया—फिर भी कहती है—'थोड़ा और।' लौटने दे। पर लौटने का समय कहाँ है ? घर बहुत दूर है उसकी राह जवानी से बुढ़ापे तक की है। अब बूढ़ा तो हो गया —जवानी अब कहाँ से आवेगी ? अब लौटना व्यर्थ है, असम्भव है। तब ? तब क्या यहीं मरना होगा ? यहीं मार्ग में काटे और पत्थरों भरी धरती में, हिंसक जन्तुओं से भरे जगल में ? हे भगवान जवानी से बुढापे तक, दौड़ने—मरने—सब कुछ त्यागने का—यही—यही—यही फल मिला ? हाय !

फिर वही "थोड़ी दूर और"। वह थोड़ी दूर कितनी है ? सच तो बता। ईश्वर की कसम। अब तो वापस लौटने का समय ही नहीं है। प्रकाश का एक कण भी तो नहीं दीखता। तेरी आँखें मात्र चमकती हैं। इन आँखों के प्रकाश में और कब तक चलूँ ? ना—ना—अब दम नहीं है। मैं हाथ जोड़ूँ, हा हा खाऊँ, मुझे छोड़ दे। मरने को छोड़ दे। मुझे न सुख की हौंस है न जीने की।

क्या कहा ? मजिल आ गई ? कहाँ किधर ? देखूँ। इतना क्यों हँसती है ? मुझे हँसना अच्छा नही लगता। ठहर, क्या सचमुच मंजिल आ गई ? यह जो तारा सामने चमक रहा है—वह क्या हमारा गन्तव्य स्थान है ? पर वह तो अभी दूर है। वहाँ तक पहुँचने की ताव कहाँ है ? और पहुँचकर वह भोग भोगने की शक्ति भी कहाँ रह गई ? रहने दे ; अब एक पग भी न चलूँगा। चला भी न जायगा। इसका कोई उपयोग नहीं। पहुँचना ही कठिन है और पहुँचकर उसका उपयोग करना तो और भी कठिन—असभव है। भोग का समय, आयु, शक्ति इस मार्ग में समाप्त हो गई। अब क्या उस भोग को लालच की दृष्टि से—तरसते मन से— देखने को वहाँ जाऊँ ? यह तो और भी कटु होगा। रहने दे, अब वहाँ जाने का कुछ आकर्षण नहीं रहा। तुम अक्षययौवना हो, किसी अक्षययौवन को पकड़ो और मैं तो यहीं इसी मार्ग में मरा ! भगवान् ! आज शांति मिलती ! आशा !

आशा ! तुम जाओ—जाओ ! हाय मैं मरा ! एँ एँ ! क्या कहा ? वहाँ सब थकान व्याधि मिट जायगी ? शाति भी मिल जायगी ? नही ? ऐसा ! अच्छा भगवान् ! चल। अच्छा चल ! पर कितनी दूर है ? है तो सामने ही न ! अच्छा और चार पग सही—चल-चल ।

—चतुरसेन शास्त्री ।

## बादल

बादल ! हवा पर सवार होकर तुम इतने इतरा चले । तुम धनी हो, बली हो, मानी हो, दानी हो, पर बावले हो, उतावले हो । मै तुम्हें बचपन से देख रहा हूँ । तुम्हारी लीला ही निराली है । बड़े होने पर लोगों में समझ आ जाती है, पर तुम अपने अल्हड़पन में ही मस्त हो । जब तुम्हारी अठखेलियों की ओर हम देखते हैं, तब तुम बड़े ही नयनाभिराम दृष्टि आते हो । शरद् की मुक्ता धवल चाँदनी में चन्द्रमा की किरणों के झूले पर झूलते हुए तुम हमारे नयनों में झूलने लगते हो । उषःकाल में मरीचिमाली के कर-स्पर्श से तुम्हारी आभा कैसी कमनीय प्रतीत होती है ! सान्ध्य गगन में तुम्हारा पीत-लोहित वर्ण और उस पर बिखरा हुआ सुरम्य रश्मि-जाल गुफा को लौटते हुए सिंह की उपमा बन जाता है। तुम्हारा पर्वतीय विहार ब्रज के गोचरण का दृश्य उपस्थित कर देता है । वृक्षों के शिखरों पर तुम मुकुट से प्रतीत होते हो । पावस मे इन्द्रचाप से अलंकृत तुम्हारा गात रसिकता से रेखांकित चित्र सा जान पड़ता है । तुम्हारे मस्तक पर चमकती हुई बिजली की झलक तुम्हारे उग्र प्रभाव को प्रकाशित करती है । परंतु बादल ! प्रकाशवान् सभी पदार्थ सुवर्ण नहीं होते ।

जीवन धन ! तुम जीवन वर्षा करके वसुधा में जीवन लाते हो । परतु, विवेक से काम कम लेते हो । तुम्हारी वर्षा का विशेष भाग मिला है पाषाण-भूमि पर्वतों को या जलराशि समुद्र को । बाग-बगीचे, खेती-बारी पर तुम्हारी कृपा प्रायः यदा-कदा, समय-कुसमय ही होती है और ऊसर पर मूसलाधार गिराने मे तो तुम्हारे 'गाँठ के पूरे और आँख

-के अंधे' होने में संदेह ही नहीं रहता। जहाँ तुम स्वयं पत्थर बनकर गिरते हो, भला वहाँ क्या लाभ उठाते हो ? अपने प्राण जायँ तो जायँ पर औरों का नाश हो ; यही बात है न ?

घनश्याम ! तुम स्वयं काला रूप धारण करते हो, पर कालों पर बिजली बनकर गिरते हो। यह कहाँ का न्याय ? इस जातिद्रोह में क्या लाभ ? घुमड-घुमड और उमड-उमड़ कर तुम प्रलय मचाते हो। तुम्हारा अभिमान तुम्हारे बल के साथ बढता है। इसमें तुम मुँह की खाकर भी लज्जित नहीं होते ? जानते हो कि 'निर्धन के धन गिरधारी; फिर भी वही अकड़। बताओ तो, तुमने अपने हिमायती इंद्र को लेकर भी व्रज के ग्वालवालों का क्या कर लिया था ? उस समय तुम पानी-पानी तो हो गए, पर डूबकर मरे नहीं। ध्रुव की तपस्या में ही तुमने विघ्न डालने में क्या कसर रक्खी थी ? पर वह ध्रुव ही रहा और तुम ध्रुव से ध्रुव तक दौड़ लगाकर भी अध्रुव ही रहे।

तुम्हें पता है तुम कहाँ जन्मे हो, तुम्हारा स्थान कहाँ है ? इसी धरती पर। इस लिए धरती पर पाँव रखकर चलो। सूर्य की तेजी से ऊँचे उठ गए तो क्या तुम्हारा स्वभाव बदल गया ? तुम तो सदा से नीचे की ओर जाने वाले रहे हो। ऊँचे चढकर कुछ ऊँची बातें भी सीख लो। हवाई घोड़े पर क्या चढे अंधे बनकर उडते हो। तभी तो पहाडों से टक्कर खाकर तुम्हारे दाँत टूटते हैं। हवा के चक्कर में तुम ऐसे आते हो कि घनचक्कर बन जाते हो।

तुम अपने गुणों की ओर देखो। तुम महादानी हो; सबको देते हो, किसी को विमुख नहीं करते। परंतु पात्र-परीक्षा में अधूरे हो। चातक ने युग बिता दिए, तुम्हारी अनन्य भक्ति से कभी मुँह न मोडा, परन्तु आजतक तुमने उसका दुःखमोचन किया ? क्या अब भी उस दीन पर तुम ओले गिराकर अपनी कठोरता का परिचय नहीं देते ? ऐसा क्यों ? भक्तों की तो भगवान् भी सुध लेते हैं, परीक्षा की भी सीमा

होती है। तुम केले पर गिरो, तो कपूर बनकर संसार को महका दो। सीपी के मुख मे गिरो, तो जगत को मोतियों से जगमगा दो। खेतों पर गिरो, तो पृथ्वी का अंचल धानी परिधान से लहलहा दो और भारतीय किसान प्रजा तुम्हारी छत्रच्छाया में राम-राज्य का अनुभव करने लगे। पर कब ? जब तुम्हारा संकल्प ध्रुव हो; तुम्हें शुभाशुभ का विवेक हो। इसी से तो हम कहते हैं कि तुम बावले हो, उतावले हो।

—गोकुलचद शर्मा।

## दया

यह मेरी अंतरात्मा की पवित्र आज्ञा है। यह मेरे हृदय का शृङ्गार है। इसकी स्मृति से मन में प्राण-संजीवनी होती है—मै यह कार्य करूँगा। यह सच है कि वह मेरा कोई नहीं, पापी पतित है। उस पर सभी का कोप है। हाय! भगवान का भी कोप है। कुछ उस पर क्रोध करते हैं, कुछ दुरदुराते हैं, कुछ घृणा करते हैं और कुछ अविश्वास करते हैं। इतना सहकर वह कैसे जी सकेगा ? इससे तो अच्छा यही है कि उसे लोग मार डालें। जिसे ठिकाना नहीं, आश्रय नहीं, उत्तेजना नही, प्रेम नहीं, आदर नही, वह इस पृथ्वी पर स्वार्थ की हवा में कितनी साँस ले सकेगा ? चाहे जो कुछ भी हो। लोग चाहे मुझ से रूठ जायॅ पर मै उसे अवश्य प्यार करूॅगा। यह मेरी अतरात्मा की पवित्र आज्ञा है, यह मेरे हृदय का शृङ्गार है। इसकी स्मृति से मन मे प्राण-सजीवन होता है। मैं यह कार्य करूॅगा।

वह नीच है, अछूत है, मलिन है, इससे क्या ? क्या उसके शरीर में वही आत्मा नहीं जो हमारे में है ? उसके जैसे हाड़-मांस क्या हमारे शरीर में नही है ? वह ईश्वर का पुत्र है। उसके शरीर का प्रत्येक कण ईश्वर के हाथ की निजी कारीगरी है। ईश्वर ने उसे स्वयं बनाया है और आज तक पाला है। बिना उस वातावरण के क्या वह इतना बड़ा होता ? बात झूठ है। अब न सही पर कभी तो उसने प्यार पाया होगा ? क्या कोई ऐसा बच्चा देखा है जिसने माँ की छाती से चिपट-

कर मधुर दूध न पिया हो ? क्या किसी ने ऐसा बच्चा देखा है जिसने बाप के लाड़ न देखे हों ? और उसने क्या बचपन को पार नहीं किया है ? आज उसकी यह दशा हुई ! प्यार से गया, सुख से गया, घृणा से क्रोध-तिरस्कार की बौछारों से भरा जा रहा है। क्या प्यार की प्यास इसके मन से बुझी होगी ! एक बार जिसने मिश्री खाई तो क्या वह उसकी मिठास को भूल सकता है ! वह प्यार मै इसे दूंगा। जैसे प्यासे के पानी पीने से उसके प्राण शीतल हो जाते है, जैसे अन्न पाकर भूखों की आँखों में ज्योति आ जाती है उसी तरह इसे प्यार पाकर सुख मिलेगा। वह मुझे प्यार करेगा। प्यार क्या यों ही मिलता है ! कितने मरे कितने खपे, मै प्यार को पाऊँगा। गुणी पर प्यार होता है, ठीक है ! उसे प्रेम कहते हैं। एक प्यार चाहना होता है, उसे मोह कहते हैं। यह प्यार वासनाहीन हैं, इसमें न गुण देखे जाते हैं न दोष, न नीच न ऊँच, न पाप न पुण्य, केवल दुख देखा जाता है। चाहे जो हो, चाहे जिस कारण से दुःखी हो, उसे प्यार करना इस प्यार का एक प्रकार है। इस प्रकार को कहते हैं दया। भगवान दयालु हैं। दया भगवान की नियामक सत्ता है। भगवान के पालन में दया है; ससार में भी दया है। यही दया उसे अतुल्य न्यायी बनाये हैं। जो न प्यार के, न आदर के, न प्रतिष्ठा के, न काम के पात्र हैं; वे सब दया के पात्र हैं। अच्छी तरह समझ गया हूँ ! देखते ही पहचान लूँगा। छूटते ही दया करूँगा। यह देखो, मन में कैसा हर्ष उत्पन्न हुआ ! आत्मा मे कैसा सन्तोष मिला ! यह दया-धन का प्रताप है। हे प्रभु ! हृदय में दया को स्थायी बना। दया मेरे नेत्र मे बसे। दया मेरे पथ का प्रकाश हो।

—( अतस्तल से )

## कुरूपता

सौंदर्य की उपासना करना उचित है सही, पर क्या उसी के साथ-

साथ कुरूपता घृणास्पद या निंद्य है ? नहीं, सौदर्य का अस्तित्व ही कुरूपता के ऊपर निर्भर है। सुन्दर पदार्थ अपनी सुन्दरता पर चाहे जितना मान करे, किंतु असुन्दर पदार्थों की स्थिति मे ही वह सुन्दर कहलाता है। अंधों में काना ही श्रेष्ठ समझा जाता है।

कुरूपता के पक्ष में कुछ और भी कहा जा सकता है। रूपहीन वस्तु ही रूपवान वस्तु का आधारभूत और पालक-पोषक है। कीचड़ से ही कमल की स्थिति है। गुलाब भी कटीले वृक्ष में उगता है। मोती सीप से पैदा होता है। रत्न क्षार-समुद्र से निकलता है। मणि खान से निकलती है। गज-मौक्तिक हस्ती के मस्तक से निकलती है। कीट से रेशम उपजता है। शून्य नीलाम्बर मे चंद्रोदय होता है; दुरूह पर्वतों के अंधकारमय गह्वरों में भाँति-भाँति की जड़ी-बूटियाँ विद्यमान रहती हैं। बड़े-बड़े बीहड़ जंगलों में सहज सलोने मृगछौने रहते हैं। इसी प्रकार पुष्पो का प्रादुर्भाव वृक्षो से और सघन सुन्दर पल्लवो से, सुशोभित शाखाओं की स्थिति रूखी और मोटी-मोटी जड़ से है। मनुष्य की स्थिति जल, वायु और मिट्टी के ढेलों पर निर्भर है। भूसी निकल जाने पर चावलो में से अंकुरित होने की शक्ति जाती रहती है।

आपके सुन्दर वस्त्र, जिनसे आपकी सुन्दरता बनी हुई है, कहाँ से आये ? वे मिट्टी के ढेले, जिनसे कपास की उत्पत्ति हुई, क्या बड़े रूपवान थे ? वह बेचारा श्रमसहिष्णु कृषक, जिसने दिन रात परिश्रम करके कपास के खेत को उपजाऊ और हरा-भरा बनाया, क्या आप ही की भाँति कोमल और सुकुमार था ? क्या वह लोहे की चरखी ( मशीन ) जिसमे कपास साफ की गयी थी और जिसके द्वारा कपास सूत में परिणत होकर सुन्दर वस्त्र रचने के योग्य हुई, काले-काले कोयलों की ढेर से नही चलायी गयी थी ? 'मिल' में काम करनेवाले लोग भी सबके सब आप ही की भाँति सुकुमार और सुभग सुवेशवाले होंगे ? किंतु यदि ये सब कुरूप पदार्थ न होते तो आपके सौन्दर्य की वृद्धि करनेवाले ये सब पदार्थ कहाँ से सुलभ हो पाते ?

सत्ता-सागर में दोनों ही की स्थिति है। दोनों ही एक तारतम्य में बँधे हुए हैं। दोनों ही एक दूसरे में परिणत होते रहते हैं। फिर कुरूपता घृणा का विषय क्यों?

रूपहीन वस्तु से तभी घृणा है जब हम अपनी आत्मा को सकुचित बनाये हुए बैठे हैं। सुन्दर वस्तु को भी हम इसी कारण से सुन्दर कहते हैं कि उसमें हम अपने आदर्शों की झलक देखते हैं।

आत्मा के सुविस्तृत और औदार्यपूर्ण हो जाने पर सुन्दर और असुन्दर दोनों ही सामान प्रिय बन जाते हैं। कोई माता अपने पुत्र को कुरूपवान नहीं कहती। इसका यही कारण है कि वह अपने पुत्र में अपने आप को ही देखती हैं। जब हम सारे ससार में अपने आप को ही देखेंगे तब हमको कुरूपवान भी रूपवान दिखाई देगा। यदि ऐसा न भी हो तो कोई विस्मय नहीं, पर रूपहीन वस्तु से घृणा तो अवश्य ही जाती रहेगी। मानव शरीर के ही अग-प्रत्यंग एक ही समान सभी सुन्दर नहीं होते।

रूपहीन पदार्थ निरादर का विषय नहीं, तिरस्कार का पात्र नहीं। वह भी उसी सुविशाल सत्ता-सागर का एक कण है, जिसका सुन्दर पदार्थ। सुरूपवानो का उदय भी कुरूपवान पदार्थों से ही होता है, मिट्टी और खाद के कण सुरभित सुमनों मे परिणत होते रहते हैं। अतिशय कर्कश, टेढे और रूखड़े पत्थरों से ही मनोमुग्धकारिणी हृदय-ग्राहिणी दृष्टि-उन्मेषिणी मूर्तियाँ रची जाती हैं। जो आज कुरूपवान वस्तु है वही कल सुरूपवान बन जावेगी।

फिर निराशा क्यो? —गुलाबराय

## हिम-हास

### १—काश्मीर के पुष्प

कितना सौन्दर्य! कितनी सुषमा!!

जहाँ देखो, इस उपत्यका में फूल ही फूल बिखरे हुए हैं। प्रत्येक

स्थल पर फूलों की राशि अपनी ही विपुलता में बिखरी हुई है। यहाँ इतने फूल क्यों है ?

संभव है, प्रकृति ने फूल मेरे सामने रखकर कहा हो—"मनुष्य ! विश्वात्मा कितना महान् है ! कितना शक्तिशाली है ! कितना सुन्दर है ! तू इतने पुष्पों से उसकी पूजा कर। तब क्या विराट की पूजा के लिए ही प्रकृति ने काश्मीर मे इतने पुष्प विकसित किये हैं ?

### २—जल-प्रपात

यह देखो—यह जल-प्रपात !

जल कितनी शिलाओं के ऊपर-नीचे दाएँ-बाएँ होकर निकल रहा है। उसी प्रकार इस संसार में पड़े हुए पत्थर के समान व्यक्ति के चारों ओर से समय का अविराम प्रवाह जा रहा है। जिस प्रकार जल के संघर्ष से पत्थर घिसता है और छोटा होता रहता है उसी प्रकार समय के प्रवाह से मनुष्य का जीवन भी धीरे-धीरे घटता जाता है।

तब क्या हमारे जीवन को स्पर्श करता हुआ समय का प्रवाह भी एक भीषण जल-प्रपात है ?

### ३—फीरोजपुरी नाला

पर्वत के अंतराल में बहता हुआ नाला।

उसकी ध्वनि बहुत दूर से सुनाई पड़ी, जिस प्रकार संसार की तुच्छ वस्तुएँ अपने अस्तित्व की घोषणा बहुत जोर से करती हैं। अपने वेग से वह नाला पर्वत के हृदय को हिला देना चाहता है। मैंने कहा—इसका प्रयास वैसा ही है जैसा मेरी साँस का, जो सारे शरीर मे उग्र रूप से प्रवाहित है। पर नाले के समान मेरी साँस भी नहीं सोचती कि यह प्रवाह कब तक है !

### ४—पर्वत-पथ

यह पथ पर्वत पर किस प्रकार चढता चला जाता है जैसे मेरी महत्वाकांक्षा अपने आदर्श पर ! मार्ग में कितनी झाड़ियाँ, कितने गड्ढे हैं, पर पथ टेढा होकर—तिरछा होकर—उस पर चढ़ा हुआ

है। कठिनाइयों को मार्ग में देखकर क्या उसी कौशल से अपना मार्ग बनाकर मैं अपने इच्छित स्थल तक नहीं पहुँच सकता ?

मै भी तो पथ की भाँति संसार की विपत्तियों से पददलित हो रहा हूँ !

—रामकुमार वर्मा

## आँख खोल

तू कैसा उपासक है ? पड़े-पडे कैसे काम चलेगा ? उठ, आँख खोल कर देख ! देख, प्रभात होने वाला ही है। यह ब्रह्मबेला है। आत्मानुभूति की जन्म-भूमि यही बेला है। जरा प्राची के अर्द्ध विकसित सरल हास की ओर तो दृष्टिपात कर। क्या ही अनुपम आभा है ! प्रकृति के शुभ दर्पण मे अनुराग-रजिता उषा की मुग्ध उद्‌भावना कैसी प्रतिबिंबित हो रही है। धन्य है यह चतुर चित्रकार जिसने अनत आकाश के प्रशस्त पट्ट पर यह अस्पष्ट आलोक-रेखा अकित कर दी है ! विहग-कुल का सरस स्वर-समूह तो निराला ही है। इसी नाद-नदी के तीर्थ-सलिल मे निमज्जन कर कवि की अंतर्ध्वनि अपने को कृतार्थ मानती है। तनिक इस ध्यानावस्थित समीर का आराधन तो देख। ब्रह्म-बेला की ऐसी दिव्य आराधना और किससे बनेगी ? इस समीर की तरह तरंगों मे ये परिमल कैसे कल्लोल कर रहे हैं ! कदाचित इसी कल्लोल-कला में अदम्य उत्साह और अनत जीवन का निगूढतम रहस्य अतर्हित हो।

क्या ही मनोहर दृश्य है ! आर्य-सस्कृति की पुनीत पताका क्या कभी फहराती है ? यदि नहीं तो अब देख। यह किसी पुण्य सलिला तटिनी का तट है। स्वर्गानुमोदित कर्मभूमि का अभिषेक इसी जल से हुआ था। शब्द-ब्रह्म की सुगेय गाथा इस अनादि तरगिणी की तरंग-तंत्री से प्रतिध्वनित हुई थी। वेद-वाची को इसी तीर पर ईश्वरीय आदेश प्राप्त हुआ था। इन उपासकों की कैसी सरल और शुद्ध उपासना है ! प्रथम प्रभात का दर्शन इन्हीं महात्माओं ने किया था। जीवन-सग्राम मे इन

आत्म-वीरों ने अभूतपूर्व क्रम से विजयवैजयंती उड़ाई थी। विश्वप्रेम का अमोघ मंत्र इन्हीं विश्व-वंद्य महापुरुषों के पाद-प्रक्षालन से मिलेगा, अन्यथा नहीं। अतएव उठकर एक बार प्रणतभाव से इनके चरणों पर श्रद्धांजलि चढ़ा। ये प्रसन्न होकर ब्राह्मी अवस्था का साक्षात्कार करा देंगे।

तू कैसा सैनिक है? पड़े-पड़े कैसे काम चलेगा? उठ आँख खोल। देख, युद्ध प्रारंभ होनेवाला ही है। यह विप्लव बेला है। क्रांति की काली-काली घटायें घिरने लगी हैं। कैसा विकराल वातावरण है! रिपु-दल-मर्दिनी रणचंडिका समरभूमि पर तांडव नृत्य करने जा रही है। क्या तुझे उसके लोक-प्रकंपन नूपुरों का छुम-छुम शब्द सुनाई नहीं देता? उद्भ्रांत दिशायें थर-थर काँप रही हैं। ब्रह्मांड विक्षिप्त हो उठा है। समस्त जीव-जंतु त्रस्त हो रहे हैं। प्रशांत नभोमंडल के वज्रोपम वक्षःस्थल पर क्रांति की काली-काली रेखा खचित हो गयी हैं। थोड़ी ही देर में तेरे आस-पास नंगी तलवारें बिजली की तरह चमकने लगेंगी। सुना है, उन तेज तलवारों पर दल-दलित दुर्बलों के गर्म आँसुओं का विषाक्त पानी चढाया गया! ओह! कितनी भीषण तोपें गंभीर गर्जना कर धधकते हुए गोले उड़ायेंगी! उनका ब्रह्मांड-भेदी शब्द असहाय दीनों के आर्त्तनाद का रूपांतर होगा। तेरे देखते ही देखते यहाँ ज्वलंत ज्वालामुखी फट पड़ेंगे। कहते हैं, उन अग्नि-गर्भ पर्वतों का निर्माण परतंत्रता-पीड़ित अस्थि-कंकालों की धुआँधार आहों से हुआ है। कुसुमकलिका से वज्रोत्पत्ति होगी।

लो, बिगुल बजा! रण-घोषणा कर दी गयी! लाल झंडे फहरा उठे। शिविर में हलचल मच गयी। कवच और शिरस्त्राण खड़खड़ाने लगे। अस्त्रागार की ओर कितने लोग दौड़े जा रहे हैं! कितनी मसालें बल रही हैं! कोई किसी से बोलता नहीं; संकेत से ही बातें हो रही हैं। लो, रण-वाद्य भी बजने लगा। अरे! यह अग्निकांड कैसा? पूछना व्यर्थ है। इस घोर विप्लव में कौन किसकी सुनता है। यह देख प्रलयंकारिणी तोपें दुर्भेद

दुर्गों को धराशायी करने की तैयारियाँ करने लगीं। उधर तलवारें भी काल की जीभ की तरह लपलपा रही हैं! स्वतंत्रता-प्रेमी वीर सैनिक कैसे झूमते हुए आगे बढ़ रहे हैं। उनका हुंकार दिशाओं को चीरे डालता है। इन्हीं सर्वस्व-त्यागियों ने प्राणों का मूल्य जाना है। और तू? धिक्कार है तुझे जो अब भी बिछौने पर करवट बदल रहा है!

—वियोगीहरि।

## स्वर्ग में असंतोष

क्या यही स्वर्ग है? तब तो छोड़ा ऐसा स्वर्ग! देव-दूत मुझे अपने उसी मर्त्यलोक में भेज दे। कर्म-लोक का निवासी काम-लोक की कामना नहीं करता। अरे! मेरी वह निर्जन कुटीर क्या बुरी है? मुझे अपनी उसी मड़ैया से संतोष है। मैं समझ रहा था स्वर्ग मे कर्म की अनवरत् धारा बहती होगी, वहाँ के वासी पारस्परिक प्रेम-सूत्र में बँधे होंगे और वहाँ सचरित्रता, सद्व्यवहार एवं सहानुभूति का अटल साम्राज्य होगा। सो वे सब बातें यहाँ कहाँ हैं? यहाँ का रग-ढग तो कुछ और ही है। यहाँ सब के सब विलास-विभोर, कामोन्मत्त और मदांध देख पड़ते हैं! क्या इन अकर्मण्यों को कोई काम नहीं? अगराग लगाना, माला गूँथना या चित्राकण करना ही क्या इन मुफ्तखोरों का इतिकर्तव्य है? सहकारिता और सहानुभूति तो ये जातते ही नहीं। इनके समान ईर्ष्यालु, लोलुप और स्वार्थी हमारे मर्त्यलोक में नहीं हैं। आस्तिकता का तो इन स्वयंप्रभुओं ने नाम ही न सुना होगा। ये लोग हैं पिशाच, पर कहे जाते हैं देव!

देवदूत! तेरा देव-दुर्लभ स्वर्ग मुझे लुभा न सकेगा। यह उन्माद-कारी नंदन-भवन किस काम का? इन पारिजात पुष्पों का परांग पान करने के लिए मेरे पास सरस-सुकमार अधर-पल्लव नहीं। यहाँ के परिमलवाही पवन की विलोल लहरों को मैं किन अँगुलियों से स्पर्श करूँगा? इन गजगामिनी-प्रमदाओं की ओर तो मैं देखूँगा भी नहीं।

इनके कटाक्ष-बाण मेरे नीरस हृदय पर टकरा कर खंड खंड हो जायँगे। स्वर्गीय सुधा का भी मैं इच्छुक नहीं हूँ। चिंतामणि तो मेरे लिए कानी कौड़ी का भी मूल्य नहीं रखती! मुझे इस स्वर्ग-विहार से नरक-यातना कहीं अधिक वाञ्छनीय है। यहाँ पल मात्र भी नहीं ठहर सकता। यहाँ तुम लोगों के दिन कैसे कटते होंगे?

मैं अपनी जन्म-भूमि का स्मरण कर अधीर हो रहा हूँ। वह ऊजड़ गाँव, वे ऊसर खेत, वह टूटी-फूटी झोपड़ी, वह निर्जल नदी, वह निर्जन वन और टेढ़ी-मेढ़ी वन-वीथियाँ आज भी मुझे स्वर्ग से ऊँचा उठा रही हैं। वे सीधे-सादे असभ्य ग्रामीण यहाँ कहाँ मिलेंगे? यहाँ न हल है न वह खुरपी, न जेठ की लू है, न सावन की मूसलाधार वर्षा, न रोना है न गाना, न रूखी रोटी है न सूखे चने। वहाँ हम लोग हिलमिल कर रहते हैं। दूसरों के सुख में सुख और दुःख में दुःख मानते हैं। अहंकार तो हम जानते ही नहीं। हम ईश्वर से बहुत डरते हैं।

यहाँ की वेश-भूषा लेकर मैं क्या करूँगा? तन पर एक फटा-पुराना चिथड़ा ही हमारा श्रृंगार है और रत्न-जटित आभूषण है स्वातन्त्र्य। जन्म भूमि के कंकड़-पत्थर हमें कुसुमशय्या का काम देते हैं, आम और महुवे के आगे कल्पवृक्ष क्या चीज है? मेरे गाँव का एक एक रज-कण तेरी सहस्रों चिंतामणियों से अधिक मूल्यवान् है।

देवदूत! मैं मनुष्य ही रहना चाहता हूँ, देवता नहीं। यहाँ बसने के लिए बहुत निठल्ले मिल जायँगे। कृपा कर मुझे उसी दिव्यभूमि पर पटक दे, जहाँ से तू मुझे प्रमत्त बना उठा लाया है। अहा!

जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।

—वियोगी हरि।

## पाँच फूल

(१) श्मशान—पंचभूत-निर्मित नश्वरता भस्म हो रही थी। स्नेह-सी, जीवन की असफल भावनाएँ अग्नि को और भी प्रज्वलित

कर रही थीं। समीप खड़े संबंधियों का भग्न-हृदय स्मृति की लपटों से झुलस रहा था। एक भयंकर शून्यता व्याप रही थी।

और मैं सोचने लगा—क्या यह आवश्यक है कि सुदूर जानेवाले इस पथिक की विदा पर विषाद भरे आँसू बहाये जायँ?

( २ ) मनुष्यता?—सुरम्य वाटिका में सजग प्रभात के समय मैं घूम रहा था। कुछ फूल खिले थे, कुछ कलियाँ खिलने को थीं—मंद समीर के झोंको से वे नवल नवेलियों-सी इठला रही थीं। पवन उनकी सुगध वितरित करता, जिससे द्रुमदलों को वैसी ही प्रसन्नता होती जैसी माता-पिता को पुत्र के यशलाभ से होती है।

अंत में देखे वे कुसुम जो अपनी क्षणिक जीवन-लीला समाप्त कर धूल में लोट लोट विलख रहे थे; जिन पर ओसकण अश्रु-बिंदु-से टपक रहे थे।

कवि सोचने लगा—फूल अपने एक ही दिन के जीवन में सबको सुखी कर जाता है, पर मनुष्य का वृहज्जीवन सभ्यता की नग्नता दिखाते ही बीतता है। क्या यही मनुष्यता है!

( ३ ) क्या सत्य ही? वह जीर्ण-शीर्ण, कातिहीन और कुरूप भिखारिणी! 'अपनों' की आँख बचाकर सब उसे आँख भर देखना चाहते, पर 'अपनों' के सामने उसे दुत्कार देते।

वह सकरुण दृष्टि से एक बार शून्य की ओर ताककर चली जाती। सब सुनती, सहती वह; पर उसकी आत्मा से असीस ही निकलती—वह असीस जिसे न चित्रकार चित्रित कर सकता है और न कवि व्यक्त। उसे समझने के लिए उसी की आत्मा चाहिए—हाँ, उसी की आत्मा चाहिए।

कवि सोचने लगा—क्या सत्य ही वह भिखारणी है!

( ४ ) रूपक—सुदर वाटिका के खिले रग-बिरगे फूलो पर इंद्र-धनुष सी छोटी-छोटी तितलियाँ इधर-उधर स्वच्छन्द सरलता से उड़

रही थीं। कुछ चपल बालक उनसे खेल रहे थे—किसी के पीछे दौड़ते, किसी को पकड़कर उसका सुनहला रंग छुटा लेते, किसी को अनजान में ही अपने कोमल स्पर्श से मसल देते। पर निस्सहाय तितलियों पर उन्हे जरा भी दया न आती।

यही उनकी क्रीडा थी।

कवि सोचने लगा—हम तितलियों के साथ भी तो कोई इसी तरह खेलता है।

( ५ ) लालसा–पागल-सा न जाने कब से तुम्हे ढूँढ़ रहा हूँ; पर तुम कहीं नहीं मिलते।

तुम्हारा कल्पित दिव्य सौंदर्य मंत्र-मुग्ध हो ललचायी दृष्टि से देखा करता हूँ, परंतु तब भी तुम अदृश्य ही रहते हो।

तुम्हारे सम्मिलन की मधुर कल्पना करते करते जब मै मोद-प्रवाह मैं बेसुध हो बहने लगता हूँ तब तुम जैसे झटका देकर भाग जाते हो।

कवि ने पूछा—तब तुम चाहते क्या हो? उनसे मिलकर उन्हीं मे समा जाना?

मैंने कुछ सोचकर उत्तर दिया—नहीं, नहीं; मै अपनी कल्पित आशा मे ही सुखी हूँ। केवल इतनी ही लालसा है कि यह आशा बनी रहे।

—प्रेमनारायण टंडन।

## ताजमहल

सम्राज्ञी मुमताजमहल चली गयी, सर्वदा के लिए चली गयी। अपने रोते हुए प्रेमी को, अपने जीवन-सर्वस्व को, अपने बिलखते हुए प्यारे बच्चों को तथा समग्र दुखी ससार को छोड़कर, उस अँधियारी रात मे न जाने वह कहाँ चली गयी। चिरकाल का वियोग था। शाहजहाँ की आँख से एक आँसू ढलका, उस संतप्त हृदय से एक आह निकली।

वह सुंदर शरीर पृथ्वी की भेंट हो गया; अगर कुछ शेष रहा तो

उसकी वह सुखप्रद स्मृति पर, उसके उस चिरवियोग पर, आहें तथा आँसू। ससार लुट गया और उसे पता भी न लगा। संसार की वह सुदर मूर्ति, मृत्यु के अदृश्य क्रूर हाथों से चूर्ण हो गयी। और उस मूर्ति के वे भग्नावशेष! जगत्माता पृथ्वी ने उन्हे अपने अचल में समेट लिया।

शाहजहाँ के वे आँसू तथा वे आहें विफल न हुईं। उन तप्त आँखों तथा धधकते हुए हृदय से निकलकर वे इस वाह्य जगत् में आये थे, वे भी समय के साथ सर्द होने लगे। समय के ठडे झोंके के थपेड़े खाकर उन्होंने एक ऐसा सुंदर स्वरूप धारण किया कि आज भी न जाने कितने आँसू ढलक पड़ते हैं और न जाने कितने हृदयों में हलचल मच जाती है। अपनी प्रेयसी के वियोग पर बहाये गये शाहजहाँ के वे आँसू चिरस्थायी हो गये।

सब कुछ समाप्त हो गया था, किंतु अब भी कुछ आशा शेष रही थी। शाहजहाँ का सर्वस्व लुट गया था, तो भी उस स्तब्ध रात्रि में अपनी मृत्यून्मुख प्रियतमा के प्रति उस अंतिम भेंट के समय किये गये अपने प्रण को वह नहीं भूला था। उसने सोचा कि अपनी प्रेयसी की यादगार में, भारत के ही नहीं, संसार के उस चाँद की उन शुष्क हड्डियों पर एक ऐसी कब्र बनावे कि वह संसार के मकबरों का ताज हो। शाहजहाँ को सूझी कि अपनी प्रेयसी की स्मृति को तथा उसके प्रति अपने अगाध शुद्ध प्रेम को स्वच्छ, स्वेत स्फटिक के सुचारु स्वरूप में व्यक्त करे।

धीरे-धीरे भारत की उस पवित्र महानदी यमुना के तट पर एक मकबरा बनने लगा। पहले लाल पत्थर का एक चबूतरा बनाया गया, उस पर सफेद सगमरमर का ऊँचा चबूतरा निर्माण किया गया, जिसके चारों कोनों पर चार मीनार बनाये गये जो बेतार के तार से चारों दिशाओं मे उस सम्राज्ञी की मृत्यु का समाचार सुना रहे हैं तथा उसका यशोगान करते हैं। मध्य में शनैः शनैः मकबरा उठा। यह मकबरा भी उस श्वेत वर्णवाली सम्राज्ञी के समान श्वेत, उसी के समान सौंदर्य

में अनुपम तथा अद्वितीय था। अंत में उस मकबरे को एक अतीव सुंदर किंतु महान गुंबज का ताज पहनाया गया।

पाठको! उस सुंदर मकबरे का वर्णन पार्थिव जिह्वा नहीं कर सकती, फिर बेचारी जड़ लेखनी का क्या कहना! अनेक शताब्दियाँ बीत गयीं, भारत में अनेकानेक साम्राज्यों का उत्थान और पतन हुआ। भारत के सुंदर कला तथा महान समाधि के निर्माण-कर्ता भी समय के इस अनंत गर्भ में न जाने कहाँ विलीन हो गये; परंतु आज भी वह मकबरा खड़ा हुआ, अपने सौंदर्य से संसार को लुभा रहा है। वह शाहजहाँ की उस महान साधना का, अपनी प्रेमिका के प्रति अनन्य तथा अगाध प्रेम का फल है। वह कितना सुंदर है? आँखें ही देख सकती हैं, हृदय ही उसकी सुंदरता का अनुभव कर सकता है। संसार उसकी सुंदरता को देख कर स्तब्ध है। शाहजहाँ ने अपनी मृत प्रियतमा की समाधि पर प्रेम की अंजलि अर्पण की तथा भारत ने अपने महान शिल्पकारों और चतुर कारीगरों के हाथों शुद्ध प्रेम की इस अनुपम और अद्वितीय समाधि क निर्माण करवा कर पवित्र प्रेम की वेदी पर जो अपूर्व श्रद्धांजलि अर्पित की, उसका सानी इस भूतल पर खोजे नहीं मिलता।

—महाराजकुमार डाक्टर रघुबीरसिंह

## रुपया

मैं लडकों के लड़कपन का खिलौना हूँ, मिठाई हूँ। मैं जवानो की जवानी की जान हूँ, मस्ती हूँ। मैं बूढ़ों की बुढौती की लकड़ी हूँ, सहारा हूँ। मैं रुपया हूँ।

मनुष्य मेरा गुलाम है। मैं उसे हजार बार बचा सकता हूँ, बचा चुका हूँ, बचा रहा हूँ। दुनिया मुझसे दबती है। मै उसे उलट सकता हूँ, उलट चुका हूँ, उलट रहा हूँ। प्रकृति मेरी वशवर्तिनी है। मैं उसे बनाता हूँ बिगाड़ता हूँ, तोड़ता हूँ, मोड़ता हूँ। मैं रुपया हूँ।

इस विशाल विश्व में यदि कोई ईश्वर हो तो मै हूँ। धर्म हो तो मैं हूँ, प्रेम हो तो मैं हूँ। मै सत्य हूँ, मै शिव हूँ मै सुंदर हूँ। मैं सत् हूँ, मैं चित् हूँ, मै आनद हूँ। परलोक मै हूँ। लोक मैं हूँ, हर्ष मै हूँ, शोक मै हूँ, क्षमता मं हूँ, ममता मै हूँ। मै रुपया हूँ।

मेरी झनझनाहट मे जो अलौकिक मधुरिमा है वह वीणापाणि की वीणा में कहाँ? कोयल की कूक मे कहाँ; मुरलीधर की मुरली मे कहाँ? सितार-जलतरग मे कहाँ? यहाँ कहाँ? वहाँ कहाँ? मै सप्तस्वरों से ऊपर अष्टम स्वर हूँ। मै परम मधुर हूँ। मै रुपया हूँ।

गीता के गायकों, भागवत के भक्तों, रामायण के अनुरागियो, महाभारत के माननेवालों—मेरा गीत गाओ, मेरा पाठ पढो, मेरे भक्त बनो, मेरी कथा सुनो, मुझसे अनुराग करो। मुझे मानो, मेरी शरण आओ। भव-भय हरण मै हूँ, जन-दुख-हरण मैं हूँ। मै रुपया हूँ।

मुझको आँख दिखाकर, मुझे ठुकराकर, मुझसे विद्रोह कर, कोई बच सकता है? काई नहीं।

जमींदार मैं हूँ, राजा मैं हूँ, बादशाह मै हूँ, बादशाहों का बादशाह मै हूँ। मैं ईश्वर हूँ। मै रुपया हूँ।

देवताओं मे वह आकर्षण नहीं जो मुझमें है। ईश्वर में वह तेज नहीं, जो मुझमें है। यह युग तर्क का है, प्रत्यक्षवाद का है। मे प्रत्यक्ष हूँ, सद्यःफलदानी हूँ, मै ईश्वर हूँ, ईश्वर से बड़ा हूँ। मैं रुपया हूँ।

मुझसे वरदान लेकर पाप करो, तुम देवताओ से पूजे जाओगे। मुझसे वरदान लेकर एक दो नहीं, सात खून करो, साफ बच जाओगे। साम्राज्य को साम्राज्य से भिड़ा दो। मनुष्यता की बढी हुई खेती को बेरहमी से कटवा डालो—जलवा डालो। संसार को विधवाओ बच्चों, बूढों और अपाहिजों की हाय से भर दो। भूकम्प उठा दो, प्रलय कर दो, मगर मुझसे वरदान लेकर। मै सर्वशक्तिमान हूँ। मै रुपया हूँ। सबको छोड़कर मेरी शरण में आओ।—पाडेय बेचन शर्मा, 'उग्र'

# हिंदी लेखक—एक चित्र

अपने दुबले-पतले इकहरे शरीर को निर्धन मजदूरों के दुर्बल हाथों से कती-बुनी खादी की मोटी धोती और मामूली लम्बे कुरते से, जो शरीर की दयनीय दुर्बलता के कारण आवश्यकता से कुछ अधिक लंबा जान पड़ता है, ढके; विगत विद्यार्थी-जीवन के अवशिष्ट चिन्ह-से सर के बाल अस्तव्यस्त बाहे, अनुपयुक्त वेश-भूषा और पिचके गालो के कारण गोल और छोटा होते हुए भी लंबा लगनेवाला सूखा चेहरा लिये, पैर में चार-पॉच आने की, पहननेवाले की करुण दशा की ओर संकेत-सा करती हुई मामूली चप्पल पहने;—यही है हिंदी लेखक का वह पूर्ण-परिचित चित्र जो हम नित्य-प्रति आश्चर्य और उपेक्षा की दृष्टि से—आश्चर्य इस बात का कि क्या यही निर्जीव-सा व्यक्ति वह लेखक है जिसकी ठोस, गभीर और प्रौढ रचनाओ को पढ़कर हम मनोरंजन के साथ-साथ ज्ञानार्जन भी करते हैं और उपेक्षा इस कारण कि हिंदी मे तो इनके भाई-बधुओं की बाढ-सी आई हुई है जिन्हे बिना दूसरों की सुने अपनी ही कहे जाने का रोग-सा हो गया है—पत्रसंपादको के दफ्तरो मे, सार्वजनिक, सामाजिक, राजनीतिक अथवा साहित्यिक संस्थाओं के साधारण अधिवेशनों में बराबर देखा करते हैं।

इनकी आर्थिक स्थिति का कुछ परिचय इनका सीधा-सादा रहन-सहन और इनके सस्ते वस्त्रों को देखकर मिल जाता है; रही-सही बात का ज्ञान इनके सूखे चेहरे से टपकती हुई स्पष्ट निराशा, अपनी शोचनीय स्थिति का परिज्ञान-जनित असंतोष ऑख फाड-फाड़कर जैसे आश्रय के लिए चारो ओर निहारती चिंतित विवशता से हो जाता है।

इनकी पूँजी, जो इनके रात-रात भर के जागरण और अथक परिश्रम तथा अध्यवसाय की गाढ़ी कमाई है, कुछ थोडी-सी छोटी-मोटी पत्र-पत्रिकाएँ और शरीर के खून से, प्रकाशमय विश्व के घने अंधकार में, नित्य प्रति क्षीण होती नेत्र-ज्योति की सहायता से लिखे कुछ प्रकाशित

और अप्रकाशित विविध विषयक लेख हैं। अपने प्रकाशित लेखों की ओर से वे कुछ निश्चित हो जाते हैं, ठीक वैसे ही जैसे सधारण स्थिति का पिता अपने युवा पुत्र को शक्ति भर शिष्ट, विद्वान् और गुणवान् बनाने के पश्चात् उसे इस कर्मक्षेत्र मे उचित स्थान प्राप्त करते देखकर निश्चिंत हो जाता है। अपने अप्रकाशित लेखों को सजाने, सुधारने और सब प्रकार से योग्य बनाने में ये सदैव इसी प्रकार तत्पर रहते हैं जैसे कन्या-विवाह के अवसर पर अच्छी दहेज देने की क्षमता से हीन पिता अपनी पुत्री को ही सुशिक्षिता और सर्वगुण-सपन्ना बनाने में संलग्न रहता है।

इसी पूँजी पर—थोड़े-से प्रकाशित और अप्रकाशित लेखों पर—उन्हें वह गर्व है जो किसी विश्व-विजयी सम्राट् को अपने समस्त धन-बल, समस्त बाहुबल और समस्त बुद्धि-बल पर होता है। इसी पर उन्हें वह अभिमान है जो धनी पिता को अपार सपत्ति के साथ-साथ दिन-प्रति बढ़ते और सुखी होते अपने अपार परिवार को देखकर होता है। इसी की रक्षा और संवर्द्धन में, धन की देख-रेख में लगे अर्थ-लोलुप सूम की भाँति वे अपने जीवन का सारा अमूल्य समय लगा देते हैं। एक शब्द में, यही पूँजी है जो उनके जीवन की समस्त आशाओं का केन्द्र है। अपने जीवन से निराश होकर भी यदि वे ससार में किसी अभिलाषा से कुछ दिन और जीवित रहना चाहते हैं तो केवल इसी का कुछ सम्मान-सत्कार होता देखने के लिए। विश्व में उनके लिए जीने का यही एक आकर्षण है।

'पर इस व्यावसायिक जगत में उनकी इस पूँजी का क्या मूल्य है? उनके प्राणों के प्राण को, उनके जीवन के सार को, यह व्यावसायिक जगत् किन दामों में खरीदना चाहता है? सक्षेप में, इसका स्पष्ट उत्तर यही है कि भौतिक संघर्ष मे व्यस्त सभ्य मानव समाज, शरीर के रक्त से लिखी हुई पंक्तियो का मूल्य कौड़ियों में आँकता है। ऐसी दशा में यदि उनकी आर्थिक स्थिति शोचनीय हो, तो अधिक आश्चर्य ही क्या है?

आर्थिक स्थिति का संकेत, परोक्ष रूप से उनकी सामाजिक स्थिति की ओर भी है। समस्त ज्ञान, सारी बुद्धि और सभी अनुभवों के सार के सकलन के लिए कुछ ताँबे के टुकड़े खर्च करने में जो समाज हिचकता है, वह इस पूँजीके मालिक का कितना सम्मान करेगा! विद्वान् और विद्या का—गुणवान् और गुण का सम्मान होता था। पर यह न जाने किस बीते अतीत की बात है। आज धनांधों की दृष्टि में वह उनके सेवकों से भी गया-बीता व्यक्ति है; उनके एक इंगित पर अपने संस्कारों का, अपनी आत्मा का हनन करके सत्य को असत्य और असत्य को सत्य वह प्रमाणित कर सकता है—करने पर विवश है। उनके सामने उसकी कोई स्थिति नही, उसका कोई पद नहीं। यह उनके हाथ की कठपुतली है जिसे वे मनमाना नाच नचा सकते हैं।

और स्वय अपनी दृष्टि में उसकी स्थिति क्या होगी? जिसके अनुभव का मूल्य नहीं, जिसके कार्यों का सम्मान नही और जिसके लिए उन्नति के सारे द्वार बंद हैं उसके जीवन में कितना रस होगा? जिसमें आग उगलने की शक्ति है; विष बुझे अस्त्र-शस्त्रों की शक्ति से कहीं भयानक शक्तिवाले साहित्य का जो जन्मदाता है, विधाता है, वही इतनी उपेक्षा और तिरस्कार सहकर भी पुनः इसी अंधकार पूर्ण पथ का पथिक क्यों बना हुआ है? 'निर्लज्ज' और 'स्वार्थी' आदि विशेषणों से विभूषित होकर भी भौतिक जगत् की चाटुकारी वह क्यों करता-फिरता है? क्या कुछ चाँदी के टुकड़ों के लिए ही वह विकल है? अथवा सम्मान का वह भूखा है? इन और ऐसे ही विविध प्रश्नो का उचित उत्तर हम तो नहीं केवल वही दे सकता है जिसने परोपकार के लिए निःस्वार्थ भाव से, अपने शरीर के रक्त का, नेत्रों की ज्योति का, जीवन के रस का और सुखों के सार का होम कर दिया हो। हम तो केवल उसकी उपेक्षा कर सकते हैं; उसकी हँसी उड़ा सकते हैं; क्योंकि हम भी तो इसी भौतिक संघर्षपूर्ण जगत् के सभ्य सदस्य हैं।

—प्रेमनारायण टंडन।

## हिंदू-नारी

लगभग पाँच फीट की दुबली-पतली-नारी, जिसके मन मे यौवन के विलास की लालसा तो है, पर मुख पर काति नही, खुलता हुआ साँवला सा-रंग, और वैसी ही खुलती सफेद धोती धुली हुई ; हाथ में चार चूडियाँ पैर में दो-एक छल्ले, मुख कुछ लम्बा, नाक पतली, आँखें न छोटी न बड़ी, कज्जल की कुछ कालिमा लिये हुए, माथे पर बिंदी कभी जरा छोटी और कभी बडी गहरे लाल रंग की, ओंठ पतले अपनी स्वाभाविक नहीं, पान की लाली लिये हुए, चिकनाये हुए से सूखे, एडी तक नहीं, कमर तक पहुँच सकने वाले, काले-काले बाल. किंचित भूरापन लिये हुए ढीले बँधे हुए बालो के बीच टेढापन लिये हुए सीधी माँग की स्पष्ट रेखा सिंदूर से भरी हुई ।

यही मध्य श्रेणी की सधवा हिंदू-नारी का चित्र है, बनावटी नहीं, स्वाभाविक, सच्चा । चले जाइए अचानक किसी घर मे सरल निरीक्षक की सूक्ष्म दृष्टि और सात्विक हृदय की सहृदय भावना लेकर, आप देखेंगे इसी से मिलता-जुलता एक चलचित्र ; अपने गृह-कार्यों में संलग्न—ऐसी सलग्नता और एकाग्रता जो निवृत्ति पक्ष के अनुयायियो में दुर्लभ नहीं तो अति सुलभ भी नहीं हो सकती,गभीर परतु दीन प्रसन्नता की क्षणिक आभा से प्रमुदित हो सरल स्वाभाविकता लिये—जिससे हम ग्रामीण युवतियो के भोलेपन की तुलना कर सकते हैं—अपने गुरुजनों की ओर देखती हुई, कुछ अलसाई हुई-सी फुर्तीली युवती की मूर्ति अपका ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर ही लेगी । सहृदयता को हाथ से न जाने दीजिए; पर द्रवित भी न हो जाइए; उसके सामने मत जाइए, पर उसके सामने से हटिए भी मत, अदृश्य रहिए, साथ ही चित्र की एकाग्रता का भी ध्यान रखिए; तब आप देखेंगे, उसे पाँच बजे सबेरे के पहले से,और रात के दस बजे के बाद तक जुटकर, अविश्रात परिश्रम करते हुए । दीन प्रसन्नता की मन्द आभा बालिका सी बनकर उसके मुख-प्रागण में दिन भर खेलती रहेगी । किसी ने यदि झिड़क

दिया तो कुछ क्षण के लिए दीन प्रसन्नता म्लान हो जायगी, जैसे सरल बालिका थक गयी है; परंतु दूसरे ही क्षण पिछली बातें भूलकर मानों कुछ हुआ ही न हो, फिर मुदित हो वह पूर्ववत् प्रसन्न हो जायगी, जैसे बालिका विश्राम के पश्चात् प्रफुल्लित होकर फिर खेलने लगती है। यही उसके जीवन का क्रम है।

इस चल-चित्र के सरक्षक हैं सास ससुर, पति तथा अन्य गुरुजन। वे यदि प्रसन्न हैं तब सौभाग्य का संतोषप्रद सुख पाकर वह अत्यन्त सतुष्ट हो संसार में अपने को बड़ी भाग्यशालिनी समझने लगती है। इसके विपरीत, यदि वे उसकी समस्त सेवाओं से भी असतुष्ट हो, दिन-रात उसे झिड़कियाँ सुनाया और उसके सम्बन्ध के कारण अपना भाग्य कोसा करते हैं तब भी वह वैसी ही शाति और सहनशीलता का परिचय देती है। उसका हृदय भले ही रोया करे, मन में अपने को चाहे वह ससार का सबसे हीन प्राणी भले ही समझा करे, पर उसके इन हृदय-विदारक, करुण भावों की कोई रेखा उसके मुख पर नहीं दिखायी देगी। यदि उसका पक्ष लेकर प्रशंसात्मक शब्दों में कहा जाय तो कहेंगे कि आत्मबल का, सहन-शक्ति का इतना ज्वलन्त और प्रभावोत्पादक उदाहरण कम देखने में आता है। पर यदि यथार्थ रूप से कहा जाय तो कहना पड़ेगा कि आततायियों के अत्याचार सहन करने की इस सवाक् प्राणी की यह विवश पराधीनता-सम्बन्धी दशा मूक पशु की पराधीन विवशता की दशा से कहीं अधिक करुण और दयनीय है। अपनी दशा पर यह सोच सकती है, पर कुछ कहने का इसे अधिकार नहीं। यह सब कुछ सहने पर विवश है, पर उसका प्रतिवाद करने का, विरोध करने का, अपनी सफाई देने या प्रार्थना करने का इसे कोई अधिकार नहीं। यह रो सकती है पर उफ करने का, आँसू बहाने का इसे कोई अधिकार नहीं। परिवार में वह सभी को सेविका है, दासी है. परन्तु इसका उसे कभी दुःख नहीं होता—इसको तो वह अपने गर्व की, गौरव की बात समझती है। उसे दुःख रहता है तो

केवल इस बात का कि उसके परिश्रम का, अध्यवसाय का पुरस्कार देना तो दूर रहा, उसकी सेवाओं को हँसकर स्वीकार करनेवाला भी कोई नहीं। निरीह प्राणी को निरीह समझनेवाला भी कोई नहीं, उस सवाक् प्राणी को सवाक् बनने का कोई अधिकर नहीं। हाय री पराधीनता!

फिर भी वह जीना चाहती है। उसके पास पैसा नही हैं, उसका सम्मान नहीं है, कोई उसकी बात पूछनेवाला भी नही है। फिर भी वह जीना चाहनी है। क्या अपने लिए? क्या भावी सुखो की लालसा से? क्या कभी उसके भी दिन फिरेंगे—इस आशा से? नहीं। वह जीना चाहती है अपने उन अनाथ बच्चो के लिए जो सनाथ होते हुए भी अनाथ हैं, अपने उस पति के लिए जो 'पति' होकर भी 'पति' का व्यवहार नही करता, अपने उन सास-ससुर के लिए जो माता-पिता के समान होते हुए भी उसे अपनी पुत्री नहीं समझते और वह जीना चाहती है अपने उस हिंदू समाज के लिए जो उसके भरण-पोषण का, उसके सुख-संतोष का, उसकी शाति और मर्यादा का रक्षक होते हुए भी उसकी रक्षा नहीं करना चाहता—सब कुछ देखते-सुनते भी जो अपनी आँख मूँद लेने मे, कानों मे तेल डाल लेने में अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझता है।

कभी-कभी उसकी सखियाँ आ जाती हैं। अपनी 'समदुखिनियो' को पाकर, उनके गले से गले लगकर वह थोड़ी देर रो लेती है। इसी में उसे शाति मिलती है। कभी-कभी उसके सास-ससुर सहानुभूति के स्वर में, दूसरे के सामने, उससे अपने प्राकृत स्वर में—कृत्रिम स्नेह-सिंचित तथापि परम वांछित स्वर में—दो-एक मीठे शब्द कह देते हैं। तभी वह मुस्करा देती है। उसका दुख हल्का हो जाता है। कभी-कभी उसके पतिदेव आवश्यकता के वशीभूत हो, प्राकृतिक सुख की लालसा से, चाटुकारी-सी करते हुए, उसके पास आते हैं। मीठी मीठी बातें सुन कर वह मुस्करा देती है। थोड़ी देर के लिए वह अपना दुख भी भूल जाती है। कभी-कभी एकांत में बैठ कर वह

अपने भोले-भाले बच्चे को छाती से चिपटाकर देखने लगती है उसका भोला-भाला मुख,सुनती है उसकी भोली-भाली बातें । तब वह आनन्द में विभोर हो जाती है ।

तब क्या इन्हीं अवसरों के लिए वह जीना चाहती है ? नहीं। वह जीना चाहती है अपनी जिंदगी के दिन पूरे करने के लिए, अपने पूर्व कर्मों का फल भोगने के लिए। जिस दिन उसकी यह अभिलाषा पूर्ण होगी उस दिन उसे सच्चा सुख मिलेगा।

—प्रेमनारायण टंडन ।

## भैया साहब

भगवान कृष्ण की जन्म-भूमि में पैदा उनके भक्तों को श्याम वर्ण बहुत प्रिय है। हमारे भैया साहब भी' साँवले हैं और युवावस्था में उनके परिवार के लोग या इष्ट-मित्र तो नहीं ; पर उनकी सुसराल की स्त्रियाँ उनकी नाक-नकस और चेहरा देख कर 'सलोने' विशेषण का प्रयोग बड़े चाव से उनके लिए करतीं थीं। हम उनके कथन का समर्थन वैसी ही दबी जबान से कर सकते हैं, जैसी दबी जबान से काँग्रेस मे सम्मिलित हमारे हिन्दू भाई साम्प्रदायिकता के नाम पर मार खाकर महासभा का समर्थन करने लगते थे। कद भैया साहब का साधारण है; और शरीर भी न तो दुबला-पतला है और न मोटा-ताजा, परन्तु ईश्वर की दया से दिन-भर निश्चिंत रहने और पूर्वजो की दया से, दिन भर मस्त पड़े रहने के कारण, उनके तोंद निकल आयी हैं। हर एक आदमी की दृष्टि उनकी स्थिति की ओर संकेत करनेवाली इस तोद पर नहीं पड़ती; ठीक उसी तरह जिस तरह बढ़िया गेटअप की पुस्तक के गुण-दोष तक, साधारण पाठक की दृष्टि नहीं पहुँच पाती।

भैया साहब का गेट-अप हम अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगों की निगाह में बढ़िया नहीं है। उनकी वेश-भूषा इतनी मामूली और सादी है कि लोग

धोखा खा जाते हैं। उनके पूज्य पिता जी उन्हें समझाया करते थे—'बेटा, देखो, वकीलों, डाक्टरों और हकीमो के सामने फटेहाल जाया करो, नहीं तो ये जोंक की तरह चिपटकर तुम्हें चूस डालेंगे।' इसी तरह अपने गुरू जी से उन्होंने सुना था कि कपड़े पहनने का उद्देश्य सिर्फ इतना ही है कि शरीर की रक्षा हो जाय। भैया साहब को ये दोनों उपदेश गिनती-पहाड़े की भाँति अच्छी तरह याद हैं। पूज्य पिता जी का सम्मान करने के लिए उन्होंने उनकी बात पर अच्छी तरह अमल किया है और वकील, डाक्टरों और हकीमो के सामने जाने की बात भूलकर चौबीसों घण्टे अपनी वेश-भूषा वैसी ही बनाये रखते हैं, जैसी रखने की पूज्य पिता जी आज्ञा दे गये थे।

गुरू जी का सम्मान करना भी वे नहीं भूले हैं। वस्त्र तो वस्त्र वे भोजन भी इतना और ऐसा ही करते हैं, जिससे शरीर की रक्षा होती रहे। शरीर के और व्यापारों में भी वे इसका बड़ा ध्यान रखते हैं। उदाहरण के लिए, उन्हे मालूम है कि सिर मे तेल डालने से दिमाग तर रहता है, इसलिए वे सिर में उन्हीं दिनों तेल लगाते हैं, जब कुछ दिमागी काम करने के लिए उसे तर रखने की जरूरत होती है। कभी-कभी उनके इष्ट-मित्र जब उनकी हैसियत की दुहाई देते हुए कहते हैं कि भैया इस शरीर से तुम्हें बड़े-बड़े काम करने हैं, इस पर इतना अत्याचार न करो, तब आप मुस्कराकर कहते हैं—साहब, सादा जीवन और सादा भोजन की बात तो सभी जगह लिखी है; मुझे अपनी सादगी ही पसन्द है। हमारे गाँधी जी भी तो कहते थे कि सादगी से रहा करो। समझ में नहीं आता, तुम अपने को उनका भक्त कैसे कहते हो, जब खुद मोटरो में घूमते हो, बढ़िया माल उड़ाते हो, कीमती कपड़े पहनते हो और आराम से बँगले मे रहते हो?

भैया साहब इस समय पचासे को पार कर रहे हैं। वे पढ़े-लिखे तो राम का नाम ही हैं, पर शिक्षा का सवाल होते ही कह उठते हैं—मैंने दुनिया देखी है। दुनिया देखना ही तो सच्ची शिक्षा है। आज

तुम्हारे पढ़े-लिखे जो युवक विश्व-विद्यालयों से निकलते हैं; पूछो उनसे कि तुमने अब तक क्या सीखा ? बस, बगलें झाँकने लगेंगे। मै तो पिता जी का बड़ा उपकार मानता हूँ कि उन्होंने मुझे ऐसी सत्यानाशी शिक्षा से बचा लिया।

सच्ची बात तो यह है कि इनके पिता जी दूकान करते थे। उसकी देख-भाल के लिए एक आदमी की जरूरत थी। नौकर वे रखते नहीं थे; क्योंकि किसी पर उन्हें विश्वास न होता था; इसलिए उन्होने अपने सुपुत्र को पाँच ही वर्ष की अवस्था से साथ बैठाना शुरू किया। इस तरह भैया साहब की स्कूली शिक्षा की जड ही कट गयी। फिर भी उनके पिता जी को भैया साहब की पढ़ाई की चिंता थी अवश्य। इसलिए एक मिडिल पास से उन्होंने अपने सुपुत्र को पढ़ाने को कहा, २) महीने पर वे घण्टा भर पढाने को राजी हो गये। मास्टर साहब को दूकान पर ही पढाने आना पड़ता था। घड़ी बेचारे के पास थी नहीं, इसलिए एक घण्टा कभी-कभी एक पहर से भी बड़ा हो जाता था। गरीब मास्टर के पास और कोई काम था नहीं। बेचारा चुपचाप मान लेता, पर पिता जी की यह शर्त कि महीने मे कोई छुट्टी न होगी, बेचारे को बड़ी खलती थी। दुर्भाग्य से अपनी बीमारी के कारण जब वह चार दिन न आ सका, और साढ़े चार आने काटकर उसकी मजदूरी दी गई, तब दूसरे दिन से उसने आना बन्द कर दिया। प्रिय पुत्र की शिक्षा के लिए चिंतित पिता ने दो एक मास्टर और रखे, पर सबकी नौकरी इसी तरह छूटी। अन्त में लाला साहब ने भी समझा, उनके सुपुत्र के भाग्य में विद्या है ही नहीं और उसकी कुछ जरूरत भी नहीं है। काम लायक हिसाब; अर्थात् सौ तक गिनती और बीस तक पहाड़े के साथ-साथ अद्धा, पौना उन्होंने रटा दिया। बस, भैया साहब की पढाई समाप्त हो गयी।

स्वभाव भैया साहब का बड़ा कोमल है। अहिंसा के वे पक्के पुजारी हैं। जीवों पर वे बड़ी दया करते हैं। किसी को सताना तो वे नहीं चाहते, पर हिसाब के मामले में किसी से भी रू-रिआयत नही करते।

उनकी दो बड़ी दूकानें हैं और लेन-देन का पुश्तैनी काम भी वे बड़ी लगन से करते हैं। सच पूछिए तो उन्हें लेन-देन से जितनी आमदनी है, उसकी आधी भी दूकानों से नहीं। दूकान के हिसाब-किताब और लेन-देन में व्याज के मामले को छोड़कर कभी वे झूठ नहीं बोलते। दूकान और लेन-देन की बातों में भी जब वे झूठ बोलते, तो मन ही मन कृष्ण का नाम लिया करते हैं। कोई बड़ा आदमी आ जाने पर वे पूजा-पाठ रोक भी देते हैं।

उनके चरित्र और स्वभाव की इन विशेषताओं ने उन्हें अपने असामियों का 'भैया साहब' बना दिया है। इसके पहले वे दूकान के 'लाला जी' थे। समय के फेर से इस शब्द के अर्थ में जो विशेषता और नवीनता आ गयी है, वह समझने के बाद इन्हे 'लालाजी' से घृणा हो गयी और तब आप धीरे-धीरे 'भैया साहब' बने। उनके असामी जिस दिन व्याज देने उनके पास आते हैं, उस दिन आने के पहले और बाद, 'महाजनों' के लिए प्रयुक्त होने वाले 'खून चूसने वाला' जैसे पदों के पर्यायवाची शब्दों और लखनऊ के इक्केवालों के एकाध विशेषण के साथ 'लाला का बच्चा' कहकर उन्हें कोसते हैं, पर उनके आगे खिसियायी हँसी हँसकर 'भैया साहब' पुकारते बेचारों का मुँह सूखता है। उनके मित्रों ने एक-आध बार इस दुरंगे व्यवहार का जिक्र किया; परन्तु व्यवहार-कुशल भैया साहब ने मुस्कराते हुए यह कहकर बात खत्म कर दी कि पीठ पीछे तो लोग बादशाह को भी बुरा भला कहा करते हैं।

—प्रेमनारायण टंडन

## परीक्षा

परीक्षा का कड़ुवा अनुभव तो लगभग सारे ही विद्यार्थियो को होता है। परीक्षा के दिनो को याद करो; कितनी घबड़ाहट और कितनी चिंता रहती है। ज्यों-ज्यों परीक्षा निकट आती जाती है, व्यग्रता बढती जाती है। जब तक वह कठिन दिन बीत नहीं जाता, सर पर मानों भूत सवार

रहता है। खाना, पीना, सोना सभी हराम रहता है। कोई दो-दो बजे तक लालटेन जलाये पढ़ रहा है, तो किसी ने रात भर न सोने की ही कसम खाली है।

किन्तु परीक्षा केवल विद्यार्थियों के लिए ही इतनी भयानक नहीं है। वह सदा से और सभी के लिए भयानक रही है। बड़े-बड़े ऋषि-मुनि और महात्मा इसके नाम से घबड़ाते रहे हैं। इसने बड़े-बड़ों की मान-मर्यादा पर पानी फेरा है। न जाने कितनों का पर्दा पलटा है; न जाने कितनों की कलई खोली है। सारी आयु वीर और बुद्धिमान कहलाने वाले एक दिन में इसी परीक्षा के कारण अपनी वीरता, विद्वता और बुद्धिमत्ता वाले के पैतृक अधिकार से वञ्चित कर दिये गये।

महात्मा ईसा का कहना है, 'हे भगवान्, तू मुझे परीक्षा से बचा और पापों से दूर रख' —सचमुच, परीक्षा तलवार की धार, भाले की नोक, तोप के गोले, शेर की दाढ़ और साँप के दाँत से भी बढ़ कर भयकर और कठिन है।

फिर भी जो वीर हैं, वे इससे नहीं डरते। वह परीक्षा को गले का हार समझते हैं। वे परीक्षा को आमन्त्रित करते हैं और वीरतापूर्वक उसका सामना करते हैं। उसका मुकाबला करने में ही उन्हें आनन्द आता है। परीक्षा की याद उनके हृदय में उत्साह और उमंग पैदा कर देती है, उनके अंग-अंग फड़का देती है। महात्मा ईसा का सूली पर चढ़ना, राणाप्रताप का मारे-मारे फिरना, सुकरात और महर्षि दयानन्द का जहर पीना, यह सब परीक्षा को छाती से लगाना था।

परीक्षा इतनी भयावह होने पर भी संसार की आवश्यकता है। नीर-क्षीर, पुण्य और पाप के विवेक का यही एक साधन है। इसके बिना मामूली पत्थर और रत्न में कोई क्या भेद बता सकता है? अच्छे और बुरे को कोई कैसे अलग कर सकता है? कौन कह सकता है कि वह साधु के वेश में लम्पट है अथवा यह दूध के रूप में विष है?

बिना परीक्षा सचाई का कोई मूल्य नहीं। परीक्षा ही अच्छाई और बुराई की, योग्यता और अयोग्यता की, विद्वत्ता और मूर्खता की, बल और निर्बलता की कसौटी है। यदि वह न होती तो लम्बे-लम्बे तिलक लगाकर सभी विद्वान् और महात्मा बन जाते। सच्चे महात्मा और विद्वानों को कौन पूछता? दो-चार पुस्तकें पढ़कर सभी अपने को बी० ए० और एम० ए० बताते। आज राणा प्रताप और साधारण राजपूत में भेद कैसे समझा जाता?

परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाने पर मनुष्य का बड़ा मान बढ़ता है। उससे उसका कुछ घटता नहीं, बल्कि समाज में भीतर और बाहर उसका स्थान कुछ बढ़कर ऊँचा हो जाता है। लोगों के हृदय मे उसके प्रति सम्मान और आदर के भाव उत्पन्न हो जाते हैं। परीक्षा मनुष्य की छिपी हुई शक्तियां को संसार के सामने खोलकर रख देती है। उससे किसी को घबड़ाना नहीं चाहिए। मन में पहले से ही भय लाना उसे—उसकी वास्तविक भयंकरता से भी अधिक भयकर बना देती है। परीक्षा सामने आ जाने पर उसका वीरता और साहसपूर्वक सामना करना ही नरोचित धर्म है। उससे पीछे हटना, मुँह छिपाना और पीठ दिखाना ही कायरता है। परीक्षा की तैयारी पहले से करने से वह उतनी ही सरल हो जाती है, जितनी वह पहले कठिन प्रतीत होती है। परीक्षा को समय की तरह "आगे से ही पकड़ना चाहिए"। तभी वह अपने काबू मे की जा सकती है।

हिन्दू-धर्म-शास्त्र परीक्षा के उदाहरणों से भरे पड़े हैं। बड़े से बड़े महापुरुष को परीक्षा देनी पड़ी है, चाहे वह किसी रूप मे क्यों न हो। हिन्दू-धर्म जिन्हें भगवान् समझता है, उन्हीं राम, कृष्ण, शिव और ब्रह्म को समय-समय पर परीक्षा के घाट उतरना पड़ा है। राजा हरिश्चन्द्र को आज बच्चा-बच्चा जानता है। इसका कारण केवल यह है कि वे सच्चाई की परीक्षा में उत्तीर्ण हो गये थे। प्रह्लाद ने कैसी-कैसी कठिन

परीक्षाओं का सामना किया, और इसीलिए प्रह्लाद, प्रह्लाद हो गये। ध्रुव और भीष्म पितामह परीक्षा द्वारा ही बनाये हुए ध्रुव और भीष्म हैं।

परीक्षा जितनी भयङ्कर है उतनी ही मनोहर है, जितनी कठिन है उतनी ही सरल है। परीक्षा कुलिश से भी कठोर और कुसुम से भी कोमल है। वह वीरों के लिए सुगन्धित पुष्पों का हार है और कायरों के लिए भयावह तलवार की धार है।

## मेरे मित्र

मेरे मित्र ईश्वरशरण हैं, जिन्हें मै 'भडभड़िया' दोस्त कहता हूँ। ये बहुत भले आदमी हैं। मेरी और उनकी मित्रता बहुत पुरानी और बेतकल्लुफी की है, पर उनके स्वभाव मे यह है कि दो मिनट निचला नहीं बैठा जाता। जब आयेंगे शोर मचाते हुए, चीजों को उलट-पुलट करते हुए। इनका आना भूचाल के आने से कम नहीं है। जब वे आते हैं, मै कहता हूँ, कोई आ रहा है, कयामत ( प्रलय ) नहीं है। इनके आने की मुझे दूर से खबर हो जाती है, यद्यपि मेरे लिखने-पढ़ने का कमरा छत पर है। यदि मेरा नौकर कहता है कि 'वे इस वक्त काम मे बहुत ही निमग्न हैं' तो वे फौरन ही चीखना शुरू कर देते हैं—'कम्बख्त को अपने स्वास्थ्य का भी तो ध्यान नही'—( नौकर से ) 'सोहन, कब से काम कर रहे हैं' ? 'बड़ी देर से'। शिव, शिव, बस मैं एक मिनट इनके पास बैठूँगा। मुझे खुद जाना है। छत पर होंगे न ? मैं पहले ही समझता था।' यह कहते हुए वे ऊपर आते हैं और दरवाजे को इस जोर से खोलते हैं कि मानो कोई गोला आकर गिरा हो। आज तक उन्होंने दरवाजा खटखटाया नहीं और आँधी की तरह दाखिल होते हैं।

अहाहा ! आखिर तुम्हें मैंने पकड लिया। पर देखो, मेरे कारण अपना लिखना बन्द न करो, मै हर्ज करने नही आया। ओहो, कितना लिख डाला है ! कहो तबियत तो अच्छी है ? मै तो सिर्फ यही पूछने आया था। ईश्वर जानता है, मुझे कितना हर्ष होता है कि

मेरे मित्रो में एक आदमी ऐसा है जो सुलेखक कहकर पुकारा जा सकता है। लो, अब जाता हूँ, बैठूँगा नहीं, एक मिनट ठहरने का नहीं। तुम्हारी कुशल मालूम करनी थी, बस! यह कह कर वे बड़े प्रेम से हाथ मिलाते हैं और अपने जोश में मेरे हाथ को इस कदर दबा देते हैं कि उँगलियों मे दर्द होने लगता है और मै कलम नहीं पकड़ सकता। यह तो एक ओर रहा, अपने साथ मेरे सब विचारों को भी ले जाते हैं। विचार-समूह को जमा करने का प्रयत्न करता हूँ, पर अब वह कहाँ। यदि देखा जाय तो मेरे कमरे में वे एक मिनट से अधिक नहीं रहे, तथापि यदि वे घण्टों रहते तो इससे ज्यादा नुकसान नहीं करते। क्या मै उन्हे छोड़ सकता हूँ? मै इससे इनकार नहीं करता कि उनकी मेरी मित्रता बहुत पुरानी है और वे मुझसे भाइयों की तरह प्रेम करते हैं। पर मै उन्हे छोड़ दूँगा, चाहे कलेजे पर पत्थर रखना पड़े।

और लीजिए, दूसरे मित्र विश्वनाथ हैं। ये बाल-बच्चों वाले आदमी हैं और रात-दिन इन्हीं की चिन्ता में रहते हैं। जब कभी मिलने आते है, तो तीसरे पहर के करीब आते हैं, जब मै काम से निबट चुकता हूँ। पर इस कदर थका हुआ होता हूँ कि जी यही चाहता है कि एक घण्टे आरामकुरसी पर चुपचाप पड़ा रहूँ। पर विश्वनाथ आये हैं, उनसे मिलना जरूरी है, उनके पास बातें करने लिए सिवाय अपनी स्त्री और बच्चों की बीमारी के और कोई मजमून ही नही। मै कितनी ही कोशिश करूँ, पर वे उस विषय से बाहर नही निकलते। यदि मैं मौसम का जिक्र करता हूँ तो वे कहते है, हाँ, बड़ा खराब मौसम है। मेरे छोटे बच्चे को बुखार आ गया, मझली लड़की खाँसी से पीड़ित है। यदि पोलिटिक्स या साहित्य-सम्बन्धी चर्चा प्रारम्भ करता हूँ तो वे (विश्वनाथ) फौरन फरमाते है कि भाई आजकल घर-भर बीमार हैं। मुझे इतनी फुर्सत कहाँ कि अखबार पढ़ूँ। यदि किसी सभा-सोसाइटी में आते हैं तो अपने लड़कों को जरूर साथ लिए आते हैं। और हर एक से बार-बार पूछते रहते हैं कि तबियत तो

नहीं घबराती ! कभी-कभी नब्ज भी देख लेते हैं और वहाँ भी किसी से मिलते हैं तो घर की बीमारी ही की चर्चा करते हैं।

—पद्मसिंह शर्मा

# महाकवि तुलसीदास

हिंदी के सर्वश्रेष्ठ कवि तुलसी की प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। उनके रचे १३ ग्रंथ—'रामचरित मानस', 'विनयपत्रिका', 'गीतावली', 'कवितावली', 'सतसई', 'दोहावली,' 'कृष्णगीतावली', 'जानकी-मंगल', 'पार्वतीमंगल, 'रामलला नहछू', 'बरवै', 'वैराग्यसदीपनी', 'रामाज्ञाप्रश्न', प्रसिद्ध हैं तुलसी के प्रादुर्भाव के समय साहित्य-रचना के लिए व्रज और अवधी दो भाषाएँ प्रचलित थीं। कविगण केवल एक को अपनाया करते थे। तुलसी ने अपने ग्रंथ दोनो मे रचकर, दोनो पर अपना पूर्ण अधिकार दिखाया है। उनके 'मानस', 'जानकी-मंगल', 'पार्वती मगल', रामलला नहछू' और 'बरवैरामायण' की भाषा शुद्ध अवधी है और 'विनयपत्रिका' 'गीतावली', 'कृष्णगीतावली', और 'कवितावली', की व्रज भाषा। भाषा पर अधिकार के संबध मे इनकी दूसरी विशेषता यह है कि उनकी अवधी जायसी की भाषा से परिमार्जित और अधिक साहित्यिक है और व्रजभाषा सूर की भाषा से अधिक कोमल और अनुप्रास-युक्त। शुद्ध देशी-भाषा की मधुरता और कोमलता भी इनकी कविता में मिलती हैं तथा सस्कृतशब्दावली के प्रभाव-स्वरूप साहित्यिकता और प्रौढ़ता भी। प्रसग के अनुसार भाषा का सर्वत्र प्रयोग करने मे भी इन्होंने अपनी कुशलता दिखायी है।

भाषा की तरह ही तुलसी ने अपने समय में प्रचलित सभी काव्य-शैलियाँ अपनायीं। इनके समय मे मुख्यत: पाँच शैलियों में रचना की जाती थीं। तुलसी ने सब पर अपना अधिकार दिखाया। वीरगाथा काल की छप्पयशैली और भाटों की कवित्त-सवैया शैली दोनों हमें 'कविता-वली' में देखने को मिलती हैं। विद्यापति और सूरदास की गीत-शैली में 'विनयपत्रिका', 'गीतावली' और 'कृष्णगीतावली' की रचना की गयी है।

अपभ्रंशकाल से चली आने वाली नीति और सूक्तिशैली, 'सतसई' 'दोहावली' और 'रामाज्ञा' में तथा ईश्वरदास द्वारा प्रचलित दोहा-चौपाई शैली, जिसे सूफी कवि अपना चुके थे,'रामचरितमानस' मे देखने को मिलती है। इस सम्बन्ध में ध्यान रखने की बात यह है कि उनके किसी भी ग्रंथ में बनावटीपन, शिथिलता या पिंगल का कोई दोष हमें नही मिलता।

वर्ण्य विषय को अपनाने में तुलसी की सबसे बडी विशेषता है जीवन के समस्त व्यापारों का वर्णन करना। हिंदी के अन्य कवियों ने जीवन के एक ही पक्ष पर विचार करके अपनी कविता का क्षेत्र संकुचित कर दिया। तुलसी, इसके विपरीत, जीवन की सभी अवस्थाओं का दर्शन अपने पाठकों को कराते हैं। मानव हृदय की कोमल और प्रकृत भावनाओं के उत्तर-चढाव और मानसिक द्वंद्व का बड़ा मनोवैज्ञानिक विश्लेषण हमें उनके ग्रंथों मे मिलता है। दूसरी बात यह कि राम-कथा के अत्यंत मार्मिक स्थल उन्होंने चुने हैं। 'मानस' में तो कथा-शृंखला बनाए रखने के उद्देश्य और महाकाव्य के बंधन से, उन्हे नीरस स्थलों का भी चलताऊ वर्णन करना पड़ा, परन्तु 'कवितावली' और 'गीतावली' में कवि के मार्मिक स्थलों के चुनाव और उनके वर्णन में अपनी सहृदयता और प्रतिभा का पूरा-पूरा परिचय दिया है। तुलसी की मौलिक और नवीन प्रसंगों की उद्भावना ऐसे ही स्थलों पर देखनी चाहिए।

कवि तुलसी स्वय तो ससार से विरक्त थे; परंतु अपने पाठकों को गार्हस्थ्य जीवन का सुख लूटने के लिए ही उत्साहित करते हैं। ऐहिक उन्नति की पराकाष्ठा के लिए प्रयत्नशील व्यक्तियो का तिरस्कार तुलसी ने अवश्य किया है; परंतु राम की भक्ति करनेवाला व्यक्ति सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक क्षेत्रो में उच्छृखलता दिखाने पर भी तुलसी की दृष्टि में क्षम्य है। मानसिक शांति और आध्यात्मिक उन्नति के लिए ऐसा सरल मार्ग किसी भी कवि ने अपने पाठकों को न दिखाया होगा।

राम के प्रति तुलसी की भक्ति का आदर्श 'चातक-प्रेम-वर्णन' माना

जा सकता है। मेघ के प्रति चातक का जैसा अनन्य, निःस्वार्थ और निष्काम प्रेम है, तुलसी भी अपने राम के प्रति वैसी ही भक्ति रखना चाहते हैं। पत्थर और वज्र की चोट खाकर भी जिस प्रकार चातक का प्रेम पूर्ववत् बना रहता है, वैसी ही अटल भक्ति सच्चे भक्त में होनी चाहिए।

अतिम बात यह है कि तुलसी ने सामाजिक और धार्मिक क्षेत्रों में समकालीन स्थितियो से अपने पाठकों को परिचित कराकर, सभी का व्यावहारिक रूप जिसे तुलसी आदर्श समझते थे, बतलाया। भक्ति, ज्ञान और वैराग्य की मूल बातें अपनाकर सरल मार्ग उन्होंने दिखलाया और सगुण-निर्गुण का झगडा भी दूर किया। इस प्रकार वे समाज और धर्म-सुधारक के रूप में हमारे सामने आते हैं। परंतु सुधारक से बढकर वे कवि और आचार्य हैं। काव्य के कलापक्ष और भावपक्ष, दोनो हमे उनके ग्रंथों मे उन्नत रूप मे मिलते हैं। इनमें केवल कलापक्ष के संबंध में इतना और कहना है कि उनके सभी ग्रंथो मे स्वाभाविक और विषय को चमत्कृत रूप से स्पष्ट करने वाले अलंकारो की प्रचुरता है। 'मानस' के कुछ लबे साग रूपक उनकी वर्णन-कुशलता प्रकट करते हैं तो छोटे हृदय को मुग्ध।

सारांश यह कि किसी एक विषय मे कोई आलोचक भले ही किसी कवि-विशेष को सर्वश्रेष्ठ कह ले, परंतु सम्मिलित रूप से विचार करने पर सभी को तुलसीदास को ही हिंदी का सर्वोत्तम कवि मानना पड़ता है।

—प्रेमनारायण टंडन

## महाकवि सूरदास

कृष्ण-भक्ति-शाखा के सर्वप्रधान कवि सूरदास के लगभग छः हजार पदों के तीन संग्रह—सूरसागर, सूरसारावली और साहित्य-लहरी—हमें प्राप्त हैं। इनमें से प्रथम ग्रन्थ, सूरदास का सबसे प्रसिद्ध ग्रथ है। इसमें कृष्ण की बाल-लीला, मथुरा-प्रवास,

गोपी-विरह, उद्धव-गोपी-संवाद आदि का विशद वर्णन है। भागवत के आधार पर इसकी रचना केवल इस कारण मानी जाती है कि इसमें कृष्ण-कथा उसी क्रम से मिलती है और एक स्कंध में उतनी ही कथा है जितनी भागवत में। उक्त सभी विषयों का प्रतिपादन कवि ने पूर्ण स्वतंत्रता से करके अपनी अद्भुत प्रतिभा और मौलिकता का परिचय दिया है। सूरसारावली, जैसा नाम से स्पष्ट है, सूरसागर का संक्षिप्त संस्करण है। तीसरा ग्रंथ कवि के दृष्टकूटों का संग्रह है।

सूरसागर का सबसे प्रसिद्ध स्कंध दसवाँ है। इसके आरम्भ में कृष्ण-जन्म की कथा है। गोकुल से ब्रज पहुँचकर कृष्ण बाल्यावस्था में पदार्पण करते हैं। इसके पश्चात् शैशवावस्था आती है। इन दोनों अवस्थाओं की कृष्ण-लीला सूर ने बड़े सुन्दर और मधुर ढंग से लिखी है। इस स्कंध के अतिम भाग का प्रमुख विषय गोपी-विरह है। कृष्ण जिन गोपियों के साथ शैशवावस्था में खेला करते थे, जिनके साथ नाचते-गाते थे, उन्हीं को रोते-कलपते छोड़कर वे मथुरा जाने को विवश होते हैं। गोपिकाएँ उनके वियोग-जन्य दुख से व्यथित हो, वेदना के गीत गाती हैं। कृष्ण भी उनके लिए दुखी हैं। उन्हें समझाने के लिए वे अपने मित्र उद्धव को उनके पास भेजते हैं। ब्रज में उद्धव गोपियों को ज्ञान की आँखों से निर्गुण ब्रह्म को देखने का उपदेश देते हैं। परंतु गोपियों की सगुण के प्रति उत्कट भक्ति और सच्ची प्रीति है। अतः इन्हें उद्धव के ज्ञानोपदेश से सतोष नहीं होता। उद्धव का पहले तो वे आदर करती हैं, परंतु बाद में कभी उनकी हँसी उड़ाती हैं, कभी नाराज होकर उनसे लौट जाने को कहती हैं। उद्धव-गोपी-सवाद 'भ्रमरगीत' के नाम से प्रसिद्ध है; क्योंकि गोपियों ने उद्धव से जितनी बातें कहीं वे भ्रमर को सम्बोधित करके ही। आशय यह कि सूरसागर में कृष्ण की बाल-लीलाओं और बाल-चापल्य को लेकर वात्सल्य का जैसा सुंदर वर्णन किया गया है उसी प्रकार युवा कृष्ण और युवती गोपिकाओं के प्रेम को लेकर शृंगार रस का। शृंगार-वर्णन के संबंध में सबसे महत्व की बात यह है कि

गोपियो का प्रेम अत्यन्त स्वाभाविक है और "लरिकाई को प्रेम कहो सखि कैसे छूटै" की समस्या हमारे सामने रखता है। शृंगारिक प्रेम से ओत-प्रोत वर्णन में सूरदास प्रेम का कोना-कोना झाँक आये हैं; कोई वृत्ति कोई भावना, कोई स्थिति ऐसी नहीं बची जिसका उन्होंने सूक्ष्मातिसूक्ष्म वर्णन न किया हो। दूसरे शब्दों मे, बाल-प्रकृति और विरह-सम्बन्धी जितनी भी अंतर्दशाएँ हो सकती है और जितने ढंग से उन विविध स्थितियों और दशाओं का वर्णन साहित्य में किया गया है, प्रायः सभी, किसी न किसी रूप में, सूर-काव्य मे वर्तमान हैं। बालक कृष्ण की बाल-लीलाएँ देखकर माता-पिता ही नहीं, अड़ोस-पड़ोस के स्त्री-पुरुषों का मुग्ध होना और फिर उसी के वियोग में माता-पिता, सखी-सखा और सगे-सम्बन्धियों के साथ परिजनों और गुरुजनो का दुखी होना कितना स्वाभाविक और सत्य है! कृष्ण के वियोग में गोपियां के ये कथनः—

(१) निस दिन बरसत नैन हमारे।

(२) अँखियाँ हरि दरसन की प्यासी।

(३) ऊधो अब नहिं स्याम हमारे।

(४) मदन गुपाल बिना या तन की सबै बात बदली!

कितने मार्मिक हैं! इस प्रकार की करुण उक्तियों और अनेक प्रकार के उपालंभो और व्यंग्योक्तियों से यह काव्य भरा पड़ा है। विरह-वेदना और प्रेमातिरेक सम्बन्धी कुछ पद कला की दृष्टि से बड़ी उच्चकोटि के हैं।

सूरसागर के दशम स्कंध में मुरली सम्बन्धी कुछ पद भी हैं। इनमें किये हुये गोपियों के अत्यन्त प्रेमपूर्ण उपालंभ बड़े मधुर हैं। कवि ने मुरली के स्वर में अलौकिक मधुरता भर दी है जिसका प्रभाव जड़ और चेतन सभी पर पड़ता है। कृष्ण का मुरली पर अपार प्रेम देखकर जब गोपियों में ईर्ष्या का भाव उत्पन्न होता है और वे मुरली का भाग्य सराहने लगती हैं तब पाठक कवि की प्रतिभा पर मुग्ध हो जाता है।

सूर के विनय पद भी सुंदर हैं। सरलता और स्पष्टता इनके प्रधान

गुण हैं। 'भरोसो दृढ़ इन चरनन केरो', 'जा दिन मन पंछी उड़ि जैहै' और 'मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै' जैसे पद भक्तों के हृदय का सर्वस्व हैं। सूरदास के कुछ पदों से अलोचकों की धारणा हुई कि वे निर्गुणोपासना के विरोधी थे। परन्तु यह कथन अशुद्ध है। निर्गुण या निराकार परमात्मा पर अविश्वास तो वे नहीं करते थे, पर गान उन्होंने सगुण का ही किया है। साधारण जनता के लिए निर्गुणोपासना अगम समझ कर ही उन्होंने सगुणोपासना को प्रधानता दी है।

सूरदास ने ब्रज की चलती भाषा में कविता की है। यत्र-तत्र मुहावरों और कहावतों का भी सुंदर प्रयोग उन्होंने किया है। प्रौढ़ता की दृष्टि से सूर की भाषा प्रथम साहित्यिक रचना होते हुए भी परिमार्जित है। उसमें मधुरता पर्याप्त मात्रा में है और कोमलता भी। संस्कृत शब्दावली का सहारा न लेकर ऐसी सुंदर भाषा में रचना करना सूर का ही काम है। उनकी भाषा में कुछ दोष भी हैं; परन्तु उक्त विशेषताओं के सामने हम उन्हें नगण्य समझते हैं। 'साहित्य लहरी' के कूट पदों को छोड़ कर उनकी भाषा प्रायः प्रसाद-गुण-प्रधान कही जा सकती है।

सूरदास की रचना पदों में है। पूत भावनाओं को लेकर रचे गये ये पद गेय हैं। इन्हें देखकर कहना पड़ता है कि सूर ने शायद ही कोई रागरागिनी छोड़ी हो जिसका उदाहरण इसमें न मिल जाय। सूरसागर एक गीत-काव्य है और तत्सम्बन्धी सभी आवश्यक तत्वों का इसमें समावेश है। साधारणतः गीत काव्य की रचना सबद्ध कथा को नहीं, उसके मनोहर और हृदय स्पर्शी स्थलों को लेकर की जाती है। सूरसागर में भी हम देखते हैं कि कृष्ण-चरित्र के अत्यन्त रमणीक प्रसगों का ही विशेष वर्णन किया गया है। उसका प्रत्येक पद पूर्ण है और उसमें हमें कवि की अंतरात्मा के दर्शन होते हैं। हृदय के स्वाभाविक मनोभावों—वात्सल्य प्रेम, विरह, वेदना आदि—से ओत-प्रोत प्रत्येक पद पाठक को मुग्ध कर लेता है। सूर की शैली में यह दोष बताया जाता है कि एक ही भाव उनके अनेक पदों में मिलता है। हमारी सम्मति में, विभिन्न भावनाओं

की प्रवाहपूर्ण व्यंजना के कारण एक ही बात की अनेक अ      ँ होने पर भी पदों में शिथिलता नही आने पाई है। कह सकते हैं कि प्रत्येक लीला के छोटे-बड़े अनेक चित्र भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से खींचे गये है। क्या ऐसे चित्रो से दर्शक ऊब जाता है?

सूर की कविता से साहित्यिकों को जितना आनद हुआ है, भक्तों को उतना सहारा भी मिला है। दोनों दृष्टियों से उसका आज प्रचार है और दिन-दिन बढ़ता ही जाता है। परन्तु सूर-काव्य के साहित्यिक गुणों के कारण हम उस पर विशेष गर्व करते हैं। हृदय की न जाने कितनी गूढ़-गंभीर भावनाओं और वृत्तियों की व्यंजना और न जाने कितने नवीन विषयों और प्रसंगों की उद्‌भावना करके उन्होंने अपनी अद्‌भुत प्रतिभा का परिचय दिया है। सरसता, मधुरता, कोमलता और स्पष्टता उनके काव्य की विशेषताएँ हैं और भाषा तथा वर्णन-शैली के सम्बन्ध में तो इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि परवर्ती अनेक कवियो ने सूर का असफल अनुकरण करके ही सन्तोष किया है।

—प्रेमनारायण टंडन।

## लौह-पुरुष पटेल

भारतीय स्वतंत्रता के यज्ञ में ऐश्वर्य और सुख के साधनों की आहुति देनेवाली देश की विभूतियों मे सरदार वल्लभ भाई पटेल का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। महान कार्यों का संपादन करने वाले व्यक्तियों में आत्मत्याग, सहनशीलता, निर्भीकता, दृढ़निश्चयता, कुशाग्रबुद्धि और कर्तव्य पालन की कठोरता आदि जिन सद्वृत्तियों की आवश्यकता होती है, सरदार पटेल मे वे सब विद्यमान हैं। इन्हीं के बल पर स्वातंत्र्य संग्राम में भारतीय राष्ट्रप्रेमियों की सेना का नेतृत्व और सचालन वे कुशलता-पूर्वक कर सके और इस दायित्व का निर्वाह अबतक करते आ रहे हैं। ईश्वर से समस्त देशवासियो की ओर से हार्दिक कामना है कि वे इसी प्रकार दीर्घकाल तक हमारा नेतृत्व और मार्ग-प्रदर्शन करते रहें।

वल्लभ भाई महात्मा गांधी के सदैव दाहिने हाथ रहे। आलंकारिक भाषा में हाथ का अर्थ है ऐसा सहायक जिसकी शक्ति पर, बुद्धि पर, योग्यता पर विश्वास किया जाय और जो आतरिक संकेत समझकर ही काम में जुट जाय। सरदार पटेल के प्रति गांधी जी का सदैव ऐसा ही विश्वास रहा। गर्व की बात है कि देश पर संकट के सभी अवसरों पर गांधी जी के इस विश्वास का निर्वाह करने के लिए वल्लभभाई सदैव तत्पर रहे। फलस्वरूप बड़े से बड़ा कार्य इन्हें सौंपकर महात्मा जी सदैव निश्चिंत हो जाते; उन्हें विश्वास था कि सफलता ध्रुव है, वह तो सरदार की दृढ़ता और क्रियाशीलता के पीछे पीछे चलेगी।

सरदार ने देश का नेतृत्व ग्रहण किया; परंतु अन्य नेताओं के समान उन्होंने व्याख्यान अधिक नहीं दिए। जो कुछ भाषण उनके प्राप्त भी हैं, संभव है, कला और साहित्य की दृष्टि से वे सुंदर न समझे जायें, क्योंकि उनमें सरसता, मधुरता और भावों की सुकुमारता का अभाव है। हाँ, ओजपूर्णता और प्रभावोत्पादकता की दृष्टि से वे पूर्ण सफल हैं और जिस स्थिति में उन्होंने कर्मक्षेत्र में पदार्पण किया था उसमें इसी विशेषता से युक्त भाषणों की आवश्यकता थी। उनके व्याख्यानों में गंभीरता है, गहराई है, वे दायित्व-निर्वाह का संदेश देते हैं। उनमें न किसी की स्तुति है, न किसी की प्रशंसा। वे तो केवल इतना संदेश देते हैं, कि बातें मत करो, काम करो, यदि देश के प्रति तुममें कुछ लगन है, देशवासियों के कष्ट देखकर तुम्हें कुछ दुख होता है, तो अपनी पूर्ण शक्ति से काम में जुट जाओ। इसी में तुम्हारा, हमारा, देश भर का कल्याण है।

वल्लभ भाई सफल प्रबंधक या शासक हैं। जिस पद पर भी वे प्रतिष्ठित हुए, अथवा जो दायित्व भी उन्हें सौंपा गया, सफलता पूर्वक उसके संपादन के लिए उन्होंने सदैव कठोर नियमन से काम लिया। इस संबंध में न वे स्वयं कभी असावधान रहे, और न अपने अधीन किसी कर्मचारी की ही ढील सहन की। पद अथवा मान का लोभ उन्हें

कभी अपने कार्यपथ से विचलित न कर सका और सेवा का दम भरने वाले अपने से संबंधित जिस व्यक्ति को उन्होंने कर्तव्य से च्युत होते देखा—समझा कि उसका अमुक कार्य पद और दायित्व की मर्यादा के प्रतिकूल है—उसे उन्होंने कभी क्षमा नहीं किया। बहुत से लोग उनकी इस कठोरता से क्षुब्ध हुए, उनके विरुद्ध प्रचार करने में लग गये। सरदार ने उपेक्षा की हँसी हँसकर उनकी ओर से दृष्टि हटा ली। कर्तव्य के निर्वाह की इस नियन्त्रणप्रियता ने ही उन्हें 'कठोर' विशेषण प्रदान कराया जिसके लिए सरदार पटेल को क्षोभ या असतोष न होकर प्रसन्नता ही है। कारण, इस प्रकार वे उन लोभियो के सपर्क से बच सके जो अनुत्तर दायित्व और चाटुकारिता के विषैले कीटाणु लिए राजनीतिक वातावरण को दूषित करते फिरते हैं।

सरदार पटेल को लौह पुरुष कहा गया है। उनका शरीर, मस्तिष्क और स्वभाव, सबके लिए यह विशेषण उपयुक्त सिद्ध होता है। उनकी आकृति दृढ है और अनेकानेक यातनाएँ सहने की शक्ति रखती है। विचारो के वे दृढ और अडिग हैं। अधिक बोलना उन्हें प्रिय नहीं है, परन्तु सबकी सुनने के बाद जब वे एक बार किसी बात का निश्चय कर लेते हैं तब फिर कोई मानवीय शक्ति उन्हें विचलित नही कर सकती। स्वभाव के भी वे गभीर है। टीन की प्रकृति के व्यक्तियों की तरह न वे छोटी छोटी बातों मे उत्तेजित होते हैं और न प्रसन्न। उनको प्रभावित करने के लिए घटना को भी महान और महत्त्वपूर्ण बनना पड़ता है। और ऐसे अवसरों पर वे घबराते नहीं, परेशान नही होते—हतबुद्धि होना तो बहुत दूर की बात है। विपत्तियों को सामने देखकर वे मुस्कराते हैं-मुस्कराते क्या, खुलकर हँसते हैं मानो वे उनके दुस्साहस की हँसी उड़ा रहे हों और उनका सामना करने को तत्पर हो जाते हैं। —प्रेमनारायण टंडन

## माली

माली को देखा है, परन्तु उसके जीवन को बिरले ही जानते होगे। सरोवर के पश्चिमी कुञ्ज में सहरा, मालती, जुही, चमेली की चित्र-

विचित्र लतिकाओं से छाई हुई एक छोटीसी सुथरी कुटिया है । द्वार पर एक नन्हा सा-बालक और एक पाँच वर्ष की बालिका मिट्टी के घरौंदे बना-बनाकर बिखेर रहे हैं। सामने के चमन में माली बड़े चाव से मिट्टी खोद रहा है और मालिन फलों की रखवाली कर रही है।

नग्न बालक गुलाब की भाँति खिलकर डहडहा रहा है। उसमें वृक्ष की स्थिरता है और पत्तियों की चचलता। बालिका की आँखों में तारों का तेज है और तरंगों की सरलता। उसके बालों मे कुसुम-केशर है और अगो में लताओं का लोच।

माली के मजबूत हाथो मे जादू है और भू पर त्रिदेव का भाव। वह उत्पन्न करता है, रक्षा और पालन करता है और करता है दुष्ट और निकम्मे पौधों का सहार।

मालिन की आँखों मे पुष्पों का प्रेम और हृदय में फलों की परिपंकता और रस भरनेवाला स्नेह-स्रोत है।

माली के पसीने की बूँदें देखी हैं; परन्तु मिट्टी खोदने मे क्या मजा है—यह विरले ही जानते होंगे।

मिट्टी के कण-कण में नव-जीवन और शक्ति है, सुमनो की सुगध है और फलों का माधुर्य है, और है वही आधार भूत, अव्यक्तद्रष्टा, जो जड़ को चेतन और चेतन को जड का रूप देकर माया रचता है और पीठ पर बैठा अन्ध प्रकृति को मनमाने नाच नचाता है।

पसीने की बूँदो में स्वास्थ्य है, शुद्धि है, त्याग और सौंदर्य है, और है अतर विकसित करनेवाला शतदल-कमल-कोष का सार।

पीपल का पत्ता-पत्ता बाल-गोपल का पालना है। बट और नीम, अशोक और कदम्ब माली के पूजनीय गुरु हैं। गुलाब–वेला हरसिंगार चम्पा–कर्णिका माली के बालक और सोन–चमेली, केतकी–केवी निशि-गन्धानिवाली माली की बालिकायें हैं।

आम-इमली, नींबू-नारगी, अमरूद-अनार, कचनार-कचनारी माली के भाई-बहिन हैं।

माली इनके प्रेम में पगा हुआ है—इनके रंग में रँगा हुआ है।
वर्षा की शीतल फुहार से आह्लादित होकर और अंशुमाली के किरण-जाल से जगमगा कर वृक्ष हँसते हैं तो माली हँसता है।
लू की लपटों से झुलसकर लताएँ रोती हैं, तो माली रोता है।
बल्लरी फूलती है, तो माली फूलता है।
तरु फलते हैं माली सफल होता है।
माली का जीवन वनस्पतिमय है।
माली को देखा है; परन्तु उसके जीवन को बिरले ही जानते होंगे।

—ठा० रामसिंह

## पर्वत

मै देख रहा हूँ, सब कुछ देख रहा हूँ। देखना ही तो मेरा काम है। न जाने कितने आये और गये, और मै खड़ा-खड़ा देखता ही रहा। मै निश्चेष्ट हूँ, निष्क्रिय हूँ, जड़ हूँ। न कुछ कह सकता हूँ, न कुछ कर सकता हूँ। बतलाओ, मेरे जीवन की सार्थकता किसमें है?

ससार का यह विशाल कर्मक्षेत्र तुम्हारे लिये है। तुम जाओ। मैं तुम्हें रोक नहीं सकता। अभी तक तुम्हे अपने अन्तस्थल में छिपा रखने की व्यर्थ चेष्टा मैने की। सभी सिर्फ जाने के लिए तो मेरे पास आते हैं। आज तक कोई नहीं ठहरा, तब तुम भला कैसे ठहरोगी? तुम जाओगी और फिर कभी लौटकर नहीं आओगी। तुम लोग लौट आना जानती ही नहीं। तुम आगे बढ़ती जाओगी। तुम्हारी इच्छा का अन्त नहीं, तुम्हारी गति का अवसान नहीं। तुम आगे ही बढ़ोगी। अन्त तक आगे ही बढ़ती जाओगी।

और मै?—मेरी बात क्या तुम समझ सकोगी? जो अपने कल-कल निनाद से विश्व को विमुग्ध कर सकती है जो अपनी क्षिप्र गतिसे ससार को विस्मित कर सकती है, जो अपनी अप्रतिहत शक्ति से भुवन को विह्वल कर सकती है, वह क्या मूक, जड़ और निष्क्रिय बात

समझ सकोगी ? तुममें वाणी है ? तुममें गति और शक्ति है। और मैं ! परन्तु मै अपनी कौन-सी बात कहूँ ? किस आशा से, किस विश्वास से किस मोह से मंने तुम्हें अपने अन्तस्तल में इतने दिनों तक छिपा रखा था। जब तुम बाहर निकलने के लिये जरा चंचल होती थी तब मै यह समझता था कि शायद तुम गिर पड़ो। कौन जानता था कि इस पतन मे ही तुम्हारा निर्वाण है, उसी में तुम्हारी मुक्ति है। गिरते ही तुम्हारी शक्ति प्रकट होगी और वह शक्ति–जिसके लिए कोई बाधा नहीं, कोई विघ्न नही, कोई अवरोध नही।

अभी कुछ ही क्षण हुए तुम मुझसे अलग हुईं और अब कहाँ चली गई ? अब तुम रुकना भी चाहो तो रुक नहीं सकती ! परतु तुम रुकना चाहोगी क्यो ? संसार का आवाहन तुमने सुन लिया। ससार की आवश्यकता तुम्हे मालूम हो गई। तुम अब जाओगी, तुम अब नहीं रुकोगी। मै भी कहता हूँ कि तुम अब जाओ। लोक का कल्याण करो, पृथ्वी को शीतल करो, संतानों का ताप हरा करो। तुम्हारे स्पर्श से ससार पुनीत होगा, उसके अंतस्तल मे पवित्र धारा बहने लगेगी, उसका कालुष्य हट जायगा।

मैं जानता हूँ कि ससार के कालुष्य से कभी तुम्हारा भी हृदय क्षुब्ध हो जायगा। क्षण भर के लिये तुम मे भी कुछ मलिनता आ जायगी। परंतु स्वर्ग का प्रतिबिंब तुम्हारे हृदय पर सदैव पड़ता रहेगा। संसार की मलिनता तुम्हें मलिन नहीं कर सकेगी, ससार का संताप तुम्हारे अन्स्तल मे प्रविष्ट न हो सकेगा। वहाँ सदैव चिर-शाति बनी रहेगी। तुम अपने जीवन-पथ पर निर्भय होकर अग्रसर होगी।

मैने कभी सोचा था—सच्ची बात कहने मे हानि क्या है– कि मैं तुम्हें देखता रहूँगा। तुम्हारा साथ देना तो मेरे लिए असभव है, क्योंकि यदि भाग्य में ऐसा होता तो भगवान मुझे इतना जड़ क्यों बनाता ? परंतु कभी-कभी तुम्हारी दो चार सखियों को मैंने एक परिमित सीमा में ही शान्ति रूप से विनोद करते देखा था। यह बात नहीं कि

उनसे ससार का कल्याण नहीं होता; उनसे भी कितने ही लोगों का उपकार होता है। यह बात अवश्य है कि उनका कार्यक्षेत्र निर्दिष्ट है। वे स्वछन्द नहीं हैं। वे बन्धन मे हैं। मै भी तुम्हे किसी वैसे ही बन्धन में देखना चाहता था। परन्तु क्या तुम्हें बन्धन इष्ट है ? यदि मै जड़ न होता तो क्षण भर तुम्हे रोकने की जरूर चेष्टा करता और यदि तुम्हें अपने ही बन्धन मे रख सकता तो क्या तुम रहना पसन्द करतीं ?

मै कठोर हूँ। मेरा हृदय पाषाणमय है। मेरे अन्तस्थल मे प्रकाश का प्रवेश नही। ज्योति की रेखा से वह कभी उद्भासित नहीं हुआ। वहाँ सदैव अन्धकार ही बना रहता है। निस्तब्धता मेरा जीवन है। निर्जनता मेरी विहार भूमि है। और तुम ? कोमल हो। तुम्हरा हृदय सरस है। सूर्य की रश्मियों से तुम विलास करती हो। भगवान ने मधुर वाणी तुमको दी है। कितने ही बालक-बालिकाओं के कलरव से तुम्हारा स्थान पूर्ण होता है। भला, मै तुम्हारा साथ किस प्रकार दे सकता था ? न जाने विधाता का यह कैसा विधान था जिससे मैने तुम्हारे जीवन के प्रारम्भकाल मे तुमको अटका रक्खा। अब तुम जाती हो तो जाओ। मैं तो यह देखता ही आया हूँ। न जाने कितने आये और गये और मैं देखता ही रहा, चुपचाप खड़े-खड़े देखते रहना ही मेरा जीवन है।

—पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी

## वाणी

जिह्वा सभी को मिली है, किन्तु बोलना बहुत कम लोग जानते हैं। प्रायः लोग कडवी-तीखी बातों में, दूसरे की व्यर्थ निन्दा-स्तुति में वाणी की सार्थकता समझते हैं। उन दिव्य पुरुषो की सख्या अँगुलियो पर ही गिनी जा सकती है, जिनकी जिह्वा में अमृतोपम मधुरता एवं हिम की सी शीतलता रहती है। ऐसे लोगो की वाणी से निराश जीवन को उत्साह मिलता है, नरक की यत्रणा में छटपटाने वाले को धैर्य और आश्वासन मलता है।

यदि हमें बोलना न आवे, तो चुप रहना ही अच्छा है; क्योंकि अनर्गल बचनों से दूसरो को हानि पहुँचा कर हम जिस पाप के भागी बनते हैं उससे बचे रहेगे। यदि बोलो, तो कोकिल की तरह बोलो— जिसकी एक हूक से ही हम अपनी सारी विषमताओं को भूल जाते हैं। वह कृष्णा होकर भी बसंत की रानी बनी हुई है, क्या हमारी जिह्वा वैसी नहीं बन सकती?

तुम गोराई में चन्द्रमा को भी मात करने वाले हो तो क्या, यदि वाणी मे कटु–कुवाक्य भरे पड़े हैं। एक जापानी नीतिकार का कहना है—'रत्न में पड़ा हुआ दाग खराद पर चढ़ाकर निकाला जा सकता है परन्तु हृदय में लगा हुआ कुवाक्य का दाग मिटाया नहीं जा सकता।' यदि हम सदा के लिये दूसरों की आँखो से गिर जाना नहीं चाहते, तो कभी भूलकर भी मुँह से कुवाक्य न निकालें।

ज्ञानी लोग प्रायः मौन-साधन इसीलिये किया करते हैं कि उनकी जिह्वा उनके वश मे रहे। कहीं ऐसा न हो कि कभी आवेश या उत्तेजना में अचानक कोई ऐसा कुवाक्य निकल जाय, जिससे संसार को मुँह दिखाने मे शर्म मालूम पड़े और उस समय ज्ञान एवं विद्वत्ता के होते हुए भी हम अपने को सुखी न कर सकें। मौन साधना जिह्वा को संयम सिखाकर तपस्विनी बनाने के लिये है। जितनी अधिक मौन-साधना की जायगी, उतनी ही अधिक वाणी को सद्गति प्राप्त होगी, तथा आत्मा को विश्व-तोषिणी शांति मिलेगी। प्राचीन भारत के ऋषि-मुनि विजन–विपिन मे वर्षों तक मौन-साधन करके, आत्मा के लिये दृढ-चरित्र और जिह्वा के लिये शीतल अमृत वाणी उपलब्ध करते थे।

जिह्वा को संयत बनाने के लिये, हमारे यहां बहुत सी दिव्यवाणियों का पाठ्यक्रम भी उन्हीं प्राचीन महर्षियों का चलाया हुआ है। संध्या–वंदन गायत्री–जप इत्यादि का अभिप्राय क्या है? यही कि उन सुनीतिमयी मीठी शब्दावलियों का पाठ

करते-करते हमारी जिह्वा भी वैसी ही भावमयी एवं मधुर-कोमल हो जाय और हमारे मुँह से भी वैसे ही शातिमय दिव्य वचन स्वतः निकलें। किन्तु अधिकाश लोग संध्या और गायत्री का पाठ करके भी, अपनी जिह्वा मे सर्पिणी की सी जहरीली फुफकार बनाये रहते हैं। क्यो? इसका उत्तर है—मौन-साधना का अभाव। सध्या और गायत्री के जप से भी अधिक आवश्यकता है—चरित्र की। चरित्र प्राप्ति का एक विशेष साधन है मौन-साधना। इस साधन के समय मनुष्य नितांत एकान्त मे जा पहुँचता है। वहाँ सिर्फ उसकी आत्मा रहती है और उसका जीवन। जो शक्ति, जो समय वह बातों में लगाता, उसे वह एकात मे आत्म-चिन्तन एवं जीवन को महान् बनाने की आंतरिक मंत्रणा में लगता है। धीरे-धीरे उसे सफलता मिलती है। एक दिन जब उसका अन्दर और बाहर एक हो जाता है उस समय संसार कि कोई भी विषमता, कोई भी उत्तेजना उसकी वाणी को चञ्चल या अनर्गल बनाने मे समर्थ नहीं होती, कारण उसके चरित्र में वह महानता और दृढता आ जाती है, जो किसी तरह भी डिग नहीं सकती।

ऐसे चरित्रवान् पुरुष जब बोलते हैं, तब उसमे विनम्रता का रस रहता है। सिर्फ उनके मुँह से वाणी निकलने की देर रहती है, वह निकली और लोग उनके दासानुदास हुए। यही नहीं, उनकी वाणी पत्थर को भी बर्फ की तरह पिघला देती है।

वाणी व्यक्तित्व का परिचय देने में प्रथम है, क्योंकि अन्य गुण तो साथ रहने पर धीरे-धीरे प्रकट होते हैं, पर वाणी की गरिमा तत्काल प्रकट होती है। इसके द्वारा सर्वथा अपरिचित को भी, थोड़े वार्तालाप मे ही, स्नेह और सहानुभूति के सूत्र में बाँधा जा सकता है। दिव्य वाणी बोलने वालो के लिए ससार में चारों तरफ अमीर—गरीब, परिचित-अपरचित सबके द्वार स्वागत के लिये खुले रहते हैं। उनके मान में लोग पलक-पाँवडे बिछा देते हैं—ऐसा सम्मान छत्रधारी सम्राट होने पर भी शायद ही कोई पा सके।

स्वामी रामतीर्थ जब जापान से अमेरिका को जा रहे थे, उस समय उनके पास सिवा अपने शरीर और आत्मा के और कुछ नहीं था। जब जहाज सेनफ्रासिस्को के नजदीक पहुँचा, उस समय जहाज पर हलचल मच गई। उतरने वाले सबके सब मुसाफिर अपना-अपना असबाब लेकर उतावले हो रहे थे। हमें लिवा ले जाने के लिये भाई, बहन, अथवा मित्र कोई आया है या नहीं, यह जानने के लिये बन्दरगाह की ओर सब गर्दन उठा-उठा कर और आँखो मे दुर्बीन लगा-लगा कर देख रहे थे। परन्तु स्वामी जी इस हलचल मे भी चुपचाप शाति भाव से बैठे थे। जो आपको देखता नही समझता कि आपको यहाँ उतरना नहीं है। स्वामी जी की इस निश्चल शातिमूर्ति को देखकर एक अमेरिकन मुसाफिर की निगाह उन पर पड़ी। फौरन स्वामी जी के पास गया और उनसे पूछा--आपका असबाब कहाँ है?

स्वामी जी ने उत्तर दिया—राम अपने साथ उतना ही असबाब रखता है, जितना वह स्वयं चाहे जहाँ उठा ले जा सकता है।

आपके पास कुछ रुपिया-पैसा तो अवश्य ही होगा?

नही, राम रुपये-पैसे का स्पर्श नहीं करता।

क्या आप यहीं उतरेंगे?

हाँ।

तो आपकी सहायता करने वाले आपके मित्र यहाँ होगे?

हाँ, हैं।

वे कौन हैं?

प्रश्न करने वाले पुरुष के कन्धे पर हाथ रख कर स्वामी जी ने उत्तर दिया—आप।

'आप'—इस शब्द का उस अमेरिकन सज्जन पर इतना प्रभाव पड़ा कि जब तक स्वामी जी अमेरिका मे थे तब तक उनके खाने पीने रहने आदि का सब प्रबन्ध वही करता था।

यहूदियों की एक प्रसिद्ध कथा यों है—एक बार कुछ लोग एक

स्त्री को पकड़ कर महात्मा ईसा के पास ले गये । लोगों ने उनसे कहा— 'श्रीमान् यह स्त्री परम दुराचारिणी है, इसे दण्ड मिलना चाहिये । यह सुन कर प्रभु ईसा की आँखें उमड़ आयीं । उन्होंने कहा—'अच्छा' तुम लोगों में से जो सबसे अधिक सच्चरित्र हो वह स्त्री को पत्थरों से मारे ।' किन्तु इस दण्ड के लिये किसी के भी हाथ न उठे और वे सब शर्म से गर्दन नीची किये चले गये ।

—शांतिप्रिय द्विवेदी

## काशी विश्वविद्यालय के संस्थापक

काशी हिंदुओं का अत्यंत प्राचीन प्रसिद्ध तीर्थस्थान है । यहाँ स्थापित विश्वविद्यालय की गणना संसार के विख्यात शिक्षालयों में है । इसके दो प्रधान कारण हैं । पहली बात यह है कि यहाँ की शिक्षा का ढंग नया और उपयोगी है । दूसरी बात यह कि भारतीय आचार-विचार और धर्म-कर्म का यह केंद्र है । जिस महापुरुष ने आज से लगभग तीस वर्ष पूर्व इसकी स्थापना की थी, उसका शुभ नाम है महामना पंडित मदनमोहन मालवीय । विश्वविद्यालय की स्थापना के समय उनके पास इतना धन नहीं था कि शिक्षा, संस्कृति और धर्म की एक ऐसी सुदृढ़ संस्था तैयार कर दी जाती परन्तु उनका निश्चय दृढ था और थी अपनी इच्छा की पूर्ति में लगी रहनेवाली सच्ची लगन । शिक्षालय के लिए धन एकत्र करने वे निकल पड़े और दिन रात एक करके पर्याप्त धन उन्होंने प्राप्त कर लिया । विश्वविद्यालय बना; एक से एक योग्य अध्यापक शिक्षा के लिए नियुक्त हुए । मालवीय जी उसके कुलपति बने । बीस वर्ष तक इस पद पर रहकर अपने शिक्षालय की मन, वचन और कर्म से उन्नति करते रहे ।

मालवीय जी ऐसी महान् संस्था की स्थापना में सफल हो सके, इसका कारण उनका नियम, संयम और आचार-विचार से जीवन बिताना था । जो व्यक्ति किसी निश्चय को सामने रख कर अपनी सभी

शक्ति उसके संपादन में लगा देता है, उसे सदैव सफलता मिलती ही है। मालवीय जी मानव-जीवन के इस रहस्य से भली-भाँति परिचित थे। अतएव वे उन बातों से सदैव बचते रहे जो संयम और नियम के पालन में बाधक होती हैं। स्नान-ध्यान, पूजा-पाठ, पठन-पाठन, खान-पान, आदि के लिए जो समय उन्होंने निश्चित किया, वे सदैव उसका निर्वाह करते रहे। आचार-विचार का उन्हें इतना ध्यान था कि कड़े जाड़े में भी दोनों समय स्नान करते और ऊपरी वस्त्र उतार कर ही भोजन करते।

उनकी सफलता का दूसरा कारण था परस्पर का सरल व्यवहार। उनकी प्रकृति कोमल और उदार थी। उन्होंने दूसरों से बात करने में कटु और अप्रिय शब्दों का व्यवहार कभी नहीं किया। दूसरों का अनुचित काम या बर्ताव देखकर भी वे न क्रोधित होते थे और न अप्रसन्न। मधुर शब्दों का प्रयोग करने में वे तुलसीदास के इस मंत्र को सदैव याद रखते थे—

'तुलसी' मीठे वचन ते सुख उपजत चहुँ ओर।
वसीकरन एक मंत्र है, तजि दे वचन कठोर॥

मालवीय जी सफल वक्ता थे और सफल लेखक भी। व्याख्यान देने का अभ्यास इन्हें बचपन से ही कराया गया था। सात-आठ वर्ष की छोटी अवस्था में ही ये बहुत सुन्दर ढंग से व्याख्यान देने लगे थे। प्रायः मेले के अवसर पर होनेवाली सभाओं में इस छोटी ही अवस्था में व्याख्यान देकर ये सबको आश्चर्य में डाल देते थे। अपनी वक्तृता-शक्ति के विकास के प्रयत्न में वे बराबर लगे रहे। इस अभ्यास का फल यह हुआ कि भाषण देने में सारे भारत में एक दो व्यक्ति ही उनकी समानता कर पाते थे। हिन्दी और अंगरेजी दोनों ही भाषाओं पर उनका पूर्ण अधिकार था और दोनों में ही वे सुन्दर व्याख्यान देते थे।

भाषण शक्ति के साथ-साथ मालवीय जी ने लेखन-कला में भी उन्नति की थी। इनकी योग्यता से प्रभावित होकर कालाकाँकर के राजा रामपाल सिंह ने उन्हें अपने 'हिन्दुस्तान' नामक पत्र का संपादक बना

दिया था। प्रयाग से निकलने वाले 'अभ्युदय' के भी कई वर्ष तक आप संपादक रहे। इनके अतिरिक्त कई अन्य पत्र-पत्रिकाओं के प्रबन्ध में आप का हाथ था। कई पत्रो के तो आप जन्मदाताओं में थे।

मालवीय जी धर्म-कर्म पर रुचि रखते थे। अपने विद्यार्थियों को धर्मकार्य से विमुख देखकर उन्हे बड़ा कष्ट होता था। वे चाहते थे कि सब लोग आचार-विचार और शुद्धता से रहे। इसी उद्देश्य से उन्होंने अनेक बार सभायें की और अनेक सस्थाओं की स्थापना की। परंतु उनमें धार्मिक कट्टरता नाम को न थी। छुआ-छूत वे नहीं मानते थे और अछूतों के उद्धार के लिए बराबर प्रयत्न किया करते थे।

देश की उन्नति, और स्वतंत्रता के लिए जिन भारतवासियों ने प्रयत्न किया था, मालवीय जी की गणना भी उन्ही में है। अन्य नेता तो केवल राजनीतिक क्षेत्र में ही कार्य करते रहे, परन्तु मालवीय जी ने इसके अतिरिक्त, शिक्षा की उन्नति और हिंदू जाति के संगठन के लिए भी बहुत प्रयत्न किया। यही कारण है कि इन सभी क्षेत्रो में उनका नाम बड़े आदर से लिया जाता है।

—प्रेमनारायण टंडन

## भारती का सपूत

स्वदेश की सेवा के साथ-साथ मातृभाषा हिंदी की भी सेवा करनेवाले देश के नर-रत्नों मे माननीय श्री पुरुषोत्तमदास जी टंडन का स्थान बहुत ऊँचा है। देश के लिए तो अन्य नेताओं की तरह आपने त्याग किया ही, हिंदी के प्रति भी आपका प्रेम अनुपम और आदर्श रहा है। अखिल भारतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन के तो आप प्राण हैं। इसके आदरणीय संस्थापकों मे भी आप थे। सम्मेलन का पहला अधिवेशन सन् १९१० मे काशी मे हुआ था। उस समय से अब तक निरतर उसकी उन्नति के लिए आप प्रयत्नशील हैं। सम्मेलन के तेरहवें अधिवेशन के सभापति भी आप ही थे। मातृभाषा हिंदी की

उन्नति के लिए अनेक महत्वपूर्ण कार्य इन्होंने किए और उसे भारत की राष्ट्रभाषा बनाने का प्रस्ताव करने वालों मे सबसे ऊँचा स्वर इन्हीं का रहा है। हिंदी को अदालती भाषा बनाने के लिए किया गया उनका उद्योग भी सर्वथा प्रशसनीय हैं । वस्तुतः हिंदी संसार की भाषाओ में सरल और सुन्दर है। इसीलिए टडन जी सारे भारत में उसके प्रचार के लिए भगीरथ प्रयत्न करते रहे हैं । देश की व्यवस्थापिका सभाओं मे पहले अँगरेजी मे बोलने ही का नियम था। आपके प्रयत्न से ही सयुक्तप्रातीय सभा मे हिंदी मे बोलने का अधिकार आज से कई वर्ष पहले सबको प्राप्त हो गया था और आज तो कई प्रान्त इस कार्य का अनुकरण कर चुके हैं।

राजनीति के क्षेत्र मे आने के पूर्व टडन जी वकालत करते थे और उनकी गणना चोटी के वकीलो मे होती थी । अच्छी आमदनी थी और नाम भी था। यह बात सन् १९२० के पूर्व की है। इसी समय भारतीय स्वतंत्रता के युद्ध का सचालन करने तथा विशिष्ट शक्तियों से युद्ध करने के लिए अनेक नेताओं की आवश्यकता पड़ी। टंडनजी ने भी राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर विलासिता के भौतिक साधनों को ठुकरा दिया और स्वदेश के स्वातंत्र्य युद्ध की सफलता के लिए पूरी शक्ति से लग गये। इसी प्रसग मे उन्हे कई बार जेल जाना पड़ा। इनके परिवार पर आर्थिक संकट आया । न इन्होने अपने सुख की चिंता की और न परिवार वालो के। कहा जाता है कि इनकी आर्थिक कठिनाई की सूचना पाकर एक सज्जन ने दो हजार का चेक भेजकर इनकी सहायता करनी चाही, परंतु आत्माभिमान की मूर्ति टंडनजी ने सधन्यवाद चेक लौटा दिया। कुछ समय पश्चात् आप पजाब की 'जन-सेवासमिति' के अध्यक्ष बने। इस पद का निर्वाह इन्होने कुशलता से किया और अपनी आय का अधिकाश ये सदैव इसकी सहायतार्थ समर्पण करते रहे हैं।

टडनजी स्वयं योग्य हैं और योग्यता की उनको परख है। उन्होने

किसी अयोग्य व्यक्ति की कदाचित कभी सिफारिश नही की। नियम के वे पक्के हैं और उसके पालन मे बड़े कट्टर हैं। अनुशासन-भंग करना उन्हे कभी सहन नहीं होता। और यह बात उन्होने सीखी थी खेल के मैदान मे। विद्यार्थी जीवन मे वे अच्छे खिलाड़ी थे। कालेज टीम के कप्तान का पद इन्हें मिला हुआ था। खेल से शारीरिक और मानसिक नियन्त्रण एवं सामूहिक संगठन की इन्होंने शिक्षा ली। विरोधी पार्टी के सभी खिलाड़ियो के बराबर रन अकेले बनाने का ये दम रखते थे। इसी आत्मविश्वास के बल पर इनकी प्राय: जीत होती थी। परन्तु पराजितो की हँसी इन्होंने कभी नही उड़ाई और यदि कभी स्वय हारे तो निरुत्साहित या निराश नहीं हुए।

हिन्दी और अँगरेजी दोनो भाषाओ मे लिखने-बोलने मे आप पूर्ण कुशल हैं। उनके सभी भाषण ओजपूर्ण और और उत्साह-वर्द्धक होते हैं। हिंदी मे व्याख्यान देते समय वे भाषा पर, पूर्ण अधिकार रखते हैं और एक भी अनावश्यक या विदेशी—साधारणतः अँगरेजी—शब्द उसमें नहीं आने देते।

काम करने का इन्हें चाव है और दिन रात ये काम मे जुटे रहते हैं। इनकी कार्यशक्ति और उत्साह देखकर कभी कभी नवयुवक भी चकित रह जाते हैं। स्वभाव इनका सरल है। छल-कपट आडबर और बनावटीपन से इन्हे चिढ़ है। सरलता और सच्चरित्रता की ये मूर्ति हैं और बड़े स्पष्ट-वादी तथा सत्यप्रिय हैं। जो काम हाथ में लेते हैं उसे पूरा करके ही छोड़ते है। किसी निश्चय पर पहुँचने पर उन्हें समय नही लगता और फिर उस पर अडिग रहते हैं। निर्भीक और दृढ़ ये इतने हैं कि किसी प्रकार का विरोध या प्रतिद्वंदी के सगठन की शक्ति का दबाव इनका मत परिवर्तन नहीं करा सकता।

—प्रेमनारायण टंडन

## सेवा का पहिला पाठ

कविवर मैथिलीशरण के शब्दो मे "वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के

लिए जिए"। यह मनुष्य की सीधी सादी परिभाषा है। हम अपने लिए जीते हैं, यह ठीक है पर हमारे जीवन का दूसरों से भी सम्बन्ध है। हर एक पशु अपने, केवल अपने लिए जीता है; दूसरों की उसे चिन्ता नहीं। भूखी हरिणी अपने ही शावक को हटाकर घास चर लेती है। कुत्ते एक कौर पर झगड़ते हैं। लेकिन हम पशु से ऊपर उठे हुए प्राणी हैं। हमे अपनी चिन्ता के साथ-साथ दूसरे का भी ध्यान रहता है। हमारा सुख दुख दुसरों के सुख दुख से जुड़ा है। इसलिए दूसरो के कष्ट दूर करना हमारा पहला कर्तव्य हो जाता है। यही सभ्यता का पहला चिह्न है, मनुष्यता की पहली सीढ़ी है, सेवा का मूल मंत्र है।

आज से हजारो वर्ष पूर्व राजकुमार सिद्धार्थ के हृदय मे यह बात उठी थी कि लोग इतना दुखी क्यों हैं और उनका दुख दूर कैसे किया जाय। प्राणी एक दूसरे की सहायता न करके उसके रक्त का प्यासा क्यो है? एक जीव दूसरे के सुख को छीन अपने को सुखी क्यों बनाना चाहता है किसी के प्राण लेकर दूसरे के प्राण क्यों जुड़ाते है? राजघराने मे जन्म लेकर, सभी सुखो के होते हुए भी सिद्धार्थ दूसरो के दुख से दुखी थे। उनको दूसरो की चिता थी वे पर-दुख कातर थे।

मनुष्यो की बात तो दूर, प्राणिमात्र की सेवा करना और दखियों के दुख को दूर करना गौतम के जीवन का अंग था। एक बार तीर से बिंधे हुये हस को छटपटाते देखकर उनका जी रो पड़ा था। उसे झट उठाकर उन्होंने तीर खींच लिया। उसके दूध से पखों पर लाल रक्त की धार बह निकली। सिद्धार्थ ने आँसुओं की धारा से उसे धो डाला और वे प्रेम से उसे सहलाने लगे। यह जानने के लिये कि इस बाण से हंस को कितनी पीड़ा पहुँची होगी, उन्होने वही तीर अपने चुभो लिया। तीर के चुभते ही वे बड़ी पीड़ा से कराह उठे। पीड़ित की पीड़ा का अनुभव प्राप्त करने के लिये ही उन्होंने ऐसा किया। उन्होने सोचा—यदि इस तीर के चुभने से मुझ जैसे विशालकाय प्राणी को इतना कष्ट पहुँच सकता है तो उस कोमल पक्षी की क्या दशा हुई

होगी ? यह उनका सेवा-भाव आदर्श था। उनकी महानता की पहली झाँकी थी।

आज रोगियों के लिए सुंदर और सुव्यवस्थित चिकित्सालय बने हैं और रोगीवाहन पर जो रेडक्रास के चिन्ह दिखाई पडते हैं, उसके पीछे एक महिला का निःस्वार्थ सेवा-भाव और जीवन की सारी तपस्या की कहानी छिपी है। फ्लोरेंस नाइटिंगेल का जन्म एक समृद्ध परिवार में हुआ था। उसका बालपन बड़े आनन्द से बीता। वह बहुधा सोचा करती थी की जीवन मे इतना कष्ट क्यो है ? फ्लोरेंस की आयु तीस के लगभग होगी जब युद्ध हुआ जिसमे लाखों की संख्या मे सैनिक घायल हुए। उनकी चिकित्सा का प्रबध ठीक नहीं था। दवा-दारू ही नहीं, सफाई तथा सुव्यवस्था की भी कमी थी, जिससे हैजे आदि रोगों का प्रकोप बढ़ा। कहते हैं कि गोलियो की अपेक्षा रोग से अधिक सैनिक मरे। ऐसे समय मे फ्लोरेंस नाइटिंगेल ने रात-दिन बड़े परिश्रम से अस्पतालों की दशा सुधारने की चेष्टा की। कभी-कभी लगातार बीमार और घायलों के आने के कारण उसे कई-कई घटे खड़ा रह जाना पड़ता था। उसकी कार्य-शक्ति और सेवा-भाव से ससार के समस्त देशवासी बहुत प्रभावित हुये थे। आज यह सस्था सभी देशों मे काम करती है। हमारे देश मे भी रेडक्रास की शिक्षा दी जाती है।

गौतम ने मानसिक शान्ति के लिए सच्चे सुख की खोज की और फ्लोरेंस नाइटिंगेल ने शारीरिक पीड़ा हरने के लिए तथा पीड़ित जन का कष्ट निवारण के लिए अपना तन-मन-धन त्याग दिया। आज भी भाग्य के ठुकराए और आफतों के मारे हुओं की संख्या कम नहीं है। अधे अपाहिज, लँगडे लूले और निराश्रय ज्यो के त्यो बने हैं। यदि हम प्रतिदिन संध्या को सोने के पहिले सोच ले कि आज हमने कौन सा काम निस्वार्थ भाव से किया जिससे किसी दुखी का दुख दूर हुआ हो तो कुछ दिनो मे सेवा-कार्य हमारे स्वभाव का एक अग बन

जायगा। और यदि प्रत्येक व्यक्ति प्रतिदिन सेवा का एक कार्य करने की आदत बना लें तो स सार सोने सा सुहावना हो जाय।

सामाजिक सेवा के लिए घर-बार छोड़ने की आवश्यकता नहीं है। किसी को सुख पहुँचाने मे अपने सुख से हाथ धो बैठना मूर्खता है। यह तो घर फूँक तमाशा देखने जैसी बात होगी। किसी भूले हुए को रास्ता दिखला देना, स कट में अच्छी सलाह दे देना, अंधे का सहारा बन जाना, घायल या रोगी की चिकित्सा कर देना ही बहुत है। ये कार्य ऐसे हैं जिन्हें सभी कर सकते हैं। यदि और कुछ न हो सके तो मुस्करा कर मीठे शब्द बोल देने से ही दुखी का दुख बहुत कुछ कम हो जाता है। सामाजिक सेवा की ओर यह पहला पाठ है।

—कु० अभिमन्यु सिंह

## मोती

मोती सीप मे पैदा होता है। जिन चीजों से सीप का भीतरी हिस्सा बनता है उन्हीं से मोती बनता है। सीप पान रखने की डिबिया की तरह खुलता और बन्द होता है। असल में यह एक तरह का कीड़ा है। यह कई तरह का होता है; इसी से मोती भी तरह-तरह के होते हैं। सात वर्ष के सीप में अकसर मोती अच्छे मिलते हैं और ४-५ वर्ष से कम के सीप मे कभी-कभी। सात वर्ष का हो जाने पर भी अगर सीप मे मोती न निकाला जाय तो फिर वह नहीं मिलता।

साफ, चमकीला-दमकीला और बेदाग मोती अच्छा समझा जाता है। मोती गोल ही अच्छा गिना जाता है। उसके बाद 'सुराहीदार का नम्बर है। सुडौल और साफ मोती अच्छे दामों में बिकता है। मोती की परख सहज नहीं। इसमे कभी-कभी अच्छे-अच्छे जौहरी भी धोखा खा जाते हैं।

मोती निकालने की पुरानी रीति तो यह है कि गोताखोर लोग डोंगों

पर सवार होकर रात को ही चल देते हैं और सवेरा होते-होते काम करने की जगह पर पहुँच जाते हैं। दो-दो गोताखोर काम करते हैं। एक तो डोंगे पर रस्सी पकड़े बैठा रहता है और दूसरा रस्सी के सहारे पानी में उतर जाता है। ये लोग रस्सी के साथ २०-२५ सेर का एक पत्थर बाँधे रहते है जिससे तली में जल्दी जा पहुँचें। इशारा पाते ही डोंगेवाला आदमी पत्थर खींच लेता है। हर एक गोताखोर ४०-५० बार गोता लगाता और हर बार झोली या टोकरी में सीप बटोर लाता है। मिनट दो मिनट दम लेकर वह फिर नीचे जाता है। जब थक जाता है तो वह डोंगेपर बैठकर रस्सी थामता है और दूसरा पानी मे उतरता है। इनके कान, नाक और मुँह से पानी निकला करता है। कभी-कभी तो खून भी निकलता है, फिर भी पेट के लिए हिम्मत करके ये लोग काम करते हैं। जल के भीतर पौन मिनट से लेकर डेढ़ मिनट तक काम किया जाता है। कुछ आदमी तो दो-दो चार-चार मिनट तक पानी मे ठहरते हैं।

पानी के भीतर हवा की तो कमी है ही, इसके अलावा समुद्री जानवरों के हमलों का भी डर रहता है। इनके चंगुल में फँस जाने पर बचना मुश्किल है। देशी गोताखोरों की रक्षा के लिए ब्राह्मण लोग किनारे पर बैठे पूजा-पाठ किया करते हैं, जिससे गोताखोर लोग इनके हमले से बचे रहें। गोताखोर लोग बदन मे तेल चुपड़ लेते हैं ताकि नाक कान मे पानी न घुस जाय। गोताखोरों के पास छोटी-छोटी बर्छियाँ भी होती हैं। पानी में रहने और दम साधने के कारण बीमार भी जल्दी पड़ जाया करते हैं और उम्र भी इनकी कम होती है।

बाहर लाने के बाद सीप सड़ाए जाते हैं। जन्तु के मर जाने पर सीप से मोती निकाला जाता है। यदि कीड़ा जिन्दा रहा तो मोती निकलने में कठिनाई होती है। कीड़े के मर जाने पर सीपों को उबाला जाता है। कभी-कभी मोती सीप में नहीं, कीड़े में रहता है। मोती का मिलना भाग्य की बात है। किसी को बढ़िया मोती मिल जाता है, किसी को वह

भी नहीं। ऐसी कोई परख नही जिससे मोती का होना न होना जान लिया जाय।

उबालने के बाद मोतियों को छोटे-बड़े छेदो की छलनियों मे छाना जाता है। इससे छोटे-बड़े मोती सहज ही अलग हो जाते हैं। मोती में हीरे की कनी से छेद किया जाता है। छेद जितना ही पतला हो उतना ही अच्छा माना जाता है।

विलायत मे मोती निकालने का और ही तरीका है। वहाँ के गोताखोर एक खास पोशाक पहनकर पानी में धँसते हैं। इस पोशाक में साँस लेने के लिए भी प्रबन्ध रहता है। इसे पहनने से गोताखोर एक तरह से सुरक्षित रहता है। कोट, पाजामा और जूता सब एक ही मे रहते हैं—अलग-अलग नहीं। इस पोशाक के भीतर पानी नहीं पहुँचता। इसमे गरदन और बाहे खुली रहती है। पोशाक का बोझ करीब १६ सेर होता है। गोताखोर पहले एक मोटा-सा फलालैन का कुर्ता पहन लेता है। उसके ऊपर पोशाक पहनी जाती है। गला और बाहे ऐसी कर दी जाती हैं कि पानी भीतर न जा सके। फिर एक धातु का टोप पहना देते हैं। इसमें आँखो की जगह पक्का शीशा जड़ा रहता है। इसी मे से गोताखोर देखता है। गले के पास दोनो ओर रबर की दो नलियाँ लगी रहती हैं। इनके ज़रिए से उसे साँस लेने के लिए साफ हवा मिलती रहती है।

गोताखोर जब पानी में उतरता है तब उसके कधो पर वजनी पटड़े लटका दिए जाते हैं जिससे वह आसानी से डूब सके। बाद को पटड़े निकाल लिए जाते हैं। ऊपर डोगा चला जाता है और नीचे गोताखोर थैले मे सीप बटोरता रहता है। अगर थैला भर जाय या उसका जी ऊबने लगे अथवा कोई जानवर हमला करे तो इशारा करते ही झट से वह ऊपर खीच लिया जाता है। इस पोशाक मे वह दस मिनट तक रहता है और ६० से ११० फुट तक की गहराई मे काम करता है। साफ पानी मे वह ४०-५० फुट तक की चीजे देख सकता है, वर्ना टटोल-टटोलकर

सीप उठाता है।

बिना पोशाकवालो से पोशाकवाला गोताखोर मजे में रहता है। पर जान उसकी भी जोखिम में रहती है। अगर साँस लेने की नली फट जाय तो पोशाक में पानी भर जाने से वह ऊपर भी जल्दी न उठाया जा सके और साँस भी न ले सके, क्योंकि उसके लिए हवा तो मिलेगी नहीं। समुद्री पौधे की नोक से भी पोशाक फट सकती है। पोशाक के भीतर अगर कोई कीड़ा या मक्खी रह जाय तो फिर आफत ही समझिए। सीप के पास विषैले कीड़े रहते हैं, ये हाथ मे काट खाते हैं तो बड़ा दर्द होता है।

पहले तो हिन्दुस्तान और फारस की खाड़ी से ही मोती निकाले जाते थे, पर अब आस्ट्रेलिया और मध्य अमरीका आदि में भी यह काम किया जाता है। हिन्दुस्तान मे कराची के पास और लङ्का मे मोती निकालने का काम होता है। बिना सरकारी परवाना लिए कोई भी मोती नहीं निकाल सकता। —( सकलित )

## विद्या और विवेक

प्राय: विद्या और विवेक दोनो परस्पर भिन्न हैं। विद्या का स्थान मनुष्य के मस्तिष्क मे और विवेक 'का बुद्धि तथा विचार' मे है। हम लोग अच्छी अच्छी उपादेय पुस्तकों से एवम् बड़े विद्वानो से विद्या अर्जुन करते है। किन्तु, विवेक हम लोगो को अपनी ही आभ्यन्तरिक अनुभूति तथा आत्मानुशीलन से उपजता है। संसार भर के पदार्थों का परिचय मात्र करा देना विद्या का सहज काम है। किन्तु, उनके विषय में सत् असत् का निर्णय, गुणावगुण का निराकरण तथा नीच उच्च का प्रभेद करना विवेक का स्वाभाविक धर्म्म है।

बिना विद्या के विवेक की स्थिति सम्भव है। किन्तु, बिना विवेक के विद्या के फलवती, गरिमामयी, चिरस्थायिनी, और उपकारिणी और विशुद्धा होने मे सन्देह है। विवेक हम लोगो को केवल सत्प्रवृत्तिकी

ओर सञ्चालित करता है। किन्तु हो सकता है कि विद्वान् असद्विचार की ओर झुक पड़ें और उनका पाँव नीचा ऊँचा पड़ जाय। विद्या बतलाती है कि माता से हमारा जन्म हुआ है और भार्या से विवाह। किन्तु, दोनो मे कितना वास्तविक अन्तर है, वह विवेक ही द्वारा जाना जाता है। विद्या द्वारा अपने आत्मज में तथा परपुत्र में कुछ भेद पैठ सकता है। किन्तु, विवेक द्वारा तो "वसधैव कुटुम्बकम्" का सिद्धान्त बद्धमूल होता है। विद्या का केन्द्र चाहे सकुचित हो तो हो, किन्तु विवेक में सङ्कीर्णता का लेश मात्र भी नहीं रहता, बल्कि इसमे प्रशस्त औदार्य की पराकाष्ठा है।

यदि विद्या सुन्दर शरीर है तो विवेक है उसका शृंगार। विद्या द्वारा चारित्र गठन होना सर्वथा सम्भाव्य नहीं है, पर विवेक द्वारा चारित्र का सुधार और संस्कार होना ध्रुव है। विद्या से अहम्मन्यता हो सकती है, लेकिन विवेक से विनय का विकाश, प्रतिभा का प्रकाश और मानसिक दुर्विकारो का नाश होता है। मगर विवेकी की बुद्धि सदा विकसित रहती है और आत्मज्ञान के साथ उनके विचार विशद बने रहते हैं।

विवेक से आध्यात्मिक शान्ति मिल सकती है, क्योंकि इसी के उदय होने से हृदय का मोहान्धकार दूर होता है। इसी के सहारे योगी-जन आत्मानन्दरसलीन हो जाते हैं और निर्वाण पद पर्यन्त पहुँच जाते है। लेकिन विद्या में इतनी क्षमता नहीं है जो इस अवस्था तक पहुँचा सके।

—शिवपूजन सहाय

## कहानी

ज्योंही बालक का कण्ठ फूटा, त्योंही उसने कहा—कहानी कहो।

दादी ने कहना शुरू किया। एक राजपुत्र था, उसके चार मित्र थे। एक मन्त्री का लड़का, दूसरा सौदागर का लड़का, तीसरा......। इसी समय गुरूजी ने चिल्ला कर कहा—तीन चौके बारह।

परन्तु गुरू जी का हुङ्कार कहानी के राक्षस के हुङ्कार के आगे दब गया। वह लड़के के कानों तक पहुँचा नहीं। जो बालक के शुभचिन्तक थे, उन्होंने उसको एक कमरे में बन्द कर बड़े गम्भीर स्वर से कहा—देखो, तीन चौके बारह, यह तो सत्य है और राजपुत्र या मन्त्री-पुत्र की बात बिल्कुल झूठी है। इसलिये—

उस समय बालक का मन मानस-चित्र के उस समुद्र को पार कर रहा था, जिसका पता किसी नकशे मे नही लग सकता। तीन चौके बारह उसके पीछे-पीछे दौड़ता रहता है, परन्तु मृगजल की तरह उससे पानी नहीं निकलता।

शुभचिन्तको ने समझ लिया कि लड़का पूरा बदमाश है। बेत की चोट से ही वह सुधर सकता है।

इधर गुरूजी का रुख देख कर दादी चुप हो गईं। पर विपत्ति का अन्त योंही नहीं हो जाता। एक जाती है, तो उसकी जगह दूसरी आती है। दादी के चुप हो जाने के बाद पौराणिक जी ने आकर आसन जमाया और उन्होंने राम-वनवास की कहानी शुरू कर दी।

जब सूर्पनखा की नाक काटी जा रही थी, तब शुभचिन्तक ने आकर कहा—इतिहास मे इसका कोई प्रमाण नहीं है। जो बात प्रमाणित हो सकती है, वह है तीन चौके बारह।

उस समय हनुमान आकाश मे इतने ऊँचे उड़ रहे थे कि इतिहास उनका पल्ला नहीं पकड़ सकता था। पाठशाला के बाद स्कूल मे और स्कूल के बाद कालेज मे, लड़के के मानसिक सुधार की योजना होने लगी, परन्तु चाहे कुछ भी किया जाय, यह बात मिट नहीं सकती कि कहानी की स्पृहा ही न रहे।

यह बिलकुल स्पष्ट है कि केवल शैशव-काल में ही नही, सभी अवस्थाओं मे मनुष्य की पुष्टि कथा से ही होती है। इसी से पृथ्वी पर मनुष्यो के घर-घर में, मुख-मुख मे ग्रन्थ-ग्रन्थ मे जो जमा होता है, वह मनुष्य के सभी सञ्चयो से बढ़ जाता है।

शुभचिन्तक यह बात भूल कर भी नहीं सोचते कि कहानी का नशा ही विधाता का सबसे अन्तिम नशा है। जब तक उसका सुधार नही किया जायगा, तब तक मनुष्य के सुधार की आशा नहीं है।

एक दिन विधाता अपने कारखाने मे अग्नि से जल और जल से मिट्टी गढने लगे। उस समय सृष्टि वाष्पभार से व्याकुल थी। धातुओं और पत्थरों के पिण्ड क्रमशः गूँथे जा रहे थे। उनमे मसाला का, कामना के साथ घटना का संघर्षण होने से कितना आवर्तन होता है। जिस प्रकार नदी जल की धारा है, उसी प्रकार मनुष्य कथा का प्रवाह है। इसी से हम एक दूसरे से पूछते रहते हैं—क्या हाल है, क्या खबर है, इसके बाद क्या हुआ। इसी "इसके बाद" से मनुष्य की व्यथा गुँथी हुई है। उसी को हम जीवन की कहानी कहते हैं, उसी को हम मनुष्य का इतिहास कहते है।

विधाता-रचित इतिहास और मनुष्य-रचित कहानी, इन्हीं दो से मनुष्य का ससार है। मनुष्य के पक्ष मे केवल अशोक या अकबर की कथा ही सत्य नहीं है। जो राजपुत्र सात समुद्रो को पार कर सात राज्यों का धन खोजने के लिए निकला है, वह भी सत्य है। हनुमान के वीरत्व की कथा भी सत्य है। उनके गन्धमादन को उखाड कर ले जाने की बात पर कोई सदेह नही हो सकता। मनुष्य के लिए औरङ्गजेब उतना ही सत्य है, जितना दुर्योधन। किसके लिए अधिक प्रमाण है और किसके लिए कम, इस दृष्टि से इस सत्य की परीक्षा नही हो सकती। देखना यही है कि कहानी की दृष्टि से वह असल है या नही। उसके लिए यही सबसे बढ कर सत्य है।

पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी

## ( १ ) साधना

अब वे हँसते हुए फूल कहाँ! अपने रूप और यौवन को प्रेम की भट्टी पर गलाकर न जाने कहाँ चले गये। अब तो यह इत्र है। इसी मे

उनकी तपस्या सिद्धरस है। इसी के सौरभ मे अब उनकी पुण्यस्मृति का प्रमाण है। विलासियों! इसी इत्र को सूँघ सूँघकर अब उन खिले फूलों की याद किया करो!

अब मेहदी के वे हरे लहलहे पत्ते कहाँ! अपने रूप और यौवन को प्रेम की शिला पर पिसाकर न जाने कहाँ चले गये। अब तो यह लाली है। इसी में उनकी साधना सिद्धरस है, इसी लाली मे अब उनकी पुण्यस्मृति का प्रमाण है। विलासियों! इस लाली को अपने तलुओं और हथेलियों पर देख-देखकर अब उन हरे लहलहे पत्तों की याद किया करो।

अब सीप के वे अनवेधे दाने कहाँ! अपने सरस हृदय को प्रेम के शूल से छिदाकर न जाने उन्होने क्या किया। अब तो उन घायलों की यह माला है इसी मे उनकी भावना का सिद्धरस है, इसी सुषमा मे अब उनकी पुण्यस्मृति का प्रमाण है। विलासियों! इसी माला को अपने कण्ठ से लगाकर अब उन अनवेधे दानों की याद किया करो।

## ( २ ) उपालंभ

सच कहता हूँ, तुम्हारी स्मृति-बालिका बडी हठीली और चुलबुली है। कितना ही हटाओ, मेरे हृदय-मंदिर के भीतर आ ही बैठती है। आए, घड़ी दो-घड़ी शांति से बैठे—कोई रोकता नहीं। पर नित्य का ऊधमचारा किससे देखा जाता है? कहाँ तक सहूँ? शिकायत कर ही आती है।

अपने हृदय-मदिर पर मैंने एक लालसा-लता चढ़ायी थी। आँसुओ से सींच-सींचकर उसे बढाया था। उसके फूल कहीं फेंक न देता, तुम्हारे चरणों पर आज चढा देता। पर मन की मन ही में रही। जब उसके फूलने के दिन आये तब उसे तुम्हारी स्मृति-बालिका ने उखाड़कर फेंक दिया। तुम्ही बताओ, इससे उसे क्या मिला होगा? मैं ही जानता हूँ कि उस दिन मुझे कितना दुख हुआ था।

एक दिन तो मै उसे हटाते-हटाते हैरान हो गया। मेरी आँखो की

कटोरियों मे थोड़ा सा मधु भरा था। उस रस को मै किसी के हाथ कुछ बेच न डालता, तुम्हारे ही चरणो पर किसी न किसी दिन उड़ेल देता। पर वह भी न कर सका। तुम्हारी हठीली स्मृति दुलारी आई और उन मधु-भरी कटोरियो को औधाकर चंपत हो गयी। तुम्हीं बताओ उसका यह अपराध क्षमा करने योग्य है?

अपनी लाडली लली की एक लीला और सुन लो। किसी तरह मैने अपना मन-मानिक मानसी मंजूषा मे बंद करके रख छोड़ा था। किसे उसका पता था? पर तुम्हारी स्मृति ठहरी घटघटवासिनी। उसे मेरे छिपाव का पता चल ही गया। बस, फिर उसे चुराते देर न लगी। उस मानिक को मै अँगूठी मे जड़वाना चाहता था। सो वह भी साध पूरी न हुई। तुम्हारी प्यारी स्मृति उसे भी ले भागी। पता नहीं, उसने उस मानिक का क्या किया! कहाँ तक उसके उधमचारे की शिकायत करूँ!

ठहरो, नाथ! ठहरो। मै ही भ्रम मे था। तुम्हारी दुलारी स्मृति निरपराधिनी है। उसने मेरा कुछ नही बिगाड़ा। बलिहारी, तुम्हारे चरणों पर लालसा-लता के फूल चढ़े देख रहा हूँ, तुम्हारे चरणों पर मैं अपनी कटोरियों का मधु भी छिड़का हुआ पाता हूँ, और तुम्हारी अँगूठी मे मेरा वह चुराया हुआ मन-मानिक भी जड़ा हुआ है।

—वियोगी हरि

## लज्जा

जब मैं देखता हूँ कि तुम्हारे मन्दिर को मैने ऐसा अशुचि और अस्वच्छ कर रक्खा है तब मै लज्जित हो जाता हूँ। परन्तु जब मै देखता हूँ कि तुम उसी में प्रेमपूर्वक विराज रहे हो तब तो मैं लज्जा से डूब ही जाता हूँ।

जब मै देखता हूँ कि तुम मेरे लिए सब कुछ कर चुके हो और मै तुम्हीं से मुँह मोड़ता हूँ तब मै लज्जा से नत शिर हो जाता हूँ; परंतु जब मै देखता हूँ कि तुम मेरी उसी अवस्था मे मेरे पास आते हो और

उलटा मुझको ही मनाते हो तब तो⋯ ⋯ ।

जब देखता हूँ कि लज्जा के कारण मै अपने भाव तुमसे छिपाता हूँ तब मै और भी लजा जाता हूँ। परन्तु जब मै देखता हूँ कि तुम मेरे उन भावो को जान गये तब तो मेरी लज्जा का पारावार ही नहीं रहता।

—रायकृष्णदास

## अभिनन्दन-पत्र

### श्रीमान् आचार्य बाबू श्यामसुन्दर दास जी भूतपूर्व अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग, काशी हिन्दू-विश्वविद्यालय।

श्रीमान्,

आज इस विश्वविद्यालय के छात्रगण तथा हिन्दी-विभाग के अध्यापक श्रद्धा और सत्कार, स्नेह और सौमनस्य, संभ्रम और सम्मान के दो चार कुसुम लेकर आपकी अर्चना करने के लिए आपके सम्मुख उपस्थित हैं। इस समय हमारे हृदय जिन भावों से आन्दोलित हो उठे हैं उन्हें व्यञ्जित करने में शब्द-शक्ति कुण्ठित सी दिखाई देती है। ऐसी अवस्था में आपके उन गुणो की चर्चा, जो समय समय पर हमे पुलकित और प्रमोदित, उद्यत और उत्साहित करते रहे हैं, यदि हमसे पूर्ण रूप में न हो सके तो कोई आश्चर्य नहीं।

हिन्दी भाषा और साहित्य के वर्तमान विकास की इस परितोषक अवस्था के साथ आपकी तपस्या, आपकी साधना, आपकी विद्वत्ता, आपकी दक्षता और आपकी तत्परता का ऐसा अखण्ड सम्बन्ध स्थापित हो गया है कि इस युग को उत्कृष्ट साहित्य-रचना का इतिहास आपकी उद्यमशीलता का इतिहास है। आपने ग्रन्थो की ही नही ग्रन्थकारो की रचना की है। आपने धूल में लोटते और चक्की मे पिसते यथार्थ रत्नों को राजमुकुट में स्थान दिलाया है। आपके उद्देश्य, आपकी योजना तथा आपके आदर्श सदा उत्कर्षोन्मुख ही होते हैं। हमसे चाहे आपका

यथार्थ गुणानुवाद न बन पड़े, पर हमारे हृदय सर्वदा आपके प्रति कृतज्ञता के भाव से परिपूर्ण रहेंगे इसमें कोई सन्देह नहीं।

आप ऐसे पुरुषरत्न को इतने दिनों तक अपने बीच प्रधान आचार्य और कार्य-प्रवर्त्तक के रूप मे देख देख हम अपना कितना गौरव समझते आ रहे थे, कितने गर्व का अनुभव करते आ रहे थे। अतः इस विशेष कार्यक्षेत्र से आपके अलग होने पर जो दुःख हमे हो रहा है वह एक दो दिन का नही, अपनी जो गौरव-हानि हम समझ रहे हैं वह कभी पूरी होने वाली नही! आप हमे छोड़कर जा रहे हैं पर जो उज्वल स्मृति छोड़े जा रहे हैं वह निरन्तर हमारा पथ प्रदर्शन करती रहेगी, हममें शक्ति और साहस का संचार करती रहेगी। इस विश्वविद्यालय के भीतर तथा अन्यत्र भी हिन्दी के मान और प्रतिष्ठा के लिए आपने जो कुछ किया है वह चिरस्मरणीय रहेगा।

इस अवसर पर रह रहकर यह भी मन में उठता है कि आप हमसे अलग कहाँ हो रहे हैं। आपका हमारा सम्बन्ध इस विद्यालय तक ही परिमित नही है। वह कहीं अधिक विस्तृत और चिरस्थायी है।

अन्त मे हम ईश्वर से यही प्रार्थना करते हैं कि आप शतायु होकर इसी प्रकार हिन्दी के अभ्युदय का प्रयत्न करते रहे और हम आपकी सौम्य मूर्ति को अपने मनोमन्दिर मे सदा प्रेमासन पर प्रतिष्ठित रखें।

## अभिनन्दन-पत्र

श्रद्धेय राजर्षि श्री पुरुषोत्तमदास जी टण्डन

के कर कमलों में

सभक्ति—

राजर्षि!

जब शत शत कण्ठों से भारत तुम्हें "राजर्षि" कह उठा, हमने उत्सुक दृष्टि से एकबार तुम्हारी ओर देखा, और फिर श्रद्धा से अपना मस्तक झुका लिया। हृदय मे युगों का सोया हुआ स्वाभिमान जाग उठा

और ससृति की पृष्ठ-भूमि पर अतीती न जाने कितने छाया चित्र बनाता हुआ चला गया। यह सब कुछ हुआ पर तुम हिमगिरि सदृश अचल, और सागर की गहराई के समान गम्भीर वीतराग से बने रहे।

त्याग मूर्ति !

तुम्हारा जीवन ज्वालाओं का इतिहास है, और इसी लिए उसमे जलाने की शक्ति तथा प्रकाश प्रदान करने का सतोष बना रहा है। तुम्हारे संकल्प मे व्रत और कर्म मे फल के प्रति विरक्ति को किसने नहीं देखा।

वीर सेनानी !

जिस साहस और पराक्रम के साथ तुमने स्वतन्त्रता संग्राम मे भाग लिया वह अलौकिक था। जब विजय अपनी श्री प्रदान करने के लिए आयी, उस समय तक तुम किसी दूसरे सग्राम में रत हो चुके थे। तुम तो केवल एक बात जानते हो 'सग्राम'—विश्व की समस्त असुर और पाशविक प्रवृत्तियों के विरुद्ध 'सग्राम'।

विद्वद्वर !

विप्रलब्धा नागरी को मातृपद प्रदान करने का तुम्हे ही श्रेय है। तुम्हारे और उसके बीच के अनुराग की व्याख्या करना सरल नहीं, पर इसमे सग्रह करने के लिए स्थान ही क्या हो सकता है कि साहित्य-उपवन के कोने कोने मे तुम्हारा ही परिश्रम पुष्पित और फलित हो रहा है।

हिन्दू कुल भूषण !

तुम अपने को हिन्दू ठीक उसी रोमाञ्च के साथ कहते हो जिसके साथ बालक पाठशाला में प्रविष्ट होते समय अपने पिता का नाम बतलाता है। हिन्दुत्व तुम्हारे व्यक्तित्व का प्रधान अङ्ग है। तुम्हे उससे पृथक करके देखने का दु:साहस कौन कर सकता है ?

हम सब तुम्हारा सादर स्वागत करते हैं।

हम हैं परम-विनीत :—

व्यवस्थापक

श्री गान्धी-पुस्तकालय, मोतीचौक, शाहजहाँपुर

# अभिनन्दन-पत्र

## आचार्यवर पं नन्ददुलारे जी बाजपेयी एम ए०
## अध्यक्ष-कलासंसद्, सागर विश्वविद्यालय,
## के कर कमलों में
## सादर

सरस्वती पुत्र !

माँ हिन्दी-भारती के अक्षय भण्डार को अनवरत भरने मे, उसके जिन वरद-पुत्रों ने अथक परिश्रम किया है, उनमें आप भी हैं। समीक्षा-क्षेत्र के इने-गिने समालोचकों में, आपने अपना एक विशिष्ट स्थान बना लिया है। जो साहित्य की आत्मा निरख कर ही उसकी मीमासा करते हैं; जो व्यक्तित्व का मान न कर, उसके बोल ही तौलते हैं-ऐसे साहित्यकार के साहित्य का रसास्वादन कर हम हृदय में उसे पहले ही सम्मानित कर चुके थे। आज स्वयं उसके सृष्टा को अपने बीच पाकर, हमारा वह सम्मान द्विगुणित हो उठा है। साथ ही हममे भी एक नवीन स्फुरणा सजग हो उठी है।

ऐसे व्यक्तित्व को पाकर महाकोशल का यह अचल और भी उज्ज्वल हो उठा है। इसके कोने मे अब तक सहस्रों कला दीपक जलते आये हैं। उनमें से कुछ ही अपनी प्रखर आभा, रेवा और विन्ध्या के उस पार पहुँचा सके; अनगिनती तो टिमटिमाते टिमटिमाते ही बुझ गये; अथवा भौतिक तूफानो ने उन्हें बुझा दिया। कई अब भी अपनी सूखी सी वर्तिका ले जल रहे हैं। प्राणों का स्नेह डालकर! उनमे हम भी हैं। आज आप जैसी ज्योति का स्पर्श पा हमारा धीमा प्रकाश फिर से चेत गया है।

आप जैसा आचार्य पाकर सागर विश्वविद्यालय को भी एक नई दिशा में बढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। उसके द्वारा पूरे महाकोशल मे शिक्षा का राष्ट्रीयकरण हो कर, एक नवीन जागरण फैले, आपसे ऐसी

ही आशा करते हुये हमारे इस नवजात 'क्रियाशील कलाकार मण्डल' का उद्घाटन कर उस पर आपने जो अपना वरद्-हस्त रखा है, उसके लिए हम हैं—

सदा आपके आभारी—

सदस्य—'क्रियाशील-कलाकार-मंडल'

हितकारिणी महाविद्यालय

## अध्यापक को विदा-पत्र

सेवा में

श्रीमान्............ (नाम)

अध्यापक........ .. (शिक्षालय का नाम)

(नगर का नाम)

आदरणीय गुरुवर,

पिछले सात आठ वर्षों तक हमारे बीच मे रहकर आज आप अपने इन प्रिय विद्यार्थियों को छोड़कर अन्यत्र जा रहे हैं। पिछले दो-तीन वर्षों से आप शिक्षा-सम्बन्धी विशेष ज्ञान और योग्यता प्राप्त करने में प्रयत्नशील थे। तभी से हमे इस विछोह की आशका हो रही थी। परतु वह दिन इतनी जल्दी आ जायगा, इसका हमें स्वप्न में भी अनुमान न था। अतएव हम आपके विशिष्ट ज्ञान का विशेष लाभ उठाने से इस प्रकार वंचित रह गये। हमारा दुर्भाग्य!

परतु हमे इस बात का सतोष है कि आप ऐसे पद पर जा रहे हैं जहाँ आपको सभी दृष्टि से उन्नति करने का अवसर प्राप्त होगा। आपकी सारी शक्ति हम लोगो को सदैव योग्य और शिक्षित बनाने में लगी रही। आपका सरल रहन, सहन, सदय व्यवहार, सरस और काव्यमयी उक्तियाँ बहुत समय तक हमें याद आती रहेंगी। आपका पढ़ाने का

ढग इतना सुबोध और रोचक था कि कक्षा में हम सब सदा एकाग्र रहते थे और हम सबकी हार्दिक कामना आपको सभी तरह से सतुष्ट रखने की रही है। फिर भी बालस्वभाव की चपलतावश यदि कभी हमसे कोई अनुचित कार्य अथवा अशिष्टता हो गयी हो तो हम आपसे सविनय क्षमा माँगते हैं और हमे पूर्ण विश्वास है कि आप हमारी प्रार्थना स्वीकार करेगे। इस समय हम, आपके सभी छात्र, सम्मिलित होकर हृदय से कामना करते हैं कि अपने नये पद पर प्रतिष्ठित रहकर आप अभीष्ट सफलता प्राप्त करे। ईश्वर आपको सदैव स्वस्थ और प्रसन्न रखे।

आपके परम विनीत<br>और<br>आज्ञाकारी छात्र

( शिक्षालय का नाम ) .... . ... . .. . ... . . ... .

—o❀o—

# निबंधों की रूपरेखाएँ

—❀❀❀—
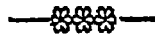
लेख लिखने के पहले विषय-सूची बना लेना आवश्यक होता है। नीचे कुछ मुख्य विषयों की विषय-सूची दी जा रही है। इनके सहारे विद्यार्थी अपने लेख लिख सकते हैं।

## पशु-संबंधी लेख की सूची

(१) जाति, जन्मस्थान, आकार, गठन, वर्ण, स्वभाव। (२) भोजन, आयु, बल और चाल। (३) मनुष्य को लाभ या हानि; मनुष्य का व्यवहार। (४) कोई विशेषता, कोई कहानी संक्षेप मे। (५) अपने विचार—दशा कैसे सुधर सकती है?

## स्थान-विषयक लेख की सूची

(१) स्थान के नाम का इतिहास, कोई किंवदंती (२) स्थिति, जलवायु, लंबाई, चौड़ाई, जनसंख्या (३) जातियाँ, धर्म, आचार-व्यवहार, व्यवसाय, जीविका। (४) दर्शनीय, धार्मिक और ऐतिहासिक स्थान। (५) प्रधान वस्तुएँ, प्रसिद्धि का कारण। (६) पहुँचने के मार्ग, यात्रा की कठिनाइयाँ। (७) निजी विचार, सुधार-संबंधी कोई प्रस्ताव।

## यात्रा-संबंधी लेख की सूची

(१) यात्रा का उद्देश्य, प्रबन्ध और तैयारी। (२) आरम्भ, सवारी कुली और इक्केवाला। (३) रेल की यात्रा, तीसरा दर्जा, लोगों के पहनावे, व्यवहार। (४) स्मरणीय घटनाएँ, व्यक्ति या प्राकृतिक दृश्य। (५) अपने विचार, सुविधाजनक प्रबन्ध कैसे हो?

## जीवनी विषयक लेख की सूची

( १ ) समय, स्थान, पितृ-मातृ-कुल, विशेष बात। ( २ ) बाल्यकाल

विद्या, बुद्धि, चरित्र, माता-पिता का प्रभाव। (३) शिक्षा, विवाह, पारिवारिक जीवन, व्यवसाय। (४) प्रसिद्धि के कारण, विचारों पर प्रभाव, महत्व के कार्य। (५) सम्मान, मृत्युकाल, अवस्था, प्रकृति, स्वभाव। (६) अपने विचार, उनके चरित्र से क्या सीखें।

## मैच

(१) दूसरे स्कूल से चुनौती आना, खिलाड़ियों द्वारा प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार होना, तैयारी की दौड़-धूप, मैच के दिन छुट्टी। (२) खेल का मैदान, टीम का वर्णन, खास मोर्चों पर डटे खिलाड़ियों का उत्साह, खिलाड़ियों की गर्व भरी बातें। (३) खेल शुरू हुआ, बीच-बीच मे करतल-ध्वनि, खिलाड़ियों का जोश बढ़ना, हाफ टाइम के पहले खेल का रंग-ढंग और परिणाम। (४) हाफ टाइम, खिलाड़ियो की आपस की बातें, उनके साथियों और अध्यापकों की सलाह। फिर खेल शुरू हुआ, उत्साह और तेजी, हार-जीत और उसका खेल पर प्रभाव। (५) जीतने वालो की बड़ाई, जो अच्छा खेले उनकी सराहना, हारने पर शांत और प्रसन्न रहना। आगे विजय पाने का निश्चय, जीतने पर विपक्षी की हँसी उड़ाना उचित नहीं। खेल से संगठन।

## स्कूल का वार्षिक उत्सव

(१) आवश्यकता, साल भर मे की गयी उन्नति बताना, विद्यार्थियो को पुरस्कार देकर उत्साहित करना, भावी कार्यक्रम बनाना, हमारे स्कूल का वार्षिक उत्सव। (२) उत्सव की तैयारी, मैदान की सजावट, शामियाने और कुर्सियाँ, अतिथियो का आगमन, उनका तथा विद्यार्थियों का नियन्त्रण, सभापति के आने पर उनका स्वागत, उत्सव की कार्यवाही प्रारम्भ। (३) प्रार्थना, स्वागत-संगीत, विद्यार्थियों द्वारा संक्षिप्त किंतु सुंदर अभिनय, वार्षिक विवरण, पारितोषिक-वितरण, सभापति का व्याख्यान, मैनेजर का धन्यवाद देना, समाप्ति। (४) उत्सव का प्रभाव,

पारितोषिक पाए विद्यार्थियों की प्रसन्नता और अधिक उन्नति का दृढ़ निश्चय। विद्यार्थियों का उन्नति के लिए सकल्प, दोनो को ही प्रोत्साहन मिला।

## रुपए की आत्मकहानी

( १ ) मैसूर की एक खान मे जन्म, आग में तपाया गया, मेरा उज्जवल रूप, "मेरी अब चाँदी ही चाँदी थी"। टकसाल में मेरा परिष्कार किया गया, मेरा बाहरी रूप अधिक सुंदर हो गया। ( २ ) खूब भ्रमण किया, इधर से उधर और उधर से इधर सारे भारत की सैर की, राजपूताने की धूल फाँकी, चोर, शाह, राजा, रंक शराबी-कबाबी के पास। अन्त में एक बनिए के हाथ पड़ा। ( ३ ) तिजोरी का कारागार, और भी अनेक भाई बंद थे—'पराधीन सपनेहु सुख नाहीं'। बहुत दुखी हुआ, बनिए के खर्चीले लड़के द्वारा छुटकारा मिला, सिनेमा की सैर की, फिर स्वतत्र। ( ४ ) महत्व—सब काम निकल सकते हैं। 'चाँदी का जूता', चोरी डाका भी डलवाता हूँ, सारे ससार में मेरा सम्मान है।

## कृषक-जीवन

( १ ) किसानो का जीवन ही भारतीय जनता का प्रतिनिधि जीवन है। जीवन सरल, प्रेममय, शिष्टाचारपूर्ण। इससे मितव्ययिता, दृढ़ता और कर्त्तव्यनिष्ठा की शिक्षा मिलती है। ( २ ) कृषक मनुष्य जाति का अन्नदाता है। ( ३ ) कृषक जाति की समस्या, बेगार, लगान की सख्ती, जमीदारों और महाजनों के अत्याचार, धर्म के ढोंग में अंधविश्वास। ( ४ ) सुधार—स्वास्थ्य की उन्नति, राजनीतिक और धार्मिक शिक्षा, आविष्कारों से जानकारी. विदेशी उन्नति से परिचय।

## वर्षा और किसान ( क )

( १ ) खेती का ढग, कल का उपयोग, वर्षा पर निर्भर, वर्षा पर उनकी जीविका अवलम्बित है। ( २ ) वर्षा के अभाव में किसानों की विपत्ति, नहरें बहुत कम हैं, वर्षा न होने से सूखा पड़ जाता है, उनके किए-कराए पर पानी फिर जाता है, वर्षा की अधिकता से भी हानि। ( ३ ) वर्षा

होने से किसान का उत्साह, मूसलाधार वर्षा मे भी खेत जोतता है। 'बरसि हो राम बदरिया कारी', 'घिर आए बदरवा कारे', आदि का मधुर संगीत। ( ४ ) वर्षा ही किसान का जीवन है, वर्षा न होने से दाने को तरसना, नहरों के अभाव मे सब कुछ वर्षा पर ही अवलम्बित है, हम किसानों पर निर्भर है, अतः वर्षा हमारी भी जीवनदायिनी है।

## वर्षा और किसान (ख)

( १ ) भूमिका—कवियों का वर्षा-वर्णन-मलार राग, नौकाविहार, इन्द्र-धनुष और घिरी घटाओं की शोभा। ( २ ) वर्षा के दो रूप- ( क ) जलती धरती की छाती पर अमृत-वर्षा, खेती की बहार, भीगते ढोर की जुगाली, भीगते किसान का आल्हा, बच्चो के खेल बरसते पानी में ( ख ) टपकती झोपड़ी या अधगिरी दीवार, भीगी लकड़ी, गीले कपड़े, अन्न की कमी, कभी-कभी बाढ़। ( ३ ) वर्षा के बाद मलेरिया एवं बुखार, गढ़ों की बदबू। किसान की आशायें, आशा के बल पर दुख को दुख न समझना, अतिवृष्टि से आशा पर पानी, किसान की पालक वर्षा।

## ग्राम-सुधार

( १ ) भारत का हृदय नगरों में नही गाँवों में है, गाँवों की उन्नति आवश्यक, ग्रामीणों की दुर्दशा, उनकी दरिद्रता और निरक्षरता का वर्णन, अंधविश्वास, दीनता, अपव्यय, दुर्दशा के कारण। (२) सुधार—शिक्षा का प्रचार हो, अशिक्षित होने के कारण—पुलिस, कारिंदे, महाजन द्वारा सताये जाते हैं, निशुल्क शिक्षा दी जाय, हर गाँव में एक स्कूल हो, खेती सम्बन्धी सुधार, नहरें अधिक बनाई जाँय, अच्छे बीजों का उपयोग सिखाया जाय, खाद का प्रबन्ध, नाज की मडी की व्यवस्था, दवाखानों और अस्पताल का प्रबंध। ( ३ ) रेडियो और वाचनालय स्थापित हो, पंचायतो का सगठन, जमीदार के अधिकार सीमित हों, उद्योग-धधो का प्रचार, किसान अपने खाली समय में कई उद्योग-धधे

कर सकता है। ( ४ ) आदर्श ग्राम की कल्पना, उसकी सुव्यवस्था, उस ग्राम के किसानों की दशा, ऐसे गाँवों द्वारा ही भारत की उन्नति हो सकती है।

## ग्राम-निवास या नगर-निवास

( १ ) ग्राम-जीवन का एक दृश्य, लहलहाते खेत, स्वच्छ वायु और शांतिमय वातावरण। नगर का एक दृश्य, मिल-कारखानों का दम घोटनेवाला धुआँ, कोलाहल मय और व्यस्त जीवन, सुख शांति और स्वास्थ्य का अभाव। ( २ ) ग्राम-जीवन की सुविधाएँ, ग्रामीणों का निष्कपट व्यवहार, स्वास्थ्य-लाभ की सुविधाएँ, प्राकृतिक सौंदर्य की मनोहारिणी छटा। असुविधाएँ—अशिक्षा, बस्ती में सफाई की कमी, दवाखानों का न होना, रेल, सिनेमा, डाक, पुस्तकालय आदि का अभाव। ( ३ ) नगर की सुविधाएँ, आधुनिक आविष्कारों का उपयोग, कम खर्च और कम समय में काफी काम, आने-जाने की सुविधा ग्रामों में जिन चीजों का अभाव है वे यहाँ सहज प्राप्त। नगरों की असुविधाएँ, दूषित वायुमंडल, स्वार्थ-द्वेष आदि से परिपूर्ण जीवन। ( ४ ) तुलना, दोनों में ही गुण-दोष हैं, नागरिक गाँव में नहीं रह सकेगा। ग्रामीण शहर में नहीं, कई बातों में ग्राम-जीवन ही श्रेष्ठ है।

## स्वास्थ्य और दीर्घजीवन

( १ ) स्वास्थ्य का महत्व, स्वस्थ मनुष्य को सब प्रकार की सुविधाएँ, अस्वस्थ मनुष्यकी कठिनाइयाँ, धनका सुख भी नहीं उठा सकता। शरीर स्वस्थ होने पर हृदय प्रफुल्लित और मस्तिष्क स्वच्छ रहता है, व्यायाम से ही स्वास्थ्य-लाभ। ( २ ) व्यायाम के ढग, अँगरेजी ढग के व्यायाम क्रिकेट, हाकी, फुटबाल के खेल, जिमनास्टिक, डबुल चलाना। ( ३ ) नियमानुसार व्यायाम करना, अनियमित व्यायाम से हानि, स्वास्थ्य पर प्रभाव पड़ना, शरीर कुडौल हो जाता है, दंड बैठक और कुश्ती का व्यायाम होना बहुत आवश्यक है। ( ५ ) लाभ—शक्ति की वृद्धि, शरीर

सुडौल हो जाता है, चित्त प्रसन्न रहता है, शारीरिक-मानसिक उन्नति होती है, चरित्र में दृढता आती है, आत्मा पवित्र रहती है, सबै सहायक सबल के कोऊ न निबल सहाय', 'निर्बलता घोर पाप है।"

## व्यायाम की उपयोगिता

( १ ) किसी समय हम शक्तिवान, तेजस्वी और दीर्घजीवी थे, आत्मिक और आध्यात्मिक विकास, हमारे दादा अस्सी नब्बे साल तक जीते थे, उस उम्र मे भी दो-तीन मन बोझा लादकर चार-पाँच कोस तक जा सकते थे। अब हम क्या हैं, दुबला-पतला शरीर, आँख कमजोर, गाल पिचके हुए, चालीसपचास मे ही ससार से चल देते हैं, दस सेर के बोझ के लिए कुली की जरूरत। ( २ ) दीर्घ-जीवन का रहस्य, स्वच्छ और सादा भोजन, ताजी और साफ हवा, स्वच्छ जल, गदगी के कारण होने वाली हानियाँ, सादे भोजन से लाभ, चटपटे भोजन, पान-तम्बाकू की हानि। ( ३ ) व्यायाम की आवश्यकता, ब्रह्मचर्य दोनों से होने वाले लाभ, तेजस्वी और आभापूर्ण मुखाकृति, बलिष्ठ शरीर और मस्तिष्क, नियम और संयम इन दोनों से जीवन सुव्यवस्थित हो जाता है। ( ४ ) प्रकृति के अनुकूल सब काम हों, इससे मन प्रसन्न रहता है, शरीर में स्फूर्ति, आशा और प्रसन्नता का सचार, ऐसा न करने से हानियाँ। उदाहरण, रात्रि विश्राम के लिए है, रात्रि मे नाटक देखने से हानि, दूसरे दिन आलसी हो जाता है, जीवन की व्यवस्था बिगड़ जाती है। ( ५ ) सादे, स्वच्छ और स्फूर्तिमय जीवन से दीर्घजीवी हो सकेंगे।

## दीपावली

( १ ) भगवान राम की लका-विजय के सम्मान-रूप मे, आर्यों की अनार्यों पर सबसे बड़ी विजय, उसी स्मृति-रूप मे दिवाली मनाते हैं। ( २ ) उत्सव की आयोजना के कारण, बरसात के बाद मरम्मत और सफाई, किसानों की सारी फसल कट चुकी होती है, वातावरण मे उत्साह

और नवीनता, बाजारो की शोभा। ( ३ ) छोटी दिवाली और धन-तेरस, चहल-पहल और रोशनी। ( ४ ) दीपावली का खास-दिन, प्रकाश की तैयारी, पकवान-मिष्ठान की तैयारी, चारो ओर प्रफुल्लित वातावरण, शाम को अगणित दीपको का प्रकाश, दूसरे दिन गोवर्द्धन-पूजा और तीसरे दिन भैया दूज।

## महात्मा गाँधी

( १ ) युग का सबसे महान पुरुष, वेश-भूषा, कुचले हुए राष्ट्र का प्राण, बाल्यकाल, जन्म २ अक्टूबर १८६६। काठियावाड़, पिता कर्मचंद या कबा गाँधी, माता पुतली बाई, सबसे छोटे पुत्र गाँधी पर माता के उपवास, चौमासे में व्रत का प्रभाव। ( २ ) विद्याध्ययन—पोरबंदर मे, फिर राजकोट एवं भावनगर-मदबुद्धि, सकोचशील। १३ वर्ष की अवस्था मे विवाह, पितृ-सेवा और पितृ-शोक। १८८७ में विलायत-गमन, जाति-बहिष्कार, विलायती जीवन की एक झाँकी, राजकोट मे वकालत। ( ३ ) दक्षिण अफ्रीका गमन सन् १८६१, दादा अब्दुल्ला का केस, रास्ते में दुर्गति। पगड़ी न उतारी, वर्ण-भेद का रोग। नेटाल इंडियन कांग्रेस का जन्म सन् १८९४ ई०, भारत लौटना १८९६ ई०। ( ४ ) अफ्रीका लौटने पर दुर्गति, बोअर युद्ध एव गाँधी की सेवा-वृति। सत्याग्रह का जन्म सन् १९०६। ( ५ ) गाँधी जी भारत में, चम्पारन और खेड़ा सत्याग्रह। रौलट ऐक्ट एवं राजनीतिक आँधी, अमृतसर भयकर काड। १६३० का आदोलन, नमक कानून तोड़ना, दंडी यात्रा, कठोर दमन। गाँधी इरविन पैक्ट। ( ६ ) राउंड टेबुल कांफरेंस, गाँधी का विलायत-गमन एवं असफलता, अछूतोद्धार। भारत का नया शासन-विधान १९२५, कांग्रेस राज्य और गाँधी जी। विश्व्यापी युद्ध, गाँधी का विरोध, क्रिप्स-योजना की असफलता, सन् १६४२ से भयंकर काड। कस्तूर बा एव देसाई का स्वर्गवास—जेल मे। ( ७ ) गाँधी जी एव आश्रम जीवन, सभी प्रगतिशील आंदोलन के केन्द्र। रचनात्मक कार्यक्रम

खादी, हरिजन, हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य, इत्यादि। उपवास महान संत। (८) अगस्त १९४७ में भारत स्वतंत्र। इस अवसर पर बापू की प्रसन्नता। सबको आशीर्वाद देते रहे। (९) हत्या-उनका महत्व-उनका सम्मान-संसार के सभी देशों ने उनका आदर किया। अपने समय का सबसे महान व्यक्ति।

## सिनेमा

(१) नाटक की उत्पत्ति, मनुष्य का स्वभाव अनुकरणप्रिय है, प्राचीन काल की नाट्यकला और नृत्यकला; महापुरुषों और वीरों के अनुकरणीय कृत्यों के अभिनय, मनोरंजन के लिए कठपुतली इत्यादि का नाच, रामकृष्ण की लीलाओं द्वारा नाटक का विकास। (२) सिनेमा—नाटक-अभिनय का वैज्ञानिक स्वरूप, फोटोग्राफी से शुरू, सिनेमा जनसाधारण के लिए अब अधिक सुलभ है, मूक सिनेमा के बाद सवाक सिनेमा, अत: नाटक की सी वास्तविकता आ गयी। (३) मनोरंजन का मुख्य साधन, नाटक से भी अधिक उपयोगी और धार्मिक, चित्रों द्वारा मनोरंजन। (४) लाभ, स्वाभाविक अभिनय के कारण संतोष और सुख-प्राप्ति, जाति-प्रेम, स्वदेश-प्रेम की प्रवृत्ति जाग्रत होती है, रुचि परिष्कृत होती है, व्यापारिक लाभ, विज्ञापन का सुलभ साधन, प्रचार का सुंदर साधन, युद्ध काल में सरकार द्वारा प्रचार-कार्य। हानि, लोग अच्छी शिक्षा कम ग्रहण करते हैं, बालकों के कोमल मस्तिष्क पर गंदे चित्रों का ही अधिक प्रभाव पड़ता है, पढ़ते-लिखते, सोते-जागते वे सिनेमा के दृश्य देखते हैं। (५) सुधार की आवश्यकता, ऐसे खेल बनाना कतई बंद हो जाय, तभी भारतीय सिनेमा उन्नति कर सकते हैं।

## आदर्श नायक

(१) महान और चमत्कारपूर्ण काम करनेवाला ही आदर्श हो सकता है। आदर्श पुरुष के सभी कार्य ऐसे होते हैं जिन्हें साधारण प्राणी असम्भव समझता है। (२) उसके कार्यों में त्याग और संयम

की छाप होती है और वे जीवन की अनेक परिस्थितियों में महत्वशाली काम करता है। ( ३ ) नायक का चरित्र आदरणीय होता है और उसके कार्य दूसरों के लिए अनुकरण के योग्य होते हैं। ( ४ ) राम कृष्ण, गौतम ईसा, गाँधी इत्यादि के उदाहरण।

## वृद्ध

( १ ) आकृति—झुकी कमर, पोपला मुँह, हड्डियों का ढाँचा, शिथिल अंग, सफेद बाल। ( २ ) स्वभाव—बहुत बातूनी, 'अपना पेट हाहू टूक न देहों काहू', जवानी डींग, अनुभवी और बुद्धिमान गंदे, रहना चिड़-चिड़ाना, बात-बात मे क्रोधित होना। ( ३) युवको के प्रति विचार, नयी सभ्यता, रहन-सहन, चाल-ढाल, स्त्री-स्वतन्त्रता आदि सभी के विरुद्ध, सुधारों के विरोधी। ( ४ ) उनके प्रति दया और आदर रक्खें, उनकी बातों को समझकर शिक्षा लें, वे तो कब्र मे पाँव लटकाये बैठे ही हैं, क्यों व्यर्थ उन्हें क्रोधित करें।

## देशाटन

( १ ) आवश्यकता—हमारी जिज्ञासु प्रकृति—हर चीज जानने की इच्छा उत्पन्न होना, अन्य देशों का हाल जानने के लिए हमारी आत्मा का छटपटाना। ( २ ) देशाटन के मुख्य साधन, रेल, हवाई जहाज, प्राचीनकाल के साधनों की तुलना, अकबर की सबसे तेज ऊँटनी नौ दिन-रात लगातार चलकर आगरे से विध्याचल तक पहुँची। आजकल की सुविधाएँ। ( ३ ) देशाटन से लाभ, मनोरजन, नयी-नयी और अजीब ब- देखने को मिलती हैं, ज्ञान बढ़ता है, कई ऐसी बातें हमें ज्ञात होती हैं जो हमें किताबों में नहीं मिलती, जलवायु-परिवर्तन से स्वास्थ्य को लाभ पहुँचता है, देश की उन्नति के लिए प्रेरणा मिलती है। ( ४ ) देशाटन के प्रति भारतीयों की उदासीनना। इसके कारण होनेवाली हानि, देश की एकता के लिए देशाटन आवश्यक है।

## विज्ञान के चमत्कार

( १ ) आजकल विज्ञान का युग है, जीवन में वैज्ञानिक आविष्कारों का उपयोग अब बहुत अधिक, लिफ्ट, बिजली और बिजली यंत्र आदि का उदाहरण, उक्त कथन की पुष्टि। ( २ ) आविष्कारों की कथा मोटर, रेलगाड़ी, जहाज, तार—टेलीफोन, टेलीविजन और सिनेमा रेडियो का परिचय और लाभ। (३) वैज्ञानिक आविष्कारों द्वारा लाभ। थोड़े समय में काफी लम्बा सफर तय कर सकते हैं, अधिक उत्पादन किया जा सकता है, सब साधन सुलभ हो जाने से विद्या-प्रचार में सुविधा। ( ४ ) हानिकारक वैज्ञानिक आविष्कार—गोली, बंदूक, गोले तोप, एटामिक बम, जन-माल-धाम का आशा से कहीं अधिक नाश। ( ४ ) विज्ञान का भविष्य, और भी अधिक आविष्कारों की संभावना, विज्ञान द्वारा मृत्यु पर विजय पाने की योजना, भविष्य उज्जवल है।

## उद्यान के आनंद

( १ ) जीवन में आनंद और प्रसन्नता की आवश्यकता, दिन भर के परिश्रम के बाद थोड़ा-बहुत मनोरंजन, आवश्यक, नगर के व्यस्त नागरिक के लिए उद्यान का आनद आवश्यक है। ( २ ) आवश्यकता, मनुष्य प्रकृति का दास, स्वच्छ वायु, प्रकाश, जल इत्यादि आवश्यक, बिना इनके वह जी नही सकता, उद्यान में ये सब प्राप्त, नगरो मे उद्यान ही सर्व-सुलभ है। ( ३ ) उद्यान का सौंदर्य मनमोहक होता है, शोभा अपूर्व, गुलाब के फूल, हरी-भरी लताएँ, घास का हरा बिछौना, ठंडे जल की फुहरियाँ छोड़ता हुआ फव्वारा, केलिगुंजन करते हुये पशु-पक्षी, ये सब हृदय पर मरहम का काम करते हैं। ( ४ ) भ्रमण का समय, सुबह-शाम प्रकृति की अनुपम शोभा, सुगधमय वायुमडल, क्षणभर के लिए स्वर्गीय आनंद का अनुभव होगा।

## होस्टल का जीवन

( १ ) समवयस्क मित्रों के साथ रहने का चाव, भोजन की सुविधा,

घरेलू झंझटों से मुक्ति, छात्रावास की व्यवस्था। ( २ ) लाभ—नियमित जीवन, विचार-विनिमय का अवसर मिलता है, मेल-जोल बढ़ता है, घर की अपेक्षा पढ़ाई-लिखाई की अधिक सुविधा, खेल-कूद के लिए नियत समय, सामूहिक जीवन के कारण राष्ट्रनिर्माण का अवसर। ( ३ ) हानि—सगे संबन्धियों से अधिक अनुराग और मेलजोल नहीं हो पाता, दुराचारी लड़कों से मिलकर चरित्रहीन होने की संभावना, प्रवृत्ति अधिक खर्चीली हो जाती है। ( ४ ) सुधार के उपाय—नियन्त्रक की नियुक्ति के संबंध में सावधानी, नियम बहुत कठोर न हो, नियन्त्रक देख-भाल करने में आलस्य न करें।

## कवि-सम्मेलन

( १ ) कविसम्मेलनों का इतिहास—राजदरबारों में कविता-पाठ द्वारा प्रारंभ, समस्यापूर्ति की अधिकता, मनोरंजन का श्रेष्ठ साधन। ( २ ) कविसम्मेलन का आँखोंदेखा वर्णन, सभापति का चुनाव, कवियों के हाव-भाव का प्रदर्शन, कवियों के नाज-नखरे, श्रोताओं का उत्साह प्रदर्शन; तालियों की गड़गड़ाहट, होहल्ला। (३) कविसम्मेलनों से हानि—कविताएँ प्रायः वाहवाही के लिए लिखी जाती है जिनका साहित्य में कोई महत्त्व नहीं होता, जनता कंठ-स्वर और लय की ओर ध्यान देती है, अपढ़ और अर्द्धसंस्कृत श्रोताओं के होहल्ले के कारण श्रेष्ठ कवि का उत्साह भंग हो जाता है। (४) सुधार के लिए सुझाव—कविगोष्ठी होना चाहिए, जिसमें सहृदय विद्वान भाग लें, कविता-पाठ के अतिरिक्त सुन्दर-असुन्दर रचना के सबन्ध में विचार-विनिमय हो, ऐसी गोष्ठियाँ जनता के मन में कविता का रसास्वादन करने की रुचि पैदा करेंगी।

## मनोरंजन के आधुनिक साधन

( १ ) दैनिक जीवन में मनोरंजन की आवश्यकता, दिनभर के परिश्रम की थकावट से चूर मनुष्य के लिए मन-बहलाव आवश्यक है, प्राचीन काल के मन-बहलाव का ढंग-नाचगाना, पूजा-पाठ। नवाबों

-जमाने में पतंग और कबूतरबाजी, तीतर-बटेर की लड़ाई। ( २ ) आजकल के साधन—फुटबाल, हाकी, टेनिस, शतरंज और ताश, विज्ञान ने मनोरंजन के अनेक साधन प्रस्तुत किये, सस्ता-प्रचलित साधन सिनेमा, 'सिनेमाबाजी' का शौक बढ़ रहा है। ( ३ ) रेडियो का प्रचार, धनिकों की चीज, महत्वपूर्ण भी है, सितार पियानों, सर्वसाधारण के लिए बाँसुरी, सरकस और कार्निवाल। ( ४ ) अन्य साधन—पठन-पाठन, उपन्यास-कहानी द्वारा मनोरंजन, कविता-पाठ, चित्रकला, मनोरंजन के साथ साथ ज्ञान-प्राप्ति, पिकनिक नाव द्वारा सैर का महत्व भी बढ़ रहा है। ( ५ ) श्रेष्ठ साधन वह है जिसमें मस्तिष्क के थके होने पर शरीर से काम लिया जाय और शरीर के थके होने पर मस्तिष्क से। दिन भर दिमागी काम करने वाले शाम को खेलें, दिन भर मजदूरी करनेवाले शाम को पढ़ें।

## हमारे त्योहार

एक ही प्रकार का काम लगातार करते रहने से मनुष्य ऊब जाता है। इच्छा होती है कि मन बहलाने के लिए कुछ नया कार्य-क्रम बनाया जाय। कार्य-क्रम ऐसा हो कि दैनिक चिन्ता से मुक्ति मिले और हँसी-खुशी से दिन व्यतीत हो। ऐसे उत्सवों से कई लाभ हैं। मन में नया उत्साह होता है; पिछली थकावट दूर होती है, इष्ट मित्रों और सगे संबंधियों से हम मिलते-जुलते हैं और आनन्द की झोंक में ईर्ष्या-शत्रुता जैसी बातें भूलकर सबसे मित्रता करने लगते हैं।

हमारे त्योहारों की विशेषता यह है कि हर एक के मनाने का ढंग भिन्न है। कोई दो त्योहार बिलकुल एक से नहीं हैं। रथ यात्रा का सामूहिक आनन्द, रक्षाबन्धन का पारिवारिक हेल-मेल और आशीर्वाद, जन्माष्टमी का शृंगार, विजयदशमी की लीलाएँ, दीपावली की स्वच्छता, शिवरात्री का व्रत और संयम, वर्ष के अन्त में वसंत-उत्सव और होली का प्रेम भरा हुड़दंग। गंगा-स्नान की यात्रा।

ये त्योहार हमारे प्राकृतिक जीवन के अनुकूल हैं। ऋतु-परिवर्तन

की सूचना भी इनसे मिलती है। वर्ष का जो समय जीवन के लिए जितना सुखद है उसमें महत्व पूर्ण त्योहारों की उतनी ही अधिकता है। अधिक सर्दी, अधिक गर्मी और अधिक बरसात मे हमारा कोई बड़ा त्योहार नहीं होता।

हमारे त्योहारों का सम्बंध भारतवासियों की सभ्यता और संस्कृति से है। विजय देशमी भारतीय सस्कृति के प्रचार की याद दिलाती है। गंगा-स्नान हमको प्रकृति की इस महान देन ( गगा ) का स्मरण कराती है। त्योहारों की अधिकता भारतवासियों के सुखमय जीवन की ओर सकेत करती है। बताती है कि हमारा जीवन कितना सुखी था, किस प्रकार आमोद-प्रमोद से हम दिन व्यतीत करते थे। होली के द्वारा दानवी शक्ति पर ज्ञान और भक्तिमय भारतीय संस्कृति की विजय का परिचय हमें मिलता है।

इन त्योहारों के द्वारा हमने अपने महान पुरुषो के प्रति श्रद्धाजलि अर्पित की है। जिनमें महान गुण थे उनकी जयतियाँ और उत्सव मना कर हम सिद्ध करते हैं कि भारतवासियों ने सदैव गुणो का आदर किया है। कृष्ण और राम के महान चरित्र जन्माष्टमी और विजय दशमी मे हमारे सामने रहते हैं। प्रह्लाद की भक्ति और हनुमान की शक्ति की कहानियाँ भी इन त्योहारों से याद आ जाती हैं। आज इन त्योहारो के मनाने मे बहुत कुछ आडम्बर से काम लिया जाने लगा है। दिखावे की तड़क-भड़क में मुख्य तत्व छिप-सा गया है। हम शिक्षित विद्यार्थियों का कर्तव्य है कि लकीर पीटना छोड़ा कर सच्चा उत्साह दिखावे और आडम्बर के कारण उत्पन्न उदासीनता दूर करें और ऐसे आनन्द से त्योहार मनाएं कि उनके उद्देश्य का प्रचार हो, जीवन सुखमय हो और प्रत्येक कार्य के लिए हमारी उमङ्ग बढ़ती रहे।

## सच्ची वीरता

सत्य का आशय है मन वचन और कर्म में एकता होना। जो बात

मन में हो वही कही जाय और उसी के अनुसार कार्य किया जाय। वीरता का आशय है अपने विचारों पर, अपने बचनो पर और अपने कर्मों पर दृढ़ रहना। दूसरे उनसे सहमत हैं कि नहीं, उनका समर्थन कर रहे हैं या विरोध, इसकी चिन्ता न करके जो अपने पथ पर आगे बढ़ता जाता है वही है सच्चा वीर।

वीरता का साधारण अर्थ है युद्ध में साहस के साथ लड़ना। विजय या पराजय की चिन्ता छोड़ युद्ध मे डटे रहना; कट भले ही जायँ पर पैर पीछे न रखना। इस शब्द का विशेष अर्थ है किसी भी क्षेत्र मे किसी भी विचार पर दृढ़ रह कर ऐसा काम करना जो साधारण मनुष्य की शक्ति के बाहर हो। धर्मवीर युधिष्ठिर, सत्यवीर हरिश्चद, दानवीर कर्ण, दधीचि और शिव—इसी तरह कर्म पर डटे रहनेवाले कर्मवीर कहलाते हैं। प्रेम की रक्षा के लिए मिटने वाले प्रेमवीर होते हैं। धन का सदुपयोग करने वाले धनवीर कहलाते हैं।

उनमे निजी स्वार्थ नही होता। अपने बल पर विश्वास होता है। दूसरों की सहायता की चिन्ता नहीं रहती। समाज को अपनी बातो से नहीं, अपने कार्य से प्रभावित करते हैं। कहते कम हैं काम अधिक करते हैं। बाधाओं से डरते नहीं, खेलते हैं। प्राणो का भय नहीं करते, प्राणों को हथेली पर रखते हैं। वीर अहिंसा का पुजारी होता है। दूसरों को मारता नहीं, मरता है। भारी से भारी अपराध क्षमा करने को तैयार रहता है। क्षमा वीरों का ही भूषण है। जो वीर नहीं है, वह क्षमा भी नहीं कर सकता।

वे गम्भीर होते हैं। छोटी छोटी बातों का उनपर कोई असर नहीं होता। साधारण बात पर वे हँस देते हैं, अप्रसन्न नहीं होते। वे न जल्दी सुख मानते हैं और न जल्दी दुख। राम को राजतिलक की सूचना मिली, प्रसन्न नहीं हुये। उनको बनबास हुआ वे दुखी भी नही हुये। उनकी प्रकृति टीन की तरह नही होती—न जल्दी गरम होते हैं न जल्दी ठडे। उनके मन की किसी को थाह नहीं मिलती। वे किसी को

पराया नहीं समझते। उनका दृष्टिकोण विस्तृत होता है। मैं-मेरा के मोह मे जल्दी नहीं पड़ते। वे सब मे एक ही आत्मा देखते हैं और सबकी सेवा के लिए तैयार रहते हैं।

समाज उनका आदर करता है। उनके त्याग और बलिदान के सामने झुकता है। कुछ वीरों की पूजा उनके जीवन काल ही में होने लगती है। कुछ की मृत्यु के पश्चात् समाज चेतता है, समझता है कि हमने अपना कुछ खो दिया। वीरों की स्मृति मे उत्सव जयन्तियाँ मनाकर, तिथि और संवत् चलाकर तथा अनेक स्मारक बनवाकर हम अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

## लड़कपन

(१) जीवन की सबसे सरल और भोली अवस्था। खाना-खेलना और सो जाना—इतना ही काम रहता है। स्वभाव सीधा-सादा रहता है, छल-कपट नहीं जानता। इतना भोला होता है कि बड़े उसे बार बार ठगते और हँसते हैं। (२) संतोष इस अवस्था मे बहुत रहता है। जो कुछ है उसी मे संतुष्ट। बढ़िया खिलौने और मिट्टी के खिलौनों के टुकड़े-दोनों में मग्न। बढ़िया रेशमी कपड़े और फटे पुराने—सभी एक समान। बढ़िया महल है तो प्रसन्न और झोपड़ी है तो खुश। अमीर है तो, गरीब है तो। (३) छोटे-बड़े और ऊँच-नीच का भेद बालक नहीं जानता। धनी बालक की मित्रता निर्धन से भी खूब होती है। (४) भूलना लड़कों के स्वभाव का अंग है। जरा देर मे लड़ते हैं, जरा देर मे मिलते हैं। 'खुट्टी' 'मिट्ठी' होते देर नहीं लगती। अपराध भी भूल जाते हैं, डर-मार भी भूल जाते हैं। (५) मिट्टी से बच्चों को बड़ा प्रेम होता है। उसी मे खेलते हैं, वही शरीर मे पोतते हैं और उसे खाते भी हैं। यशोदाजी ने मिट्टी खाने वाले बालक कृष्ण को एक दिन साँटी से डरा कर कहा था—मोहन बेगि दै उगलौ माटी। जरा देर उनके कपड़े साफ नहीं रहते—इधर पहने, उधर गंदे किये। (६) हमारे देश मे बालकों के जीवन पर विशेष ध्यान नहीं

दिया जाता। वे बहुत सा समय नष्ट कर देते हैं। उनको प्रेम से कोई काम नहीं समझाया जाता। एक कवि ने कहा है—शिशु भय से नहीं, प्रेम से पलते हैं। पीटने से बालकों का हृदय-कमल कुम्हला जाता है। (७) बच्चों को ईश्वर-रूप माना जाता है—वे बाल गोपाल कहलाते हैं। उनमें कोई दोष नहीं होता। प्रेम का व्यवहार करने पर बड़े सुशील बन जाते हैं। बच्चे ही देश की सच्ची संपत्ति होते हैं।

## अँगूठी

(१) ऐसा गहना जिसे स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध, अमीर-गरीब सभी पहनते हैं—सबको इसकी चाह रहती है। बच्चों के लिए पीतल की, छोटी जातियों के लिए चाँदी की, अमीरों के लिए मूल्यवान नगों से जड़ी अँगूठियाँ रहती हैं। (२) अँगूठियाँ साधारणतः सोने की होती हैं। अब रोज नये नमूने इनके निकलते हैं। पहनने वाले का नाम भी इन पर खुदने लगा है। कुछ अँगूठियों में दो-दो नाम होते हैं—एक पति का दूसरा पत्नी का। ऐसी अँगूठियाँ प्रायः ससुराल से ही मिलती हैं। (३) अँगूठियों में नीलम, पुखराज, लहसुनिया आदि नग भी जड़े जाते हैं। कहते हैं, ऐसी अँगूठियाँ पहनने से कुग्रहों की शांति होती है और पहनने वाले को लाभ होता है। इसी उद्देश्य से ताँबे की मिलावट की अँगूठी भी पहनी जाती है। (४) अँगूठियों से उँगलियों की शोभा बढ़ती है—पहनने वाले को गर्व होता है। कभी अँगूठियाँ पहनने वालों की जान जाने का कारण बन जाती हैं, तो कभी विपत्ति पड़ने पर इन्हें बेचकर काम भी निकाला जा सकता है। एक समय अँगूठी बदलकर विवाह-सम्बंध पक्का करने का चलन था। आज भी विवाह में अंगूठी बदली जाती है। (५) सबसे हल्का और सस्ता गहना होने के कारण उपहार में अँगूठियाँ बहुत दी जाती हैं। इनसे देनेवाले की याद बनी रहती है। (६) कुछ लोग एक-दो से अधिक अँगूठियाँ हाथ में पहनते हैं। ऐसों की प्रायः हँसी ही उड़ायी जाती है।

## वी व्यवसाय

( १ ) व्यवसाय चुनाने की आवश्यकता, पेट भरने का प्रश्न, परिवार की मर्यादा निभाने का प्रश्न। (२) व्यवसाय सम्बन्धी कठिनाइयाँ, नित्य नये आविष्कार; मशीनों का प्रचार। (३) प्राचीन काल की स्थिति–प्रत्येक व्यक्ति अपने हाथ से काम कर रोटी चलाता था, खेती, व्यापार दस्तकारी की अधिकता; मशीनों का अभाव। (४) लाभ– प्रारभ से प्रयत्न करने से हम व्यवसाय मे सफलता पा सकते हैं; परेशानी कम हो जाती हैं; मारे मारे नहीं फिरना पड़ता–सुख शातिमय जीवन हो जाता है। (५) ध्यान रखने योग्य बातें--अभिरुचि–अपनी रुचि के अनुकूल व्यवसाय चुनो। योग्यता–अपनी योग्यता को समझ कर व्यवसाय चुनों, ऐसा व्यवसाय न हो जो चरित्र को गिरादे। धन पाने की सभावना–जिससे भविष्य में काफी आय की संभावना हो (६) चुनाव न करने से हानि–व्यवसाय ढूँढने में परेशानी होती है; शारीरिक, आर्थिक और मानसिक स्थिति तथा योग्यता के अनुकूल व्यवसाय नहीं मिलता।

## बसंत

माघ की कड़ी सर्दी का अंत, वृक्षों मे फिर से नये पत्ते नई कोपलो का आगमन; कोयल की मधुर कूक द्वारा बसत के आगमन की सूचना; सुहावना समय, न अधिक गर्मी न अधिक सर्दी। (२) प्रकृति में परिवर्तन–सब जगह रंग बिरंगे फूलो की भरमार, पेड़ पौधो मे श्री वृद्धि; फूलो पर भौरो का मधुमय गुजार; पक्षियों का मधुर कलरव। (३) मनुष्य में परिवर्तन–कठिन शीत से ऊबा हुआ मनुष्य; प्रकृति के परिवर्तन ने मनुष्य के हृदय में एक नवीन उमग, नयी स्फूर्ति भर दी है, वह नाँच गाने में विशेष रूप से आकर्षित होने लगा है, इसी रुचि को पूरा करने के लिए होली का त्योहार मनाया जाता है, जिसमे नाच-रंग आमोद-प्रमोद की पूर्ण स्वतंत्रता होती है। (४) ऋतुराज की श्रेष्ठता–प्रत्येक प्राणी के लिए सुखदायक, गर्मी की चिलचिलाती धूप और जाड़ो की ठिठुरा देने

वाली सर्दी इस समय किसी को कष्ट नहीं देती, इस ऋतु से सबको आनद प्राप्त होता है।

## फूल

(१) फूल सबको अच्छे लगते हैं, आँखो को तृप्ति मिलती है; हृदय सुवास से प्रफुल्लित हो उठता है। (२) फूलों का जन्म फलो की प्राप्ति के लिए हैं; सुगध देना उसका गौण उद्देश्य है। (३) फूल का विकास—ढोढी—सब प्रकार सुरक्षित कली रूप में बदलना—कली का चटख कर फूल बनना (४) फूल के अग—पखुडियाँ—केसर के पतले लच्छे—पराग केसर। (५) उपयोग—देवताओं को अर्पित करना, भाँग बूटी मे डालना, दवाओ में काम आना, इत्र बनाना। कवियों द्वारा कविता की सजावट करना, स्त्री-पुरुषो का शृंगार (६) ईश्वर की अनुपम सृष्टि।

## भारत के साधु

( १ ) आदर्श साधु—अभिमान रहित, बिषय वासनाओ से दूर, परोपकारी। ( २ )हमारे देश के साधु—१० प्रतिशत मूर्ख, भँगेड़ी-गँजेडी, ऐश्वर्य के इच्छुक, लालची, क्रोधी, महा ठग। (३) हमारी मूर्खता—इन मूर्खों की पूजा करते हैं, अंधविश्वासों पर चलना, उन्हे अनावश्यक महत्व देना। ( ४ ) महन्त बडी बडी जागीरे—भोग विलास के प्रत्येक सामग्री प्रस्तुत रहती है—उन्हे ससार के उपकार-अपकार से कोई मतलब नहीं। ( ५ ) साधुओ के निराले वेश, अघोरी बाबा—हड्डियों की माला पहिने, खोपड़ी लिए नगे बदन, चिमटा, खप्पर।

## पंद्रह अगस्त

( १ )पराधीन भारत को स्वतत्र करने के लिए १८८५ में कॉंग्रेस का जन्म। आरंभ में स्वराज्यप्राप्ति इसका उदेश्य न था—छोटे छोटे अधिकार चाहती थी। १९१९ मे उत्तरदायी शासन की माँग। १९२१ मे पहली बार कहा—'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है।' (२) १९२९ मे भारतीय स्वन्तत्रता की कॉंग्रेस ने घोषणा की। पश्चात् प्रत्येक माँग

के साथ सत्याग्रह शुरू हुआ। आन्दोलन अहिंसात्मक था; पर सरकार गोली और लाठी से उसे दबाती रही। १९३६ में सारे भारत मे कॉंग्रेसी शासन। १९३९ में महायुद्ध। कॉंग्रेस की इच्छा के विरुद्ध भारत युद्ध में सम्मिलित किया गया, अतएव मंत्रियो का त्यागपत्र। (३) ८ अगस्त १९४२ को कॉंग्रेस ने ब्रिटेन से 'भारत छोड़ो' की माँग की। १९४२ से ४६ तक सारे भारत मे अत्याचार और दमन। तब तक नेता जी सुभाष चन्द्रबोस ने आजाद हिंद सेना तैयार कर ली। (४) ३ जून १९४७ को ब्रिटिश पर्लियामेंट ने तय किया-१५ अगस्त ४७ से भारत स्वन्तत्र उपनिवेश हो जायगा। दो भाग—भारत और पाकिस्तान। लीगियो की कट्टरता से लाचार होकर भारत का इस तरह बटवारा स्वीकार किया गया। (५) १५ अगस्त १९४७ को हम शताब्दियो की गुलामी के बाद स्वतन्त्र हो गये। पं० जवाहरलाल प्रधान मन्त्री बने। हमारी स्वतन्त्रता का यह सुप्रभात है। हमारी गणना संसार के स्वन्तत्र और सभ्य देशों मे है। वह दिन शीघ्र आयगा जब संसार पहले की तरह भारत का हर बात में मुँह जोहेगा। भारत को इस पद पर पहुँचाने के लिए हमे सब तरह का प्रयत्न करना चाहिए। जय हिंद।

## संगति

( १ ) मनुष्य सामाजिक प्राणी है, अत: उसे साथ में रहना और जीवन बिताना ही पड़ता है। ( २ ) 'सगति ही गुन ऊपजे, सगति ही गुन जाय।' मनुष्य के स्वभाव और चरित्र की परख उसके साथियो से ही होती हैं ( ३ ) बुरी संगति मे भले भी बुरे हो जाते हैं। 'काजल की कोठरी मे जाय से एक लीक काजल की लागिहै पै लागिहै। ( ४ ) अच्छी स गति की बान बालकों मे बचपन से डालनी चाहिए।

## मित्र के कर्तव्य

( १ ) सामाजिक प्राणी होने के कारण मानव अकेला नहीं रह सकता, जान-पहचान के बाद मित्रता का प्रारभिक रूप, एक दूसरे को

अपना समझना मित्रता का मूलमंत्र। ( २ ) सच्चे मित्र की पहचान, निस्वार्थी मित्र, जो दुख और सुख मे निरंतर साथ दे सकें, सुख मे सभी हिस्सा बटाते हैं, आपत्ति के समय भी जो साथ दे, वही सच्चा मित्र है। ( ३ ) कर्तव्य, विपत्ति मे सहायता दे—कधे से कधा भिडाकर, उस समय प्राणों का भी मोह न हो, सत्पथ की ओर चले, तन-मन धन से सहायता करे, विपत्ति में धीरज बँधाए—साहस दे। ( ४ ) सच्चा मित्र आर्थिक, मानसिक सभी प्रकार का हित करता है, कृष्ण-सुदामा की कथा राम-सुग्रीव की मित्रता।

## समाचार पत्र

( १ ) समाचार पत्रों का जन्म, सबसे पहला अखबार सोलहवीं शताब्दी मे निकला, भारत मे समाचार-पत्रों का उदय, सबसे पहले जो अखबार निकला उसका नाम 'इडिया गजट' था। ( २ ) वर्तमान समाज मे समाचार-पत्रों का स्थान, प्रत्येक प्रात, प्रत्येक भाषा मे एक न एक समाचार-पत्र अवश्य छपता है, आज प्रत्येक मजदूर-किसान समाचार पत्र की उपयोगिता जानता है। ( ३ ) लाभ—मनोरंजन होता है, सब प्रकार के समाचार बहुत शीघ्र मिलते हैं, ससार की गतिविधि का पता यथासमय मिल जाता है, रुचि परिष्कृत होती है, विचारों और सिद्धातो के प्रचार का सुलभ साधन शिक्षा-प्रसार मे सहयोग मिलता है। ( ४ ) भारतीय समाचार पत्र, उनके कुछ नाम, हिंदी के समाचार-पत्र 'प्रताप', 'आज', 'भारत', 'हिंदुस्तान', का महत्व बहुत है। ( ५ ) इन्हें स्वतन्त्रतापूर्वक लिखने का अधिकार नही है। प्रेस ऐक्ट, विदेशो मे सरकारें भी पत्रकारों से डरती हैं। ( ६ ) समाचार-पत्रो का भविष्य, प्रचार बढ़ रहा है।

## पुस्तकालय

( १ ) आवश्यकता, ज्ञान-वृद्धि का साधन, आर्थिक स्थिति इतनी संतोषप्रद नही कि अधिक पुस्तकें खरीद सके, ज्ञानोपयोगी पुस्तको की

संख्या बहुत अधिक है, पुस्तकालय इस कमी को दूर करता है। ( २ ) प्रत्येक विद्यालय मे पुस्तकालय, निःशुल्क पुस्तकालय के लाभ, गरीब विद्यार्थियो को भी सुविधा रहती है, निश्चित समय में पुस्तक समाप्त करने की आदत पडती है। ( ३ ) उपन्यासों की भरमार न हो, बहुमूल्य पुस्तको का चयन, पुस्तकों का चयन अनुभवी विद्वानों द्वारा हो, पुस्तको की सूची और रक्षा की व्यवस्था, कोश और सहायक ग्रंथ। ( ४ ) विविध पत्र पत्रिकाएँ हम मँगा नहीं सकते, वहाँ सभी प्राप्त रहती है, पुरानी फाइलें भी मिलती हैं। ( ५ ) विद्या-प्रचार होता है और पुस्तकालय शिक्षा-प्रचार का सर्वश्रेष्ठ साधन है।

## विद्या

( १ ) उत्पत्ति 'विद्' धातु से है जिसका आशय ज्ञान हैं, प्राणी की शक्तियो को विकसित करती, वस्तुओ का यथार्थ ज्ञान कराती, विद्या द्वारा मनुष्य के स्वभाव, चरित्र, बुद्धि का संस्कार होता है। (२) अमर शक्ति है जिसके द्वारा मनुष्य में वस्तुओ को परखने और उनकी अन्तरात्मा तक समझने की शक्ति आती है। ( ३ ) विद्या-धन अमर बेल के समान सदा बढता ही रहता है। इसे न चोर चुरा सकता हैं और न कभी खर्च हो सकता है। ( ४ ) धनी का मान अपने ही देश मे होता है, पर विद्वान सर्वत्र पूजित है।

## विद्यार्थी-जीवन

( १ ) मनुष्य-जीवन का स्वर्णकाल, जीवन-सग्राम मे विजय पाने का शिक्षाकाल, नैतिक, आत्मिक और आध्यात्मिक शिक्षाएँ प्राप्त करने का सुअवसर। ( २ ) सब चिंताओं से मुक्ति, निश्चित रह कर अपना जीवन महत्वपूर्ण और सुशिक्षित बनाने का अवसर मिलता है, ब्रह्मचर्य और स्वास्थ्य-विषयक नियमो का पालन करने मे सुविधा। ( ३ ) प्राचीन-काल के विद्यार्थी-जीवन की श्रेष्ठता, आज की शिक्षा-प्रणाली में उनका अभाव, दोनो की तुलनात्मक विवेचना, और आजकल के विद्यार्थियों

पर उनका प्रभाव। (४) आज विद्यार्थी-जीवन का दुरुपयोग, वे इसे सैर-सपाटे का अवसर समझते हैं, उनकी भूल का दिग्दर्शन। (५) विद्यार्थी जीवन में सुधार, शरीर और मस्तिष्क को अधिक पुष्ट और मजबूत बनाएँ, भावी सुखों की यह नींव होगी।

## परीक्षा

(१) अच्छे-बुरे की पहचान परीक्षा से होती है, इसके नाम से आलसी और लापरवाह भी पढ़ लेते हैं। यों जीवन भी तो परीक्षास्थल ही है, मनुष्यत्व की परीक्षा पग-पग पर देनी होती है। (२) परीक्षा का भय, विद्यार्थी को भय, राजे-महाराजे, ऋषि-मुनियो को भी परीक्षा से भय, परीक्षा की भयानकता तलवार की धार के समान, सत्यपरायण और धैर्यवान पुरुष परीक्षा से नहीं डरते। (३) परीक्षा मे उत्तीर्ण होने की प्रसन्नता, हृदय को स्फूर्ति और मस्तिष्क को बल मिलता है; अनुत्तीर्ण परीक्षार्थी की दुखमय दशा, दो एक उदाहरण–राजा हरिश्चन्द्र, महात्मा ईसा, प्रताप, शिवाजी। (४) महत्व, परीक्षा के लिए हमेशा तैयार रहना चाहिए।

## अध्ययन के आनंद

(१) मनोरजन के अन्य आधुनिक साधन, देशाटन-भ्रमण द्वारा, आमोद-प्रमोद द्वारा, दानपुण्य-सत्सग द्वारा, किसी न किसी उपाय से लोग अपना मनोरजन अवश्य करते है। (२) पुस्तकों या पठन-पाठन द्वारा मनोरंजन, मनोरजन का सुलभ, श्रेष्ठ और सुखकर साधन, गरीब अमीर सभी के लिए सुलभ, आत्मिक, आध्यात्मिक, दैहिक-दैविक सभी तत्वो का सुन्दर विवेचन। (३) आत्म-सस्कार और चरित्र-निर्माण मे उत्साह मिलता है, दुख में सात्वना, धैर्य और साहस मिलता है, महापुरुषो के जीवन-चरित के अध्ययन से जीवन में उन्नति करने की प्रेरणा मिलती है। (४) अध्ययन का महत्व, ज्ञान और बुद्धि का उत्तरोत्तर विकास, अशिक्षा, अभाव, विवेक-शक्ति का सवर्धन होता है। दूसरे

देशो की उन्नति का ज्ञान स्वदेशी उन्नति के लिए जीने का प्रेरक है।

## शिक्षा का प्रभाव

(१) शिक्षा की आवश्यकता, बिना-शिक्षा के मनुष्य पशु के समान है, बिना पढे नर पशू कहावे सदा सैकड़ो दुःख उठावे, जीवन मे विजय पाने लिए शिक्षा आवश्यक। (२) उद्देश्य, जीवन-सग्राम के लिए सब तरह से उपयुक्त बनाना। शारीरिक मानसिक और आत्मिक विकास करना, प्रधान उद्देश्य शारीरिक विकास तब शेष दोनों। (३) चरित्र-निर्माण, शील, उदारता, क्षमाशीलता का भली भाँति उपयोग करना, शिक्षा, असत्य और अन्याय का प्रतिरोधविरोध करना, शिक्षा का इन सब पर भी प्रभाव अवश्य पडता है। (४) अन्य गुणो पर प्रभाव, देश-प्रेम की भावना, जाति-प्रेम और एकता, स्वतंत्रता का मूल्य, राष्ट्रीय उन्नति, सहयोग की इच्छा। (५) शिक्षा द्वारा ही आचरण-स्वभाव अधिक प्रभावित होता है।

## गुरुभक्ति

(१) अच्छी शिक्षा गुरु द्वारा ही मिल सकती है, 'गुरुबिन होई न ज्ञान', स्वाध्याय से विद्या-प्राप्ति हो तो सकती है पर अनुभव द्वारा दी गयी शिक्षा नहीं, संसार के सभी बड़े विद्वान गुरु द्वारा ही बड़े बन सके। [२] दो प्रकार से शिक्षा मिल सकती है—[क] रुपए पैसे द्वारा [ख] सेवा-भक्ति द्वारा, दूसरे साधन का महत्व अधिक हैं सेवा-भक्ति द्वारा, गुरु प्रसन्न होकर ज्ञान सिखाता है। [३] गुरुकुल का आदर्श, कृष्ण- सुदामा के गुरु सादीपनि का दृष्टांत, धनी-निर्धन का विचार नही करते, पहले की और आजकल की तुलना, आजकल धन से ही गुरु की सेवा की जाती है। [४] गुरुभक्ति और गुरु-दक्षिणा, द्रोणाचार्य और एकलव्य, शिवाजी ने समर्थ गुरु रामदास की आज्ञा से सिंहनी का दूध दुहा, पुराणों में ऐसे अनेक दृष्टात हैं, गुरु और गुरु-सेवा का महत्व—

गुरु-गोविंद दोऊ खड़े, का के लागूँ पाँय।
बलिहारी गुरु आपकी, गोविंद दियो बताय॥

## स्त्री-शिक्षा

[ १ ] आवश्यकता, अन्धविश्वास, भय, पर्दा, आभूषण-प्रियता आदि दुर्गुण, शिक्षा द्वारा इनका दूर होना आवश्यक, बचपन में बालक माता से ही सब कुछ सीखता है, पति को जीवन-सग्राम में सहयोग देने के लिए सुशिक्षित होना आवश्यक। [ २ ] लाभ—मानसिक विकास और ज्ञान, गृहकार्य मे योग्य, कला-प्रिय हो जाता है, शिशु-पालन मे अधिक जानकारी हो जोती है, वे गुण आ जाते है जिनसे गृह स्वर्ग बनाया जा सकता है। [ ३ ] शिक्षा गृहस्थी-सबधी कार्यो से सबधित हो, आजकल के साथ भारत की प्रचीन आर्य-संस्कृति का परिचय कराया जाय, स्त्री-शिक्षा पुरुषो की शिक्षा से भिन्न होनी चाहिए। [ ४ ] आज की शिक्षा, युवकों की तरह फैशन और विलास की बातों का शौक युवतियों को भी हो जाता है, वे किताबी जानकारी पाती हैं। स्वास्थ्य खो बैठती है, उत्तरदायित्व की भावना छोड़कर अधिकार-प्राप्त करनेऔर पुरुषों से स्वतत्र रहने की आवाज उठती हैं। [ ५ ] सहशिक्षा होनी चाहिए बचपन में आवश्यक, युवावस्था मे नियंत्रण रखकर सहशिक्षा होनी चाहिए, शिक्षा के प्रचार से ही स्त्री-जाति की उन्नति हो सकती है और शिक्षित नारी ही 'गृह-लक्ष्मी' हो सकती है।

## सैनिक और शिक्षक

[ १ ] तलवार कलम, देश के लिए दोनों उपयोगी, नागरिकों के मानसिक विकास, सदाचार-सद्वृत्ति की भावना शिक्षक द्वारा, देश रक्षा चोर-डाकुओं पर नियत्रण, सुप्रन्ध के लिए सैनिक। [ २ ] शिक्षक के कार्य, सोई हुई मनुष्यता का विकास, कला-कौशल आचार-व्यवहार और उद्योग- धधो की उन्नति, सैनिक के कार्य,- सुप्रबध तथा शाति का पहरेदार, अत्याचार दूर करना, पारस्परिक कलह मिटाना, जान

हथेली पर लिए देश की रक्षा करना। [ ३ ] तुलना सैनिक को भी शिक्षा की आवश्यकता, बिना शिक्षित हुए सैनिक योग्य नहीं, अतः शिक्षक प्रमुख, शिक्षा मस्तिष्क को बल देती है और मस्तिष्क तलवार का संचालन करता है। [ ४ ] शिक्षक का महत्व सैनिक से अधिक है, राष्ट्रनिर्माण मे दोनों उपयोगी और महत्वपूर्ण है।

## परिश्रम का महत्व

( १ ) प्रकृति हम सबको परिश्रम करने को बाध्य करती है, खाना पचाने के लिए हिलना, शरीर स्वच्छ रखने के लिए नहाना इत्यादि, अमीर-गरीब सबको थोड़ा-बहुत परिश्रम अवश्य करना पड़ता है। [ २ ] परिश्रम से उन्नति, धनिकों के लिए आध्यात्मिक विद्या और ज्ञान के लिए भी परिश्रम आवश्यक, साधारण स्थितिवालो के लिए जीविकोपार्जन के साथ-साथ ज्ञानार्जन आवश्यक। [ ३ ] परिश्रम से प्राप्त आत्मतुष्टि, कोई बेकार नहीं बैठना चाहता, परिश्रम से ही उन्नति सम्भव, यश, धन एव संतोष प्राप्त होता है, उद्योगी पुरुष ही लक्ष्मी पा सकते हैं। ( ४ ) 'ऊँची से ऊँची उन्नति सुलभ है। सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य, बाबर नादिरशाह, शिवाजी, विद्यासागर के उदाहरण ; महत्व-श्रम ही सों सब कुछ मिलै, बिनु श्रम मिलै न काहि, हमे परिश्रमी होना चाहिए।

## पशु-पक्षियों से प्रेम

( १ ) मनुष्य और पशु का भेद-दोनो एक ही हैं, बन्दर और बनमानुप का उदाहरण, बुद्धिमान होने के कारण मनुष्य उनसे बढ़ा-चढ़ा है, बड़े से लेकर छोटे तक सभी पशु-पक्षी का लोहा मानते हैं। ( २ ) पशु-पक्षियो के प्रति मनुष्य का प्रेम, पशु भी मनुष्य के प्रेम और स्नेह का बदला देते हैं, कुत्ते, घोड़े, हाथी आदि की स्वाभाविक-भक्ति, मनुष्य हिंसक पशुओ से भी प्रेम करता है—सरकस वाले। ( ३ ) तोता-मैना, बुलबुल, तीतर, बटेर आदि के प्रति मनुष्य का प्रेम। हंस और नल के प्रेम का उदाहरण, युधिष्ठिर और उनके कुत्ते का उदाहरण। गौतम

ने हंस को बचाने के लिए भाई से बैर मोल लिया। कुत्ते-बिल्लियाँ अँगरेजो को पुत्रो-से प्रिय हैं। [ ४ ] मनुष्य और पशु-पक्षियो में प्रेम होना स्वाभाविक, दोनो का हृदय प्रेम-स्नेह और सहानुभूति से ओत-प्रोत हैं, दोनो एक दूसरे के लिए समान उपयोगी हैं, मनुष्य पशु-पक्षियो के साथ अधिक उदारता दिखाकर अपना जीवन अधिक उपयोगी बना सकते हैं।

## जातीय उन्नति के साधन

[ १ ] उन्नति की अवश्यकता, संसार की उन्नत-अवनत जातियाँ-जापान और चीन का उदाहरण, मिश्र-ईरान का आजकल कहीं नाम नही, जर्मन-अँग्रेजों का बोलबाला है। [ २ ] उन्नति के कारण-शिक्षा-प्रसार की अधिकता, वैज्ञानिक आविष्कार की सुविधा, जाति के लिए आत्म-बलिदान की भावना, जाति के प्रति आत्माभिमान, सरटामसरो का उदाहरण। ( ३ ) उन्नति के सामाजिक कारण, सब मे समान व्यवहार, सहयोग-सहायता देने का उत्साह, व्यसन-व्यभिचार का अभाव होना, नारी जाति की प्रतिष्ठा, जहाँ नारी की प्रतिष्ठा होती है वहाँ देवता रहते हैं, उद्योग-धन्धो की प्रगति। [ ४ ] हमारी जाति अवनत है, कारण, ऊपर लिखी बातों का अभाव, सुधार के उपाय, तभी हिंदू जाति उन्नति कर सकेगी।

## हमारे जीवन का ध्येय

[ १ ] वर्तनाम शिक्षा का उद्देश्य, सौ में निन्नानवे की नौकरी की आकाक्षा, भिक्षा का वास्तविक उद्देश्य—मनुष्य को मनुष्य बनाना, तन-मन-धन का विकास, आज की शिक्षा-प्रणाली में अभाव। [ २ ] हमारे भविष्य के विषय मे माता-पिता के विचार, ऊँची से ऊँची शिक्षा देने के बाद बड़ी नौकरी का सुख-स्वप्न देखना, प्राय: सभी पुत्र को आई० सी० एस० देखना चाहते हैं। [ ३ ] हमारे विचार, स्वतत्र व्यवसाय, दूसरे की गुलामी नही करेंगे, 'पराधीन सपनेहु सुख नाहीं', पेट-पूजा के साथ देश-सेवा। ( ४ ) सब से आवश्यक बात—शिक्षा के प्रारभ में ही

अपने जीवन का ध्येय निश्चित कर लेना आवश्यक, अन्यथा 'धोबी का कुत्ता घर का न घाट का' की सी दशा होना संभव है।

## परोपकार

[ १ ] प्रकृति के सभी कार्य परोपकारार्थ, नदी का जल, मेघ अपने लिए पानी नही बरसाते, 'तरुवर फल नहीं खात हैं, सृष्टि का विकास परोपकार आदि पर निर्भर, स्वार्थी लाभदायक नही, 'आपन पेट हाहू मैं न देहौं काहू, परोपकार से ही दुनिया का दर्रा चलता है। [ २ ] परोपकार हमारा कर्तव्य, स्वार्थी नर मनुष्य नही कहला सकता, सिर्फ अपना ही पेट भरना आवश्यक नही, दूसरो के दुख—कष्ट मे सहायता देना मनुष्य का परम धर्म है। ( ३ ) 'परहित सरिस धर्म नहि भाई', परोपकारी सब से बडा धर्मात्मा है, दधीचि ऋषि, राजाशिवि भगवान बुद्ध के उदाहरण। ( ४ ) परोपकारियों मे भी वे श्रेष्ट हैं जो प्रत्युपकार की आशा नही रखते, उसे अधिक सुख प्राप्त होता है, प्रत्युपकार से रहित परोपकार जीवन का महत्वपूर्ण अग है।

## सच्चरित्रता

( १ ) धनी का उतना अधिक आदर नही जितना चरित्रवान का, आत्मिक सुख—शाति की प्राप्ति होती है, ( २ ) सच्चरित्र की पहचान, संयमी—नियमी, बात का पक्का, मन बज्र की भॉति कठोर, सब काम लोगों की रुचि के अनुसार होते हैं। [ ३ ] उपाय, सब सच्चरित्र हो सकते हैं, गरीब—अमीर मे कोई भेद नही, सच बोल कर, शीलवान, उदार, दयालु बन कर सच्चरित्र बना जा सकता है। संयम-नियम से रहना अति आवश्यक है। [ ४ ] लाभ—जीवन प्रभावशाली, सुख—सम्पत्ति का अभाव नहीं खटकेगा, लोग उसका विश्वास करेंगे। [ ५ ] महात्मा ईसा, प्रताप, युधिष्ठिर, महात्मागॉधी का उदाहरण। [ ६ ] सच्चरित्रता ही सबसे महान गुण है। सच्चरित्र मनुष्य ही देवता है।

## आत्मसम्मान

[ १ ] आत्मविश्वास स्वाभाविक स्वाधीनता का द्योतक, अपने अस्तित्व का प्रतीक, अपनत्व का परिचायक, आत्मसम्मान न होने से मानव दानव है, बिना सौंदर्य के पुष्प के समान है। [ २ ] सम्मान की लालसा, आत्मसम्मान के लिए ही मनुष्य जीना चाह रहा है, समाज में आत्मसम्मान का बोलबाला है। [३] बाधाएँ, स्वार्थपरता, स्वार्थ के कारण झूठ बोलना, निंदनीय कार्य करना, आत्मा का हनन, अतः स्वार्थ का परित्याग करे, निस्वार्थ कार्य से आत्मसम्मान का बोध, आत्मसम्मान से मनुष्य मनुष्य रहता है। [ ४ ] कुछ आत्मसम्मानी, प्रताप, गोविंदसिंह, गाँधी जिन्होंने बादशाह से मिलने पर भी अपने वस्त्र नहीं बदले। [ ५ ] आत्मसम्मान के लिए आवश्यक बाते, अपने को पहचानना, अपने दोष दूर करना, अपने ऊपर विश्वास रखना, बगैर इनके आत्मविश्वास नहीं। आत्मविश्वास के बिना आत्मसम्मान असंभव।

## रामायण से शिक्षा

[ १ ] रामायण का महत्व, समस्त हिंदू समाज मे आदरणीय है, अशिक्षितों मे भी बहुत अधिक प्रचार है, हिंदीका सम्मानित काव्य तुलसीदास की अमर रचना। [ २ ] रामायण की रचना का उद्देश्य, रामभक्ति का प्रचार, हिंदुओं पर अत्याचार किये जाते थे; उनको प्रोत्साहन दिया गया कि दुष्टो का नाश करने को ईश्वर अवतार लेता हैं। [ ३ ] रामायण से नैतिक और सामाजिक शिक्षा, राम के आदर्श चरित्र से आचरण-संबंधी शिक्षा, भरत-लक्ष्मण आदि का भ्रातृ-प्रेम, वर्णाश्रम-धर्म का समर्थन- सामाजिक व्यवस्था के प्रति उपदेश, परस्त्री के संबध मे पवित्र भाव [ ४ ] राजनीतिक महत्व—राजा के प्रति प्रजा का धर्म, राजा का प्रजा के प्रति कर्तव्य, 'जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी, सो नृप अवसि नरक अधिकारी,' रामायण का आदर। ( ५ ) सुन्दर काव्य का आनद, श्रेष्ट धर्मग्रन्थ, समाज-मर्यादा की रक्षा करना

पारिवारिक जीवन को सुखी बनाने का रहस्य समझानेवाला काव्य, धनी-निर्धन विद्वान-मूर्ख सभी की निजी संपत्ति।

## अहिंसा

[ १ ] हिंसा-अहिंसा में भेद, जीवहत्या करना, जीव-हत्या न करना अहिंसा है। [ २ ] अहिंसा परमो धर्मः—सब प्राणियों को जीने का अधिकार है; मनुष्य सब प्राणियो मे श्रेष्ठ है, अतः वह अपने छोटों की रक्षा करे—भक्षण नहीं, जीव-हत्या मास-मछली खाना त्याज्य है। [ ३ ] एक समस्या 'जीव ही जीव का भोजन है'। छोटे पशु-पक्षियो का शिकार बड़े पशु-पक्षी करते है, यह हिंसा नहीं कहलाएगी? इसी प्रकार पेड़ मे भी जान है तब फल-फूल खाना भी अहिंसा नही? [ ४ ] अहिसा का व्यापक प्रभाव, महात्मा बुद्ध और उनका बौद्ध धर्म, महात्मा ईसा का कथन, कोई एक गाल पर चाँटा मारे, तुम दूसरा गाल सामने कर दो, महात्मा गाँधी और अहिसा-सत्याग्रह। निष्कर्ष, अहिंसा के बिना शाति संभव नही।

## एकता का महत्व

[ १ ] एकता की आवश्यकता—समाज एकता से ही बन सका है, एकता के बिना समाज और राष्ट्र का विनाश निश्चित, दुश्मनों के आक्रमण का भय, प्रेम-भावना के नाश की संभावना। [ २ ] एकता से लाभ—पति-पत्नी मे एकता, अतः पारिवारिक शाति और सुख-समृद्धि की प्राप्ति, नागरिक एकता, एक दूसरे के दुख-सुख मे सहयोगी, सामाजिक राष्ट्रीय एकता, बाहरी आपदाओं से रक्षा, एक और एक ग्यारह। ( ३ ) एकता के अभाव से हानि, अकेला चना भाड़ नही फोड़ सकता, एकता के बिना आपसी सहयोग नष्ट हो जाता है; फलतः फूट, कलह और अशांति, दुश्मन का भय, दो-एक उदाहरण। ( ४ ) एकता से ही

भारत की शांति-समृद्धि सभव, एकता का महत्व, "जहाँ सुमति तहाँ संपति नाना", बिना एकता के भारत की दशा का सुधार असंभव है।

## प्रेम

( १ ) प्रेम एकता है, सृष्टि का व्यापार है। प्रेम बैर-मेल, सुख-दुख का कारण प्रेम पर मनुष्य सर्वस्व न्योछावर करता है। ( २ ) प्रेम-पिपास बढ़ती ही रहे यही जीवन है, विरक्त का जीवन सारहीन है। प्रेम हृदय-मन्दिर का दीपक, त्याग की कसौटी और अटल-कीर्ति का स्तभ है। ( ३ ) मृग का सगीत-प्रेम, चातक का स्वाती से प्रेम और पतगे का दीपक से प्रेम, अन्य उदाहरण। (४) प्रेम के दो स्वरूप—सात्विक प्रेम दृढ़ होता है, स्वार्थ-युक्त प्रेम मे दृढता नहीं होती। (५) प्रेम का आदर्श-वासना का त्याग, अपने अस्तित्व को मिटाकर प्रिय मे लय हो जाने की चाह, सांसारिक या शारीरिक संबंध भुलाकर आत्मा का संबध स्थापित करना। यही आध्यात्मिक उन्नति है।

## स्वदेश-प्रेम

( १ ) जीवन में राष्ट्रीयता का स्वाभाविक विकास, अपने बाल-बच्चो के प्रति हमारा मोह, परिवार का मोह, मोह की सीमा इस तरह बढते राष्ट्रीयता की हद पर पहुँच जाती है, अपने बच्चो की रक्षा करने के समान देश की रक्षा करना हमारे लिए स्वाभाविक हो जाता है। ( २ ) देश-सेवा के उपाय, नेता बनकर, कवि अथवा लेखक बनकर, व्याख्याता द्वारा, शारीरिक शक्ति से पूर्ण होकर सैनिक द्वारा, महात्मा गाँधी के समान उदार-हृदय बनकर। ( ३ ) स्वदेश-प्रेम का महत्व, जापानियों की देश-भक्ति का नमूना, यदि किसी जापानी को राष्ट्रसेवा के लिए अवसर नही मिलता तो वह आत्महत्या कर लेता है; "जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है, वह नर नही पशु निरा है और मृतक समान है।" ( ४ ) स्वदेश-प्रेम की भावना का अभाव

ही पतन है, जातीय अवनति का चिह्न है, देश की स्थिति, स्वदेश-प्रेम से ही सुधार ।

## वीर-पूजा

( १ ) सच्चे वीर की परिभाषा, जो अपनी शक्ति का प्रयोग दूसरे के हित के लिए करे, मानव की गुण-ग्राहक-प्रवृत्ति से वीर-पूजा प्रारभ हुई, अपनी श्रद्धा के पात्र का यथोचित आदर । ( २ ) वीर-पूजा का ढग, सरकारी और गैरसरकारी, नाम पर स्थानो, सस्थाओ, पार्कों, सडको के नाम, शहर भी जैसे लक्ष्मणपुर, मूर्तियाँ, उपाधियाँ, पदवियाँ । (३) अपने जीवन मे किसी वीर की पूजा बहुत कम संभव, मृत्यु के बाद वीर-पूजा, वीर-पूजा के कुछ दृष्टात, रामलीला, दशहरा, जन्माष्टमी आदि । वर्तमान समय में पं० नेहरू, सुभाष बोस, महात्मा गाँधी का आदर । ( ४ ) वीर-पूजा का महत्व, चेतना जागरित होती है, विश्व को महान् विभूतियो की ओर आकर्षिक होते हैं, वीरों को परखने और उनके मार्ग पर चलने की प्रेरणा मिलती है । ( ५ ) वीरपूजा करने वाली जाति मे अपना चरित्र ऊँचा उठाने की इच्छा का जन्म होता है । वास्तव में जो महान गुणो से परिचित है, सभ्य है, वही वीर-पूजक हो सकता है ।

## छुट्टियों में घर जाते समय विचार

( १ ) किताबो से छुटकारा पाने की बेचैनी, वार्षिक परीक्षा की समाप्ति, परीक्षा फल के बाद बहुत दिनों की छुट्टियाँ; बडी परीक्षा । ( २ ) परीक्षाफल, पास हो गये, पास होने वालों की प्रसन्नता, फेल हो जाने वालों की निराशा, उस समय का एक दृश्य, घर जाने की तैयारी । (३) घर जाते समय हमारे मन के भाव, अपना विचार, गुरुजनो से विदाई, उनका सस्नेह व्यवहार, इष्ट-मित्र सहपाठियो का वियोग, मन में अजीब दुविधा थी । ( ४ ) गाडी मे, साल भर के स्कूली जीवन पर एक दृष्टि,

मात-पिता से मिलने को प्रसन्नता, भाई-बहिनों की प्रसन्नता की सुखद कल्पना, घर की समृति,मन 'रस्सी तुड़ाकर भाग रहे बछड़े' की भाँति घर की ओर दौड़ा जा रहा था।

## लेखों के लिए पचास विषय

( १ ) प्रातःकाल नदी-तट ( २ ) हिंदू जाति (३) सत्संग का महत्व (४) भारत की ऋतुएँ (५) व्यापार और नौकरी (६) हिन्दू-विवाह (७) कीर्तन और भक्ति (८) सायंकाल का दृश्य (९) संतोष (१०) नदी की बाढ़ (११) गुरुजनों के प्रति कर्तव्य (१२) चरित्र-पालन (१३) प्राचीन-आधुनिक सभ्यता (१४) स्वास्थ्य-रक्षा (१५) लालच बुरी बलाय (१६) दया (१७) प्राकृतिक दृश्य (१८) स्वच्छता (१६) लखनऊ की नफासत (२०)अभ्यास (२१)उपन्यास का शौक (२२) ब्रह्मचर्य (२३) कवि बनने का स्वप्न (२४) धन के सुख (२५) स्वतंत्रता-संग्राम (२६) एकात-वास (२७) देशी-विदेशी खेल (२८) जल-यात्रा (२९) हमारा स्त्री-समाज (३०) इच्छा-शक्ति (३१) बेकारी समस्या (३२) घरेलू धधे (३३) शिक्षा और आचरण (३४) युद्धकालीन जीवन (३५) विज्ञान का सभ्यता पर प्रभाव (३६) निर्भयता (३७) पाश्चात्य सभ्यता का भारत पर प्रभाव (३८) मेरा प्रिय कवि (३९) पराधीन सपनेहु सुख नाहीं (४०) मेरी प्रिय पुस्तक (४१) मातृ-भाषा के प्रति कर्तव्य (४२) आदर्श विद्यार्थी (४३) बाल्यकाल की स्मृतियाँ (४४) आदर्श पुरुष (४५) जीनव चरित्रो से लाभ (४६) आदर्श शिक्षक (४७) धन का सदुपयोग (४८) आदर्श जीवन (४९) यदि मै अध्यापक होता (५०) स्वावलंबन।

———

# पत्र-लेखन

मनुष्य होने के नाते परिचित-अपरिचित सभी से हमारा काम अटकता है और सभी को हमें पत्र लिखने पडते हैं। परिचितो को सुख-दुख, काम-काज, उत्सव-आनंद के सबध मे प्रायःपत्र लिखने होते हैं और अपरिचितों को कारबार और व्यवसाय के सबध मे। परिचितो और अपरिचितो मे कुछ हमसे छोटे होते हैं, कुछ बड़े और कुछ बराबर वाले। दिनप्रति की बातों में इन तीनों के प्रति हमारे व्यवहार में अंतर रहता है। बड़ों को देख कर हम बहुत सीधे, शात और शिष्ट बन जाते हैं। छोटो को देखकर हमे अपने बड़प्पन का ध्यान आ जाता है, कुछ गर्व हो जाता है और समझने लगते हैं कि हम भी कुछ हैं। बराबर वालो से बेतकल्लुफी रहती है ; बड़प्पन और छुटप्पन का भाव दूर हो जाता है ; चित्त मे आनद और गुदगुदाने वाला हल्कापन हमें मालूम होता है।

दैनिक व्यवहार मे जैसा अतर रहता है, लगभग वैसा ही अंतर उनको लिखे पत्रों में भी रहेगा। यह अतर दो प्रकार का होता है—(१) ऊपरी बातो मे अंतर (२) पत्र लिखने के ढग में अतर। ऊपरी बातों के अन्तर से मतलब यह है कि हर एक आदमी को पत्र के आरंभ मे अलग-अलग ढग से संबोधित किया जाता है और उसी प्रकार अन्त भी भिन्न रीति से होता है। बड़ों, छोटों और बराबर वालों को लिखे गये पत्रों मे आरंभ और समाप्ति इस ढग से मिलती-जुलती होनी चाहिए—

| किसे पत्र लिखा गया है। | आरंभ | अभिवादन | अत |
|---|---|---|---|
| १—माता, पिता, स्वामी, अध्यापक या अन्य परिचित गुरुजन को | मान्यवर या पूज्यवर पिता जी, पूजनीया या माननीया माता जी | सादर प्रणाम, सादर चरण-स्पर्श | आज्ञाकारी पुत्र, शिष्य या सेवक |

| किसे पत्र लिखा गया है | आरंभ | अभिवादन | अंत |
|---|---|---|---|
| २—अवस्था में बड़े अपरिचित सज्जन को | मान्यवर महाशय | सादर प्रणाम | विनीत या कृपाभिलाषी |
| ३—मित्र को | प्रिय मित्रवर, प्रियवर राम | सप्रेम नमस्ते, सप्रेम नमस्कार | स्नेही, प्रेमी, तुम्हारा ही। |
| ४ बराबर वाले अपरिचित को | प्रिय महाशय या प्रियवर | नमस्ते या नमस्कार | भवदीय या आपका |
| ५—छोटों को | चिरंजीव रामचंद्र या प्रिय रामचन्द्र | आशीर्वाद | शुभाकाङ्क्षी। |

यह तो हुई ऊपरी बातों मे अंतर की बात। पत्र लिखने के ढग में अतर रहना ही मुख्य चीज है। बड़ों को पत्र लिखते समय भाषा का इस ढग से प्रयोग करना चाहिए जिससे विनय या नम्रता प्रकट हो। छोटो को लिखे गये पत्रो से स्नेह झलकना चाहिए और मित्रो के पत्रो से प्रेम की अभिन्नता प्रकट होनी चाहिए, ऐसा जान पड़े कि आप हृदय खोलकर मित्र को दिखा देना चाहते हैं।

पत्र लिखते समय ये बातें ध्यान में रखने की हैं—

१—कागज के सबसे ऊपर दाहिनी ओर पता और पत्र लिखने की तारीख अवश्य रहनी चाहिए। कुछ लोग तारीख पत्र के नीचे लिखते हैं। आपसी पत्रो मे इससे भी कोई हानि नही, पर पता-तारीख पत्र में लिखी अवश्य जाय। लिफाफे मे रखने के लिए कागज पर यदि पत्र लिखा जाय तो पानेवाले का पता उस पर अवश्य लिखिए। इससे कभी-कभी बड़ा काम निकलता है। इसी तरह लिफाफे पर पाने वाले के साथ भेजनेवाले का नाम-पता भी रहना चाहिए।

२—पत्र सीधी-सादी भाषा में इस ढंग से लिखें कि सारी बात सरसरी तौर से पढ़ने पर ही समझ में आ जाय। घुमा-फिराकर या जटिल ढंग से लिखा हुआ पत्र पाकर पढ़ने वाले को झुँझलाहट होती है।

३—पत्र छोटे-छोटे कई परिच्छेदो में लिखिए। यदि आप पत्र का उत्तर लिख रहे हैं तो आए हुए पत्र को सामने रखकर प्रत्येक बात का उत्तर अलग-अलग परिच्छेद मे दीजिए।

४—पत्र मे बनावटीपन मत आने दीजिए। पत्र में ही नहीं, जिस रचना मे भी बनावटीपन होगा, वह भद्दी हो जायगी। सीधे-सादे और सरल ढग से अपने विचार इस तरह प्रकट कीजिए जैसे पत्र पाने वाले से आप बात कर रहे हैं।

५—अपरिचित सज्जनों और व्यापारियों को कारबार संबन्धी पत्र बहुत सक्षेप में इस तरह लिखिए कि न मतलब की कोई बात रह जाय और न अनावश्यक कोई बात आने पाये। ऐसे पत्रों मे दृढ़ता के साथ-साथ नम्रता रहनी चाहिए।

६—सबधियों के पत्र इस ढंग से लिखे जायँ कि उनसे आवश्यक प्रेम, स्नेह या घनिष्ठता अवश्य झलकती हो। आत्मीयता प्रगट होना ही पत्र की सफलता की पहचान है। जिस पत्र से अपनापन न प्रकट हो उसका तो न लिखा जाना ही अच्छा है।

७—मित्रो को लिखे गये पत्रों से रस उमड़ता रहे तभी वे सफल समझे जायँगे। मित्रो को पत्र लिखते समय सकोच को तो पास न फटकने देना चाहिए। सरल ढग से, तकल्लुफ को दूर करके, मन लगाकर मन की बात जिन पत्रों मे कही जायगी वे ही सुन्दर होंगे। मित्रों को लिखे गये पत्र, जहाँ तक हो सके, काफी लबे हों।

८—पत्र का उत्तर न देना तो अशिष्टाचार ही है, पर बहुत देर से उत्तर देना भी अपराध है। चाहे किसी अपरिचित का पत्र ही क्यो न हो, पत्र आते ही अथवा दूसरे दिन कुछ न कुछ उत्तर अवश्य दे दीजिए।

इससे पत्र लिखनेवाले को संतोष हो जायगा कि उसका पत्र आपको मिल गया है। जब आपके पत्र का उत्तर न आये तब सात दिन तक रास्ता देखकर फिर याद दिलाइए। एक सप्ताह से पहले याद दिलाने के लिए दूसरा पत्र तभी लिखना चाहिए जब काम बहुत जरूरी हो।

९—पत्र शात चित होकर लिखना चाहिए। यदि किसी का कटु पत्र आ जाय तो भी उत्तर आप सरल ढग से ही लिखें। लिखी हुई बातें दूसरे के पास रहेंगी और आवेग में अगर कोई अनुचित या तेज बात लिख गये तो आपको बाद मे पछताना होगा।

१०—दूसरे के पत्रो को सम्हाल कर रखिए। ये आपकी सपति हैं, इन पर आपका अधिकार है। कुछ वर्ष बीत जाने पर जब आप फिर इन्हें पढ़ेंगे, तब बीती हुई सभी घटनाएँ आपके सामने होंगी और क्षण भर के लिए अपने को भूलकर आप उन्ही मे लीन हो जायँगे। बीती हुई बातें निश्चय ही सुख मे मग्न कर देनेवाली होती हैं।

नीचे कुछ पत्र नमूने के तौर पर दिये जा रहे हैं। विद्यार्थी इन्ही के ढग पर अपने पत्र लिखने का अभ्यास करे।

## (१) पिता को

१४, गाँधी मार्ग<br>
बरेली, १५ जून, ४५

पूज्यवर पिता जी,

सादर चरण-स्पर्श।

मै यहाँ सकुशल आ गया हूँ। मन नही लग रहा है, आप लोगों की याद बहुत आती है। शहर भी छोटा है, घना बसा हुआ बस एक बाजार है। फिर गर्मी के कारण दिन भर मन मार कर बैठना पड़ना है; नींद भी तो नहीं आती। दो-तीन दिन में भाई साहब के साथ पहाड़ चला जाऊँगा।

मेरी ओर से आप निश्चिंत रहें। अपना कुशल-समाचार आप पहाड़ के पते से भेजें।

माता जी को प्रणाम। उषा और रमेश को प्यार।

आपका आज्ञाकारी पुत्र
सुरेशचन्द्र

## ( २ ) अध्यापक को

दरियागंज,
दिल्ली, २० जून

श्रीमान् मास्टर साहब,

सादर प्रणाम।

मैं यहाँ सकुशल पहुँच गया हूँ। आशा है, आप भी सपरिवार सानंद होंगे।

पहली तारीख को ही मैं यहाँ आ गया था। पर बहुत से झंझटों में फँसे रहने के कारण आज के पहले पत्र न लिख सका, एक तरह से पत्र लिखना भूल ही गया। मेरा चित्त यहाँ लग नहीं रहा है। शीघ्र ही लखनऊ लौट आने का विचार है।

आपका पिछला पत्र मुझे बरेली में ही मिला था। समय काटने के लिए आपने एक उपाय बताया है, मित्रों को लंबे-लंबे पत्र लिखना। आपकी आज्ञा का पालन करने के लिए दो-तीन मित्रों को बड़े पत्र मैंने लिखे हैं। शीघ्र ही दर्शन करूँगा।

आज्ञाकारी
संतोष

## ( ३ ) मित्र को पत्र

रानी कटरा,

लखनऊ १५-९-४९

प्रियवर रमेश,

सप्रेम जयहिन्द।

बहुत दिनों से तुम्हारा कोई समाचार नहीं मिला। क्या कारण है? मेरे भी दो पत्र हजम कर गये। यह भी कोई भलमनसाहत की बात है! तीन पैसे के कार्ड का लालच करते हो, यह बात समझ मे नही आती; और तुम्हारा-सा निश्चिंत जीव काम-धन्धे में ज्यादा लगा रहता हो-इस पर भी विश्वास नहीं होता। अरे भाई, कभी कभी तो दो-चार शब्द लिखा दिया करो। मै सकुशल हूँ। खूब ठाठ से दिन बीत रहे हैं। कालेज की फुटबाल टीम का कप्तान चुन लिया गया हूँ। शाम को दो-ढाई घंटे खेलता हूँ। रात भर उसी के स्वप्न देखता हूँ। दिन भर दर्जे में बैठे-बैठे औंघाया करता हूँ। घर में गाय है। सेर भर दूध पी जाता हूँ दिन भर में। छाती चौड़ी हो गयी है; अकड़ कर चलने को जी चाहता है। है न ठाठ की जिंदगी!

पढ़ाई सिर्फ दो घंटे सबेरे हो पाती है, पर पढता रोज हूँ। इससे सभी मास्टर मुझसे सतुष्ट हैं।

अपना रंगढंग लिखना और शीघ्र उत्तर देना।

तुम्हारा ही

अमरनाथ

## ( ४ ) मित्र का उत्तर

बगिया मनीराम

कानपुर १९-९-४९

प्रियवर अमर,

नमस्ते।

तुम्हारे तीनों पत्र मिले। मै पिछले दो पत्रों का उत्तर नही दे सका, क्योंकि बाहर था। लौटने पर मुझे तुम्हारे तीनों पत्र एक साथ मिले।

इसलिए उत्तर न देने का मै दोषी नहीं हूँ और न क्षमा माँगने को ही तैयार हूँ।

मै तो तुम्हारे बिना लिखे ही जानता था कि तुम खूब ठाठ कर रहे होगे। तुमने मुझे निश्चिंत जीव लिखा है—पर यह बात मेरे लिए ठीक है या तुम्हारे लिए ? कौन निश्चिंत जीवन बिता रहा है, जरा सोच कर देखो। यों तो सभी सुख मुझे प्राप्त है। परन्तु अपने शरीर से लाचार हूँ। ज्यादा पढ़-पढ़ कर मैने अपना स्वास्थ्य बिगाड़ लिया है। खाना ठीक से हजम नहीं होता और आँखें भी कमजोर हो चली हैं। अभी जवान नहीं हुआ हुँ, पर बुढापे के लक्षण शरीर में दिखायी देने लगे हैं। भाई, अब तुम्हारी बातें याद आती हैं। तुम्हारे साथ विद्यार्थी जीवन में खेलता रहता तो आज मेरा स्वास्थ्य इतना गिरा न होता। खैर, अब मेरा यह प्रयत्न रहेगा कि मेरे छोटे भाई पढ़ने के समय पढ़े और खेलने के समय खेलें अवश्य।

तुम अपनी टीम के कप्तान चुने गये, यह जान कर बड़ी प्रसन्नता हुई। बधाई। मेरी यह हार्दिक कामना है कि इसी प्रकार जीवन भर सभी निर्वाचनों मे तुम सफल होते रहो।

शेष कुशल है।

सप्रेम

रमेशचन्द्र अग्रवाल

## (५) छुट्टी के लिए पत्र

सेवा में

श्री मान प्रधान अध्यापक जी,

.... . .........शिक्षालय

इलाहाबाद

महोदय,

सविनय निवेदन है कि कल से मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं है। मुझे ज्वर

है और सर मे दर्द भी। अतएव शिक्षालय आ सकने में मैं असमर्थ हूँ। कृपा करके मुझे दो दिन का अवकाश प्रदान करें।

१५-६-४९ } आपका आज्ञाकारी छात्र
लक्ष्मी नारायण, कक्षा ६

## (६) मैच के लिए पत्र

श्री मान् अध्यक्ष जी,

स्वास्थ्य और खेल विभाग

.... .. ............... कालेज

आगरा

महोदय,

हम............ विद्यालय के छात्र आपके शिक्षालय की फुटबाल टीम से एक मैच अपने मैदान मे आज खेलना चाहते हैं। कृपा करके यह प्रार्थना स्वीकार करें और अपनी टीम ठीक पाँच बजे हमारे मैदान में भेज दें। धन्यवाद।

विनीत

आगरा } भोलानाथ भल्ला
१०-८-४९ } कप्तान फुटबाल टीम

. .. ... कालेज

## (७) प्रतियोगिता के लिए छुट्टी माँगना

सेवा में

श्रीमान आचार्य जी,

.. .. . शिक्षालय,

नागपुर।

महोदय,

हम, कक्षा ८ के विद्यार्थी आज नवें दर्जे से एक अंताक्षरी प्रतियोगिता कर रहे हैं। उसकी स्वीकृति भी हमे मिल चुकी है। आपसे

सविनय निवेदन है कि दोनों कक्षाओं के विद्यार्थियों को आखिरी दो घंटों की छुट्टी देने की कृपा करें और स्वयं हमारी प्रतियोगिता के अवसर पर पधार कर हमारा उत्साह बढ़ावें।

२५-८-४९

आपके आज्ञाकारी
आठवीं कक्षा के छात्र।

## (८) चुनाव में वोट माँगने का पत्र

कालीचरण इण्टर कालेज,
लखनऊ

प्रिय बन्धुवर,

कालेज की हिन्दी परिषद् के मंत्री का चुनाव हो रहा है। इस पद के लिए मैं भी प्रार्थी हूँ। यदि असुविधा न हो तो अपना मत मेरे पक्ष में देने की कृपा करें।

आपका सहयोग ही मेरा बल है और आपकी सूझ-बूझ तथा सुबुद्धि पर मुझे पूर्ण विश्वास है।

आपका सहपाठी
विश्वनाथ

## (९) निर्वाचन पर बधाई

प्रियवर विश्वनाथ जी,

कालेज की हिन्दी-परिषद् के मत्री पद के लिए आपके निर्वाचित होने की सूचना पाकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई है। शतशः बधाई। मेरी हार्दिक कामना है कि आप इस परिषद् के उपसभापति अगले वर्ष चुने जायँ।

शुभाभिलाषी
राधेनाथ

## ( १० ) पुस्तक-विक्रेता को

इलाहाबाद बैंक,<br>फैजाबाद, २ जुलाई,४५

श्री व्यवस्थापक जी,<br>विद्यामदिर, चौक, लखनऊ ।

प्रिय महोदय,

कृपा करके 'हिन्दी-साहित्य-निर्माता' और 'हिन्दी-रचना: उसके अग' नामक पुस्तको की एक-एक प्रति शीघ्र ही वी० पी० से भेज दें। विश्वास रखें, वी० पी० छुडा ली जायगी।

पुस्तको की प्रतीक्षा में,

भवदीय<br>श्यामनारायण पाडेय

## ( ११ ) पत्र-संपादक को

७, डालीगज<br>लखनऊ ३-७-४९

श्रीमान् सपादक महोदय,<br>'होनहार' पाक्षिक पत्र<br>लखनऊ।

मान्यवर,

सेवा में 'एक कहानी' प्रकाशनार्थ भेज रहा हूँ। कृपा करके अपने प्रतिष्ठित पत्र के एक अंक मे इसे प्रकाशित कर दें। यदि यह रचना आपको पसंद न हो तो शीघ्र ही वापस करने की कृपा करें।

पत्रोत्तर की प्रतीक्षा मे,

विनीत<br>अभिमन्यु सिंह

## ( १२ ) प्रीति-भोज के लिए पत्र

चौक,

लखनऊ, २०-११-४०

श्रीमान् त्रिलोकीनाथ अग्रवाल जी,

भगवान की असीम अनुकंपा से चि० कृष्णनारायण का उपनयन-संस्कार ता० २५ नवम्बर को है। इसके उपलक्ष में उसी दिन सायंकाल एक प्रीति-भोज होगा। आपसे सविनय निवेदन है कि सपरिवार पधार कर हमे कृतार्थ करें।

समय २५ ता० को ७ बजकर ३० मिनट सायंकाल।

आपका दर्शनाभिलाषी,

तेजनारायण जैतली

## ( १३ ) बधाई-पत्र

चौक,

लखनऊ, १-२-४६

प्रिय रमेश बाबू,

शुभाशीर्वाद।

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि आप श्रीदयानंद ऐंग्लो वैदिक कालेज मे गणित के प्रोफेसर नियुक्त हुए हैं। आपको हार्दिक बधाई। ईश्वर करे आप इसी प्रकार उत्तरोत्तर उन्नति करते जायँ।

शुभाकांक्षी,

रूपकृष्ण

## ( १४ ) सहानुभूति का पत्र

प्रियवर शर्मा जी.

पं० शिवनाथ जी शर्मा के आकस्मिक निधन से हम सबको हार्दिक दुख हुआ। हमारी संस्था के तो वे प्राण थे। हिन्दी के यशस्वी लेखक और हिन्दू-समाज के सच्चे हितचिन्तक थे। उनका अभाव पूरा होना

असभव है। हमे आपके इस दारुण दुख में पूरी सहानुभूति और संवेदना है। ईश्वर आपको धैर्य दे और उनकी आत्मा को सद्गति प्राप्त हो, यही हमारी विनय है।

आपके शोकाकुल मित्र
हिंदी–साहित्य परिषद् के सदस्य

## ( १५ ) विवाह का निमंत्रण-पत्र

श्रीमान नन्दकुमार जी,

परमेश्वर की असीम कृपा से आगामी ज्येष्ठ शुक्ल तृतीय २००६ को मेरे चिरजीव पुत्र रोहिणीनदन मिश्र का शुभ विवाह कानपुर निवासी श्री रामशकर जी अवस्थी की आयुष्मती कन्या के साथ होना निश्चित हुआ है। आपसे विनीत प्रार्थना है कि आप इष्ट-मित्रों सहित पधार कर बारात की शोभा बढावें।

दर्शनाभिलाषी,
यशोदानन्दन मिश्र

## ( १६ ) आवेदन-पत्र

कर्नलगंज, प्रयाग
५-९-४९

श्रीयुत मैनेजर महोदय,

पाक्षिक 'होनहार', लखनऊ।

'होनहार' पत्र के नवम्बर-अंक में मैने सूचना पढी कि आपको अपने कार्यालय के लिए एक क्लर्क की आवश्यकता है। मै नम्रता-पूर्वक उस पद के लिए स्वय आवेदन करता हूँ।

अपनी योग्यता के सम्बन्ध में निवेदन है कि मैने सन् १९४९ मे हाई स्कूल की परीक्षा द्वितीय श्रेणी मे पास की है। इसके अतिरिक्त शार्टहैंड

और टाइप करना मै जानता हूँ । कई समाचार-पत्रों मे मैने अस्थायी रूप से काम भी किया है ।

मुझे विश्वास है कि आप उक्त पद मुझे देने की कृपा करेंगे। अपनी लगन और परिश्रम से आपको संतुष्ट करने मे मै कोई कसर न उठा रखूँगा।

आपका आज्ञाकारी
रामकिशोर सेठ

## ( १७ ) अध्यापक का शिष्य को लंबा पत्र

प्रियवर,

स्वस्थ और सुशील विद्यार्थियो से शिक्षको का विशेष स्नेह रहता है। इसी से तुम भी मुझे प्रिय हो। जब तुम मुझे सविनय प्रणाम करते हो तब ऊपर से तो मै उसका उत्तर सीधे-सादे ढग से देता हूँ, परतु मेरे रोम-रोम से तुम्हे देखकर यह आशीर्वाद निकलता है कि जीवन भर तुम स्वस्थ और प्रसन्न रहो, ससार मे ऊँची से ऊँची सफलता प्राप्त करने मे तुम समर्थ हो सको और तुम्हारी सारी कामनाएँ पूर्ण हो।

उस दिन तुम मेरे घर आये। नये फैशन का पहनावा, शौकीन ढग से बहे हुए बाल, जेब मे फाउंटेन पेन, कलाई पर सोने की चेन-दार घडी, गले में सोने की जजीर और पैर मे रेशमी मोजे के साथ वार्निश का बढ़िया चमकदार शू। अपनी इस सजधज के कारण तुम देखने मे बडे भले लग रहे थे—मेरा विश्वास है कि स्वय अपने को भी उस दिन तुम भले लगे होगे।

थोड़ी देर मेरे घर बैठकर, काम की बातें करके तुम चले गये। तुम्हारे जाने के बाद भी मै तुम्हारी ही बात सोचता रहा। तुम्हारी सजधज की और सब बाते तो ठीक थीं; परतु तुम्हारे मेहनत से बहे हुए बालो की

कांति और वार्निश के शू की चमक संयुक्त रूप से बड़ी देर तक जैसे मेरी दृष्टि के सामने मूर्तिमान रही।

अपने रूप को स्वच्छ रखना और अपनी सुंदरता का शृंगार करके मन को गुदगुदानेवाली प्रसन्नता का अनुभव करना मनुष्य तो मनुष्य, पशु-पक्षियों के लिए भी स्वाभाविक है। अतः तुम्हारा सजधज के साथ घर से निकलना किसी को अस्वाभाविक या अप्रिय नहीं लग सकता। यही नहीं, तुम्हें इस अलंकृत रूप मे देखकर तुम्हारे माता-पिता की आँखें ठंडी होती होंगी और मन ही मन मे तुम्हारी कल्याण-कामना कर वे फूले न समाते होंगे।

परंतु एक बात मुझे तुमसे कहनी हैं। शारीरिक सौंदर्य के दो प्रकार होते हैं। एक, शरीर का प्राकृतिक सौंदर्य और दूसरा, कृत्रिम, बनावटी या ऊपरी। दूसरे ढंग से मेरा आशय उस सुंदरता से है जो शरीर से भिन्न वस्तुओं या पदार्थों का सहारा लेकर बढ़ाई जाती हैं। इन पदार्थों में क्रीम, स्नो, जैसी चीजों का स्थान सबसे आगे है। बढ़िया रेशमी कपड़ों की कोमलता और चमक भी व्यक्ति को सुंदर दिखाने में बहुत सहायक होती है। दिन में तीन-तीन चार-चार बार बाल सॅवारना भी आजकल का फैशन है, और अब तो शौकीन लोग कंघा हर समय अपने पास रखना जरूरी समझते हैं। इसी तरह की और बहुत सी चीजें जिनके नाम-प्रयोग, मेरा अनुमान है कि तुम्हे और तुम्हारे साथियो को, जिनकी अवस्था मुझसे बहुत कम है, कदाचित मुझसे कही ज्यादा मालूम होगे।

इसके विपरीत, शरीर का अपना सौंदर्य भी होता है। तुम शायद यह समझो कि गोरे चिट्टे और सुकुमार बदनवालों के सौंदर्य की ओर मैं संकेत कर रहा हूँ। नहीं, मेरा आशय शरीर के रंग से नही है। चाम गोरा हो या काला, दोनों में अपने-अपने ढंग का आकर्षण रहता है और दोनो ही प्रिय भी लगते हैं। तुम्हारा वर्ण श्याम है। अतः इस बात को स्पष्ट कर देने की बहुत आवश्यकता जान पड़ती है।

तुमने देहात से आए हुए बालकों को देखा होगा। रंग काला है या साँवला और कभी-कभी तो चेहरा भी चेचक के गहरे दागों से भरा रहता है; परंतु उनका स्वास्थ्य अच्छा है, हाथ-पैर मजबूत है, कंधे ऊँचे हैं, गाल भरे हुए, आँखें स्वच्छ और चमकदार, आलस्य और उदासी का नाम भी नहीं, बड़े हँसमुख और सरल। इनके पास रेशमी वस्त्र नहीं हैं। अप-टु डेट फैशन का ये नाम नहीं जानते। स्नो, क्रीम जैसी चीजों से कभी इनकी जान-पहचान नहीं हुई, बाल इनके लंबे और चिकने हैं ही नहीं जिन्हें कई बार सँवारने की जरूरत हो या जिन्हें बार-बार माथे पर लाकर पीछे उछालकर फेंकने के सुख का अनुभव करने का इन्हें अवसर मिले। इनके लिए तो अपने छोटे बालों को एक बार भी सँवारने का सवाल नहीं उठता।

क्या ये बालक सुन्दर नहीं हैं? क्या इनके मुख की कांति तुमसे कम है? क्या लोगो का ध्यान आकर्षित करने में ये सफल नहीं होते?

अपने रूप से इनके काले चाम की सुंदरता का मिलान करो। इनकी सुदरता प्रकृति की वैसी ही देन है जैसी वह किसी मनोहर फूल को मिली है। यह सुन्दरता नियम, संयम और ब्रह्मचर्य का फल है। इसलिए इनका रूप दिन-दिन निखरता रहेगा और निखार का यह क्रम दिन या सप्ताह नहीं, बहुत वर्षों तक चलता रहेगा। तुम्हारी सुंदरता बाहरी आडम्बरों पर आधारित है और इसलिए, ईश्वर न करे, यदि किसी दिन ये रूपवर्द्धक साधन तुम्हे प्राप्त न हो सके तो तुम स्वय ही उदास हो जाओगे और यह उदासी तुम्हारे मुख-कमल को बहुत समय के लिए मुरझा देगी।

तुमसे मुझे बड़ी आशा है और वह पूरी तब होगी जब तुम शक्तिभर शारीरिक और मानसिक प्रयत्न करोगे। परन्तु कोई भी व्यक्ति परिश्रम उस समय तक कर ही नहीं सकता जब तक उसका ध्यान जूतों की चमक-

दमक या माँग-चोटी की चिकनाहट मे रहता है। अभी तुमने इस ओर नया कदम ही बढाया है। इसलिए अपने को आसानी से रोक सकते हो। अपने प्राकृतिक रूप को कृत्रिमता प्रदान करके जो आनद होता है उसका अनुभव तुम कर चुके। कुछ दिन सरल और प्राकृतिक सुदरता की झलक भी देख लो। इसके लिए तुम्हें अधिक समय तक प्रतीक्षा नही करनी होगी। यदि तुम मुझे अपना शुभचिंतक समझते हो तो यह पत्र पढते ही इस बात का निश्चय कर लो कि सौंदर्य-वर्द्धन के कृत्रिम साधनो से मै दूर रहूँगा। इस निश्चय मात्र से तुम्हारे मुख पर अद्‌भुत काति दिखाई देगी जिस पर तुम स्वयं मोहित हो जाओगे।

एक बार मेरी इच्छानुसार निश्चय करके अपने अकृत्रिम सौदर्य के दर्शन तुम अवश्य करोगे, ऐसी मुझे आशा है। अपने उस पुनीत निश्चय पर तुम दृढ़ रह सको, यह मेरी हार्दिक कामना है।

शुभाकांक्षी

........... .. ...

# रचना-संबंधी आवश्यक बातें

## हिंदी अक्षर

( १ ) हिंदी के वर्ण जिस लिपि मे लिखे जाते हैं उसे देवनागरी कहते हैं। इस लिपि की सबसे बडी विशेषता यह है कि इसमें प्रत्येक-ध्वनि के लिए एक अलग चिन्ह है। इसलिए जो कुछ बोला जाता है वह ज्यों का त्यों देवनागरी लिपि में हम लिख सकते हैं और जो कुछ लिखा गया है वही पढ़ा भी जाता है। इस विशेषता के कारण ही देव नागरी लिपि ससार की वैज्ञानिक लिपियों मे गिनी जाती है।

( २ ) याद रखना चाहिए कि 'ऐ' की तरह का कोई अक्षर हिंदी में नहीं है और 'ऐसा' लिखना गलत है। इसी तरह 'हुऐ' जाइऐ' 'लिऐ' चाहिऐ' आदि भी गलत हैं। इनकी जगह 'हुए' 'जाइए' 'लिए' 'चाहिए' लिखना ठीक है।

( ३ ) उच्चारण के अनुसार स्वरों के दो भेद होते हैं—(क) निरनुनासिक--जिन स्वरों का उच्चारण केवल मुँह से होता है जैसे आधी, ईख। ( ख ) सानुनासिक–जिस स्वर का उच्चारण मुँह के साथ नाक से भी होता है, जैसे आँधी ऊँचा।

सानुनासिक चिन्ह 'चद्रविंदु (ँ) कहलाता है। 'अनुस्वार' ( ं ) और 'चद्रविंदु' (ँ) के उच्चारण में बहुत अंतर है, जैसे चद्र, चाँद; मद माँद; बधन बाँधना; हंस, हँस; रंग, रँगना।

विशेष—(क) अनुस्वार और चद्रविंदु का प्रयोग अवश्य करना चाहिए। इनके न लगाने से भिन्न अर्थ का शब्द बन जाता है; जैसे रग, रग; सत, सत। इसी तरह चंद्रविंदु न लगाने से अर्थ का कैसा अनर्थ हो सकता है, इन शब्दो के देखने से मालूम हो जायगा—आँधी, आधी; साँस, सास; वहीं, वही; कहीं, कही; परसों, परसो।

( ख ) वहीँ, कहीँ, परसोँ आदि में चद्रविंदु न लगाकर अनुस्वार से ही काम चलाते हैं, जैसे वहीं, कहीं, परसों। परन्तु इन शब्दों में उच्चारण चद्रविंदु का ही होता है।

( ४ ) उच्चारण के अनुसार व्यजनों के दो भेद किये जाते हैं—( क) सानुनासिक व्यंजन—जिनका उच्चारण मुँह और नाक दोनों की सहायता से हो। (ख) निरनुनासिक व्यजन—जिनका उच्चारण केवल मुँह से हो। ङ, ञ, ण, न, म—ये पाँच व्यंजन सानुनासिक है और शेष निरनुनासिक।

विशेष—ङ, ञ, ण, न, म, ये सानुनासिक वर्ण अपने ही वर्ग के चार अक्षरों के साथ लगते हैं। इधर बहुत से विद्वान इन अक्षरों के स्थान पर अनुस्वार का प्रयोग करने लगे हैं। अतः शब्दों के दो रूप प्रायः मिलते हैं–गङ्गा गगा, चञ्चल चचल, घण्टा घटा, अन्त अंत, कुम्भ कुभ। पचम वर्ण का प्रयोग अपने ही वर्ग के चार अक्षरों के साथ होना चाहिए—यह नियम विद्यार्थियो को प्रायः याद नही रहता। इसलिए अनुस्वार लगाकर सब शब्द लिखना सरल है; क्योंकि जिस अक्षर के बाद अनुस्वार या चद्रविंदु बोलता है उसी पर चिन्ह लगा देने से छुट्टी मिल जाती है। पर इतना ध्यान रखना चाहिए कि कुछ प्रचलित शब्दों में अनुस्वार नहीं लगता, जैसे जन्म, कन्या, अन्य, धन्य। हाँ सयम, संरक्षक सलग्न, ससर्ग, संशोधन शब्द अनुस्वार से ही लिखे जाते हैं।

( ५ ) संयुक्त व्यंजन या युक्ताक्षर—दो या तीन व्यजन मिलाकर लिखना, जैसे इंद्र, राष्ट्र।

द्वित्व—एक ही व्यंजन को उसीसे मिलाकर लिखना, जैसे अन्न पत्ता।

सयुक्त और द्वित्व अक्षर कभी-कभी दो तरह से लिखे जाते हैं—पन्ना, पन्ना; पल्ला, पल्ला; शुक्ल, शुक्ल; वक्त वक्त; पक्का पक्का।

विशेष—सयुक्त व्यजनों में पंचम वर्ण के स्थान पर अनुस्वार का प्रयोग

करना चाहिए, परंतु द्वित्वों मे नहीं। जेसे 'इन्द्र' के स्थान पर 'इंद्र' लिखना तो ठीक है; पर 'अन्न' की जगह 'अन' लिखना नहीं।

'ह' में दूसरा अक्षर इस तरह मिलाया जाता है-- ह्म ( ब्रह्म ), ह्न ( चिह्न ), ह्ल, ( आह्लाद ), ह्र, ( ह्रास ), हृ, ( हृदय )। इनमें से प्रथम तीन इस तरह भी लिखे जाते हैं---म्ह न्ह, ल्ह। दोनों ही ढग प्रचलित हैं।

'द' और 'ह' मे 'ऋ' की मात्रा लगने पर उनका रूप इस तरह हो जाता है—दृ, ( दृष्टि ) हृ, ( हृदय )।

'र' के साथ 'उ' और 'ऊ' की मात्रा मिलने पर उनका रूप इस तरह हो जाता है—रु ( रुपया ) रू ( रूप )।

य का उच्चारण ज की तरह भी होता है; यमुना, यसोदा, यश, शब्द जमुना, जसोदा, जश की तरह भी लिखे जाते हैं।

( ६ ) 'व' के स्थान पर 'ब' रख देने से भी अर्थ बदल जाता है। देखिए—वह बह, शव शब ( रात ), वाद बाद, विहार बिहार, तब तब, वार बार।

'व' और ब के शुद्ध प्रयोग के लिए नीचे लिखे शब्दो का अभ्यास करना चाहिए---

'व'—विशारद, विज्ञापन, वर्ण, वस्तु, वायु, वीणा, विचार, वेदी वनिता, वेश्या, व्यवहार, वन, व्यजन, वर्ष, वैभव, विकार, विशेष, वासना, वाक्य, वाल्मीकि, वाणिज्य, वाण, वैश्य, विष्णु, वेद, वृक्ष, वैरी, विंदु, वृत्तात, वदना विमुख, विश्व आदि।

ब--ब्रह्म, बहुधा, बुद्ध, बंधु, बीभत्स, बिंदी, बाला, बाहु, बलवान्, बधन, बल, बलि, बीज, सबध, बाल्य, बौद्ध आदि।

( ७ ) ख, ष, श, । इनके प्रयोग के लिए भी कुछ चुने हुए शब्दों का अभ्यास करना चाहिए—

ख—बैशाख, शिखर, नख, मुख, खर। श--देश, दृश्य, श्मशान,

कैलाश। ष-भीष्म, पुरुष, विशेष, विष, मनुष्य, दोष, दृष्टि, दुष्यंत, वाष्प, पुष्प, धनुष, भेष, वृष, आषाढ़।

विशेष—'श' और 'ष' भिन्न अक्षर है। 'श' का प्रयोग प्रायः च और छ के पहले होता है जैसे दुश्चरित्र, निश्छल। ष का प्रयोग तीन प्रकार के शब्दों में होता है—

(क) 'पुष्' धातु से बने शब्दों में जैसे पुष्ट, पुष्टि, पोष, पोषक, पुष्प, पोष्य, पौष। 'रुष्' धातु से बने शब्दो में जैसे रुष्ट रोष। शिष धातु के जैसे शिष्ट, शिष्य, शेष, विशेष।

(ख) कुछ स्थानो मे 'स' के स्थान में 'ष' हो जाता है, जैसे अभि + सेक = अभिषेक, नि + सिद्ध = निषिद्ध, अनु + सग = अनुषग, वि + सम = विषम।

(ग) सधि करते समय क ख ट ठ प फ के पहले ष् लिखते हैं; जैसे निः + काम = निष्काम, धनुः + टकार = धनुष्टकार, नि + फल = निष्फल।

(८) 'र' के पाँच रूप हिन्दी मे प्रचलित हैं—

(अ) 'र' इसका प्रयोग कठिन नहीं है। जैसे कर, घर।

(आ) 'र्' जैसे मर्म, कर्म। यहाँ 'र' का स्वर निकल गया है, और 'र्' ने रेफ का आकार धारण किया है।

(इ) '्र' जैसे क्रम, प्रथा, व्रज, नम्र। 'र' का यह रूप उन व्यंजनों में लगता है जिनमें खड़ी पाई होती है। इसके उच्चारण में 'अ' की ध्वनि मिली रहती है।

(ई) 'ृ' जैसे कृषि, मातृ, पृथा, गृह, वृक्ष, सृष्टि। 'र' के इस रूप के उच्चारण में 'इ' की ध्वनि मिली रहती है। यह रूप वास्तव में 'ऋ' की मात्रा है।

(उ) '्र' (ट्र) इसका उच्चारण भी 'क्रम' वाले 'र' की तरह होता है। इसका प्रयोग 'ट' 'ड' में अधिक होता है—ट्रेन, ड्रामा। 'र' का यह रूप उन व्यंजनों में लगता है जिनमें खड़ी पाई नहीं होती।

विशेष—ऋ का प्रयोग केवल संस्कृत शब्दों में करना चाहिए; जैसे—ऋषि, ऋण, ऋतु, ऋद्धि आदि।

( ९ ) द् + य = द्य; क् + त = क्त, क् + ष = क्ष; त् + र = त्र, ज् + ञ = ज्ञ आदि संयुक्त अक्षरों का रूप देखिए—यद्यपि, उक्त, क्षत्री, त्रय, ज्ञानी।

( १० ) न और ण—ब्रजभाषा की कविता में ण, श, क्ष के स्थान पर न, स, छ का प्रयोग किया जाता था। आजकल की कविता खड़ी बोली में होती है। इसमें शब्द अपने शुद्ध रूप मे ही लिखे जाते हैं। इसलिए सस्कृत के जिन शब्दों मे ण, श, क्ष लिखा जाता है, ब्रजभाषा की कविता में न, स, छ से उन्हें लिखा देखकर विद्यार्थियों को भ्रम में न पड़ना चाहिए। प्रान, आसा, छुद्र के तत्सम रूप प्राण, आशा और क्षुद्र हैं। खड़ी बोली में इन्हीं का प्रयोग करना चाहिए।

( ११ ) क्ष संयुक्ताक्षर है और क् और ष के संयोग से बना है ब्रजभाषा में क्ष के स्थान पर प्राय: छ मिलता है। इन अक्षरों का उच्चारण समझने के लिए ऐसे शब्दों का अभ्यास करना चाहिए—छत्र ( छतरी ) क्षत्र ( क्षत्रिय ), छात्र ( विद्यार्थी ) क्षात्र ( क्षत्रिय-धर्म ), इच्छा, तुच्छ, समक्ष, क्षय, क्षमा, क्षोभ।

( १२ )-( क ) कुछ विदेशी शब्दो का ठीक ठीक उच्चारण उनके नीचे बिंदी लगाकर किया जाता है, जैसे 'ज़रूरत'; परंतु हिंदी के बहुत से विद्वानों का मत है और ठीक भी है कि विदेशी शब्दों के नीचे बिंदी न लगाकर उन्हें अपनी हिंदी के ही ढंग से लिखना चाहिए, ऐसा करने से कुछ वर्ष बाद ये शब्द हमारी भाषा के ही समझे जाने लगेंगे। इनका उच्चारण भी बिंदी हटाकर ही करना चाहिए।

( ख ) अँगरेजी शब्दो को उनके मूल अथवा शुद्ध रूप में लिखने की जरूरत नहीं है। 'जैनयुअरी,' 'फैब्रुअरी' न लिखकर जनवरी, फरवरी लिखना ज्यादा अच्छा है।

## हिंदी के शब्द

अक्षरो से बने उस समूह को 'शब्द' कहते हैं जिसका निश्चित अर्थ हो। शब्दों से वाक्य बनते हैं; और इस तरह हम अपने मन का भाव दूसरो पर प्रकट कर सकते हैं। शब्दों का प्रयोग करते समय ध्यान में रखने की बातें दो हैं—पहली यह कि हम उनका स्पष्ट अर्थ में प्रयोग करें और दूसरी यह कि जिस अर्थ में हमने उनका प्रयोग किया है सुनने या पढनेवाले उनका वही अर्थ समझें। एक शब्द का प्रयोग हमने किसी अर्थ में किया है और सुननेवाले ने उसका दूसरा अर्थ समझ लिया तब बहुत हानि हो सकती है। एक छोटी सी कहानी में 'गेहुआँ' के दो अर्थ हे—( १ ) गेहूँ ( २ ) गाय के बछड़े का नाम। सास नदी स्नान के लिए जाते समय बहू से कह गयी—गेहूआँ बना रखियो। बहू ने 'गेहूआँ' का अर्थ 'गेहूँ' न समझकर 'बछड़ा' समझा और उसे ही काट-छाँट कर चूल्हे पर चढ़ा दिया। पढ़े-लिखे विद्यार्थी चाहे इतनी भारी भूल न करें पर इसमें सदेह नहीं कि शब्द का ठीक ठीक अर्थ न समझने पर भारी हानि हो सकती है। इसलिए प्रत्येक शब्द का रूप, अर्थ और उचित प्रयोग सीखना शिक्षा का पहला उद्देश्य है।

## शब्द-शुद्धि

शब्द-संबंधी दो प्रकार की अशुद्धियाँ विद्यार्थी प्रायः करते हैं। पहली तो अक्षर-विन्यास ( spelling ) की और दूसरी, उनका ठीक-ठीक प्रयोग न करने की।

### ( क ) शब्दों को शुद्ध लिखना

इसके लिए विद्यार्थी प्रत्येक अक्षर की ध्वनि समझें और तब उसके रूप को ध्यान में रक्खें। साथ-साथ उन्हें शब्दो का ठीक ठीक उच्चारण समझना और उनका अभ्यास करना चाहिए। उच्चारण न समझने से या ध्यान न रखने से ये शब्द विद्यार्थी प्रायः गलत लिख जाते हैं—

दूसरा, अध्ययन, स्मरण, शांति, स्थायी, स्थिति, समिति, द्विवेदी, मैथिली, स्वयं, लक्ष्मण, अतिरिक्त, आवश्यकता, परीक्षा, ऐश्वर्य, साधु, उपाधि, उन्नति, पृथ्वी, उत्पन्न, आनंद, रत्न, पर्याप्त, प्रयत्न, प्रसन्न, तैयार, छिपना, गुणी, अत्यंत, खुशी, वह, पुष्प, रचयिता, पूजनीय, पूज्य, पूर्ति, आदर्श, वस्तुएँ, पंक्तियाँ, ऋषि, अधीन, पृथक, ब्रज, सासारिक स्त्रियों, व्यवहार, औषधी, औषधि, औषध, पर्वतीय, अत्युक्ति, स्वयंवर, सम्मुख, परिस्थिति, प्रतिनिधि, नीरोग, अद्वितीय, सारांश, प्रशंसा, शासन, निष्कंटक, उद्यत, द्वेष, सात्वना, आभूषण, सुखदायी, इंद्रिय, सदृश, दुर्व्यसन, विष, सरक्षक, सशोधन, शीर्षक, नृशस, त्रैमासिक, द्वंद्व, अगस्त्य, अन्तर्धान, अन्वय, अव्यय, विशेषण, विशेषता, आह्लाद, ईर्ष्या, उद्देश्य, ऋण, ऋतु, एकता, ऐक्य, किंवदती, कृत्रिम, क्षितिज, गृहस्थ, गार्हस्थ्य, ग्रीष्म, चिह्न, चेष्टा, जाग्रत (विशे), जागृति (संज्ञा), जिज्ञासा, ज्येष्ठ, ज्योतिष, भगीरथ, भागीरथी, वक्तृता, वक्ता, विप्लव, शय्या, तैयार, शाप, संन्यास, हृष्टपुष्ट।

विशेष—विद्यार्थियों को चाहिए कि इसी प्रकार जितने शब्द वे अशुद्ध लिखें उनकी सूची बनाते रहें और सप्ताह मे एक बार शुद्ध लिखकर उनका अभ्यास कर लें।

## (ख) शब्दों का शुद्ध प्रयोग

भाषा पर पूरा अधिकार तभी समझा जायगा जब शब्दो का शुद्ध और उचित अर्थ में प्रयोग करना आ जाय। इसके लिए आवश्यक है कि विद्यार्थी शब्दों का प्रयोग तभी करें जब उनका अर्थ भली-भाँति समझ लें।

## कुछ शब्दों के ध्यान देने योग्य प्रयोग

अपना—इस शब्द का प्रयोग कभी-कभी ऐसे स्थान पर किया जाता है जहाँ आवश्यकता नहीं होती। जैसे—मै 'अपने' घर जा रहा हूँ।

मैं 'अपने' पिता जी के साथ 'अपने' स्कूल गया। इन वाक्यों में 'अपने' शब्द के लिखने की आवश्यकता नहीं है। हाँ, इसका प्रयोग ऐसे स्थान पर अवश्य करना चाहिए--मुझे अपने 'बल' और 'अपनी' बुद्धि पर विश्वास है।

अपूर्व—इसका अर्थ है-जैसा पहले न हुआ हो। संकेतार्थ है—बहुत अधिक या अद्भुत। प्रयोग करते समय साधारण अर्थ और संकेतार्थ-दोनों का ध्यान रखना चाहिए। भारत आज 'अपूर्व' उन्नति कर रहा है—यहाँ 'अपूर्व' का प्रयोग इसलिए ठीक नहीं है कि भारत की प्राचीन उन्नति कहीं अधिक थी। ठीक प्रयोग – वैज्ञानिक आविष्कारों ने आज मनुष्य को अपूर्व सुविधाएँ प्रदान की हैं।

अद्वितीय—जिसके समान दूसरा न हो; सबसे बढ़कर। इसका प्रयोग भी 'अपूर्व' की तरह बहुत समझकर करना चाहिए। रावण अपने समय का 'अद्वितीय' वीर था—कहना इसलिए ठीक नही है कि वह बालि और सहस्रार्जुन द्वारा बंदी किया गया था। ठीक प्रयोग—चाणक्य अपने समय का अद्वितीय राजनीतिज्ञ था।

अलौकिक—जिसका संबध इस लोक से न होकर दूसरे लोक से हो। इस शब्द का प्रयोग बहुत कम करना चाहिए। रानी 'अलौकिक' रूपवती थी—लिखना इसलिए ठीक नहीं है कि इस लोक में ही सुंदर रूप के अनगिनती उदाहरण मिलते हैं। ठीक प्रयोग—काव्य का अलौकिक आनद जिसने लूटा है वह संसार के सारे सुखों को तुच्छ समझता है।

असाधारण—जो साधारण न हो, साधारण से बहुत बढ़कर। इसका प्रयोग प्रायः गुण या विशेषता बताने के लिए किया जाता है, दोष या बुराई दिखाने के लिए नहीं। जैसे—मोहन असाधरण वीर है—लिखना तो ठीक है; पर—वह असाधारण आलसी है—लिखना अशुद्ध है।

एकमात्र—केवल एक, इकलौता, अकेला। एकमात्र पुत्र, एकमात्र

पुत्री जैसे प्रयोग ठीक हैं। परंतु एकमात्र पिता या एकमात्र माता लिखना अशुद्ध है।

. 'एकमात्र' के साथ 'केवल' भी कभी-कभी जोड़ दिया जाता है; जैसे—केवल एकमात्र पुत्र। यहाँ 'केवल' शब्द अनावश्यक है; इसका काम 'एकमात्र' से निकल जाता है।

प्रत्येक—हर एक। यह संख्यावाचक विशेषण की तरह जब प्रयुक्त किया जाय तब संज्ञा एक वचन में ही होनी चाहिए। 'प्रत्येक बालकों', 'प्रत्येक व्यक्तियों', 'प्रत्येक कवियो' जैसे प्रयोग अशुद्ध हैं। यहाँ 'बालक' 'व्यक्ति', 'कवि' लिखना ठीक होगा।

अचल—(क) जब यह शब्द विशेषण की तरह प्रयुक्त होना है तब इसका अर्थ होता है—जो न चले या अडिग। जब यह संज्ञा की तरह आता है तब अर्थ होता है पर्वत। विशेषण का प्रयोग सीधा-सादा है; जैसे—शत्रुओं से घिर जाने पर भी वह अचल रहा। परंतु सज्ञा के प्रयोग में, अर्थ न जानने के कारण, कभी-कभी भूल हो जाती है। 'विंध्याचल पर्वत' लिखना अशुद्ध है; क्योंकि यहाँ पूरा अर्थ 'विंध्याचल' ( विंध्य + अचल = पर्वत ) शब्द से ही निकल आता है; 'पर्वत' लिखने की कोई आवश्यकता नहीं है।

यज्ञ—'मेध' शब्द का अर्थ है यज्ञ। इसे न जानने के कारण विद्यार्थी कभी-कभी 'अश्वमेध यज्ञ' लिख देते हैं। यह प्रयोग भी अशुद्ध है; क्योंकि 'यज्ञ' का अर्थ रखनेवाला 'मेध' शब्द 'अश्व' के साथ जुड़ा ही है।

कुछ शब्द ऐसे हैं जिनका उच्चारण प्राय: समान होता है, पर अर्थ में बहुत अतर है। विद्यार्थियों को इनका अन्तर समझना चाहिए। ऐसे शब्दों को समोच्चारित भिन्नार्थक शब्द कहते हैं।

## समोच्चारित भिन्नार्थक शब्द

अंस—कंधा, अंश—हिस्सा। अपेक्षा—इच्छा, उपेक्षा—निरादर। अशक्त-

शक्तिहीन, आसक्त-मोहित। आकर-खान, आकार-सूरत-शक्ल। छत्र-छतरी, क्षत्र-क्षत्रिय। तरणी-नौका, तरुणी-स्त्री। द्विप-हाथी, द्वीप-टापू। प्रकार-रीति, प्राकार-किले का एक भाग। प्रथा-रीति-रस्म, पृथा-अर्जुन की माता। प्रसाद-भोग, प्रासाद-महल। बलि-बलिदान, बली-वीर। मूल-जड़, मूल्य-कीमत। लक्ष-लाख, लक्ष्य- निशाना। वसन-कपड़ा, व्यसन-बुरी आदत। मात्र-केवल, मातृ-माता का। शंकर-महादेव, संकर-मिला हुआ। शर-वाण, सर-तालाब। शूर-वीर, सूर-अंधा या सूर्य। सकल-पूरा, शकल-खंड। इति-अंत, ईति-खेती की बाधा। सर्ग-अध्याय या भाग, स्वर्ग-देवलोक। स्वपच-स्वयंपाकी श्वपच-चांडाल। ग्रह-सूर्य चंद्र आदि नवग्रह, गृह-घर। दिन-दिवस, दीन-गरीब, दुखी। कुल-वंश, कूल-किनारा। सुत-लड़का, सूत-सारथी। अन्न-अनाज, अन्य-दूसरा। शुचि-पवित्र, सूचि-सुई। सम-समान, शम-नियम, शांति। चिर-चिरकाल, चीर-वस्त्र। अनिल-हवा, अनल-अग्नि। अविराम-बिना ठहरे हुए, अभिराम-सुन्दर। आदि-वगैरः या शुरू, आधि पीड़ा। कृत-किया हुआ, कृत्य काम। नाक-स्वर्ग, नाग-सर्प या हाथी। जलद-बादल, जलज-कमल। प्रणाम-नमस्कार, प्रमाण-सबूत। परिमाण-संख्या, परिणाम-नतीजा। दूत-खबर पहुँचानेवाला, द्यूत-जुआ। अनु-पीछे, अणु-छोटा कण। वृंत-डंठल, वृंद-समूह। केसर-सिंह की गर्दन के बाल, केशर-कुंकुम। परुष-कठोर, पुरुष-नर। प्रकृत-यथार्थ, प्राकृत-एकभाषा। सिल-पत्थर की सिल, शील-नम्र स्वभाव, सील-सीलन। अंत-समाप्त, अंत्य-नीच। उद्धत-उद्दंड, उद्यत-तैयार। अनिष्ट-बुराई, अनिष्ठ-निष्ठाहीन। अवलंब-सहारा, अविलंब-शीघ्र। अशित-खाया हुआ। असित-काला। एकदा-एक समय, एकाध-एक-आध। स्कंद-स्वामिकार्तिक, स्कंध-कंधा। शमीर-एक वृक्ष, समीर-हवा। अर्घ-जलदान और मूल्य, अर्घ्य-पूजनीय, पूजा-द्रव्य। आहुत-यज्ञ, आहूत निमंत्रित। दार-स्त्री, द्वार-दरवाजा। विष-जहर, विस-कमल का डंठल, मृणाल। अविहित-अनुचित, अभिहित-माननीय। गर्व-घमंड, गर्भ-पेट। पुत-नरक, पूत-पवित्र, पुत्र। सुअन-पुत्र, सुमन-फूल। गणना-गिनती,

गढना-बनाना, गड़ना-चुभना। शुल्क-फीस, शुक्ल-स्वच्छ, ब्राह्मण।

## एकार्थक शब्द

कुछ शब्द ऐसे हैं जिनका अर्थ देखने मे तो एक ही जान पड़ता है, परंतु वास्तव में भिन्न होता है। इन्हें एकार्थक शब्द कहते हैं। ऐसे शब्दों का उचित अर्थ मे प्रयोग करने से रचना की गंभीरता बढ़ जाती है। हिंदी के कुछ एकार्थक शब्द ये हैं—

मन—संकल्प-विकल्प करता है। चित्त—बातो का स्मरण विस्मरण करता है। बुद्धि—कर्तव्य का निश्चय करती है। वेदन—पदार्थों के सबध मे इंद्रियो का अनुभव। ज्ञान—इंद्रियों का अनुभव जब हृदय में व्याप्त हो। प्रज्ञा—किसी विषय को सविस्तार जानने की शक्ति। मति—विषय का ज्ञान प्राप्त करके उसके प्रयोग करने की शक्ति।

अभिज्ञ—विषय का जानकार, अनुभवी। विज्ञ—विषय को अधिक जाननेवाला।

पारगत—विषय को पूर्णरूप से जाननेवाला। बहुदर्शी—अनेक विषयों को जाननेवाला।

आधि—मानसिक कष्ट जैसे चिंता। व्याधि—शारीरिक कष्ट जैसे ज्वर।

आधिदैविक (दुख)—प्रकृति से मिलनेवाला कष्ट—जैसे आँधी, शीत। आधिभौतिक (दुख) जीवो से मिलनेवाला—जैसे साँप-बिच्छू का काटना। आध्यात्मिक (दुख)—देह या मन मे होनेवाला दुख—जैसे रोग, क्रोध।

उपकरण—ऐसी सामग्री जिससे कोई काम सिद्ध हो; मशीन कपड़ा सीने का उपकरण है। उपादान—वह सामग्री जिससे नई चीज बने, कपड़ा उपादान है।

उत्साह—काम करने की बढी हुई रुचि। साहस—साधन न होने पर भी काम करने की इच्छा।

प्रमाद—जानी-पहचानी बात में भी लापरवाही से भूल करना।

भ्रम—अज्ञान के कारण भूल होना।

अहंकार—किसी विशेष गुण से संपत्ति बढ़ने पर दूसरों को अपने से नीचा समझना। दर्प—नियम के विरुद्ध काम करने या अयोग्य होने पर भी घमंड करना। गर्व—रूप, कुल, विद्या या धन के कारण अभिमान दिखाना और दूसरों को हीन दृष्टि से देखना। मान या अभिमान—अपने को बड़ा समझना, ये शब्द अच्छे और बुरे दोनों भावों में प्रयुक्त होते हैं।

गौरव—अपनी महानता का बोध। दंभ—अयोग्य व्यक्ति का बाह्याडम्बर और अभिमान।

आशंका—विपत्ति आने पर अपनी रक्षा का भाव। भय या डर—किसी कारण से विपत्ति आने की बात से पैदा होने का भाव।

रीति—प्रथा, रिवाज, रस्म। नीति—समाज की भलाई के लिए निश्चित नियम।

आचार—साधारण बर्ताव। व्यवहार—किसी विशेष व्यक्ति के प्रति बर्ताव।

तट या किनारा—नदी के पास की जमीन। तीर—पानी से लगी हुई जमीन। पुलिन—किनारे की तर जमीन। सैकत—नदी किनारे की बालुकामय जमीन।

ऋषि—वेद-मंत्रों की व्याख्या करनेवाले। मुनि—धर्म और तत्व पर विचार करनेवाले।

मित्र—प्रीति-पात्र और सहायक ; एक ही सा काम करनेवाले। बंधु—घनिष्ठ मित्र, जो वियोग न सह सके। सखा—सहायक और पथ-प्रदर्शक ; जिसके प्राण एक हों। सुहृदय—उपकार का बदला न चाहने-वाला मित्र, जो सदा सहमत रहे।

पुत्र—अपना लड़का। बालक—कोई भी लड़का।

पत्नी—अपनी स्त्री। स्त्री—कई भी स्त्री।

करुणा—किसी को दुखी देखकर हमे जो दया आती है ; इसमें दुख दूर करने का भी भाव है। दया—दूसरो के दुख दूर करने की स्वाभाविक इच्छा। अनुकंपा—दूसरों का दुख देखकर केवल दया आना। कृपा—छोटों की सहायता करना कृपा है।

समवेदना—दूसरों को दुखी देखकर दुख प्रकट करना। सहानुभूति—दूसरों के सुख-दुख को अपना समझना।

स्नेह—छोटो से प्रेम। प्रणय—स्त्री से प्रेम। वात्सल्य—माता-पिता, गुरू आदि का पुत्र या शिष्य के लिए प्रेम। प्रेम—किसी के साथ स्वाभाविक स्नेह।

भक्ति—पूज्य जनों के प्रति सच्चा अनुराग। भक्ति प्राय: देवताओं से की जाती है। श्रद्धा—सद्‌गुणों के सम्मान का भाव।

ईर्ष्या और डाह—किसी की उन्नति देखकर अकारण बुरा मानना।

द्वेष—किसी कारण से दूसरों से घृणा करना। स्पर्द्धा—दूसरों की उन्नति देखकर अपनी भी उन्नति करने की इच्छा।

मूर्ख—बतलाने से जो न समझे। अज्ञ—अनजान जो जानता न हो। अनभिज्ञ—जिसे बात बतलायी ही न गयी हो। अज्ञानी—बुद्धिरहित।

क्षोभ—हानि या असफलता मिलने पर अथवा मनचाही बात न होने पर दुख और क्रोध। खेद—किसी कारण से असमर्थ या निराश हो जाने पर पछतावा। दुख—साधारण मानसिक कष्ट। शोक—किसी की मृत्यु या वियोग मे दुख। विषाद—अधिक दुख में अपना कर्तव्य भूल जाना।

लज्जा या शर्म—अनुचित काम करने पर दूसरों से मुँह छिपाने का प्रयत्न। ग्लानि—एकात मे भी लजाना और पछताना।

सकोच—दवाव के कारण कोई अनुचित काम करने पर होनेवाली ग्लानि। व्रीणा—अकारण दोष लगाए जाने पर होनेवाली लज्जा।

अलौकिक—ससार में दुर्लभ वस्तु। अस्वाभाविक—सृष्टि या मनुष्य के स्वभाव केविरुद्ध। अलौकिक बात अस्वाभाविक कही जा सकती है,

परंतु अस्वाभाविक को अलौकिक नहीं कह सकते। सर्वोत्कृष्ट—सबसे सुंदर। अलौकिक का क्षेत्र इससे भी विस्तृत है।

अस्त्र—फेंककर चलाए जानेवाले हथियार जैसे तीर, गोली। शस्त्र—हाथ में रखकर वार करनेवाले हथियार जैसे लाठी।

उद्योग—शारीरिक और मानसिक प्रयत्न। श्रम—शरीर की शक्ति से काम करना। परिश्रम—विशेष श्रम करना। प्रयास—मन की शक्ति लगाना। चेष्टा—केवल मानसिक प्रयत्न। प्रयत्न—मानसिक और शारीरिक श्रम।

अभिवादन—अपने स्थान पर रहकर आत्म-परिचय के पश्चात् प्रणाम करना। प्रणाम—बड़ों को। नमस्कार—बराबरवालों को। नमस्ते—आर्यसमाजी छोटे-बड़े सबको नमस्ते करते हैं।

विशेष—'प्रणाम' के उत्तर में बड़े आदमी आशीर्वाद देते हैं; परंतु 'नमस्ते' का उत्तर 'नमस्ते' ही दिया जाता है।

आराधना—एकांत में बैठकर पूजा करना। उपासना—देव-पूजा, ध्यान, स्मरण।

राजा—साधारण भूपति। सम्राट—राजाओं का राजा।

शिव—कल्याकर्ता। महादेव—बड़े देवता। भूतनाथ—भयंकर रूपधारी। पशुपति—जीवों के रक्षक। कामारि—काम के शत्रु।

सेवा—देवताओं या गुरुजनों की सेवा की जाती है। शुश्रूषा—दुखी और रोगी व्यक्तियों की सेवा।

मेघ—गभीर गरजनेवाले बादल। बादल—स्वच्छन्द फिरनेवाले मेघ या उमड़ती हुई घटाओं का समूह। धाराधर—मूसलाधार पानी बरसानेवाले बादल। पयोद—पपीहा के प्राण, स्वाती नक्षत्र के बादल। वारिवाह—हवा में उड़ते हुए सफेद बादल। पयोधर—पानी लाते हुए बादल।

## सहचर पद

कभी-कभी अर्थ में विशेषता लाने के लिए शब्द मे उसी अनुपात अथवा अर्थ का एक और शब्द जोडकर भाव प्रकट किया जात है। ऐसे सहचर पद द्वंद्व समास से बनते हैं । मुख्यतः ये तीन प्रकार के होते हैं—

( १ ) विपरीतार्थक सहचर पद—आय-व्यय, आदि–अंत, स्वर्ग-नरक, पाप-पुण्य, गुण-दोष, जल-थल, लाभ–हानि ।

( २ ) समानार्थक सहचर पद—आमोद-प्रमोद, क्रिया-कर्म, चाल-चलन, जीव-जन्तु, तर्क-वितर्क, दीन-दुखी, धन-दौलत, बल-वीर्य, बल-विक्रम, मान-मर्यादा, मणि-माणिक्य, हँसी-खुशी, हाट-बाजार ।

( ३ ) सजातीय सहचर पद—आहार-विहार, अन्न-वस्त्र, कागज-कलम, घर-बन, दूध-दही, धूम-धड़ाका, नाम-धाम, नाक-कान, नकटी-बूची, फल-फूल, बंधु-बांधव, बाजा-गाजा, माल-मसाला, रीति-नीति, वर-कन्या, साज-बाज, हाला-प्याला, हँसी-खुशी ।

## द्विरुक्ति

कभी-कभी अर्थ मे कुछ विशेषता लाने के लिए एक ही शब्द की दो वार आवृत्ति कर देते हैं । ऐसा प्राय. अर्थ में कुछ शक्ति या दृढ़ता लाने के लिए किया जाना है । दो वार आवृत्ति करने से प्रथम शब्द के रूप मे कभी-कभी कुछ विकार ( परिवर्तन ) भी हो जाता है । जैसे—कानों-कान, बातों-बात, हाथो-हाथ ।

## वाक्यांशों के लिए एक शब्द

भाषा को सगठित बनाने के लिए कभी कभी ऐसे शब्दो के प्रयोग करने की आवश्यकता पड़ती है, जो विशेष अर्थ के द्योतक हों । इनके अर्थ की गंभीरता से भाषा सबल हो जाती है । अतएव ऐसे कुछ शब्दों को अवश्य ध्यान मे रखना चाहिए । इनके प्रयोग का एक उदाहरण देखिए—

मोहन ने मेरे साथ बड़ा उपकार किया है। मैं उसके किए हुए उपकार को स्वीकार करता हूँ।

यही वाक्य इस तरह लिखने पर अच्छा लगेगा—मोहन ने मेरे साथ बड़ा उपकार किया है। मैं उसका बहुत कृतज्ञ हूँ।

वाक्यांशों के लिए प्रयुक्त होने वाले कुछ शब्द नीचे दिये जा रहे हैं—

कृतघ्न--जो दूसरे व्यक्ति का किया हुआ उपकार न माने।

परोपकारी---जो दूसरे की भलाई करता रहता हो।

दृढ़निश्चयी—जो अपने निश्चय पर डटा रहता हो।

गगनस्पर्शी---बहुत ऊँचा या आकाश छूनेवाला।

कामचोर—जो काम करने से जी चुराता हो।

हथछुट—जो बहुत जल्दी मारने-पीटने लगता हो।

मंदबुद्धि—जिसकी समझ में हर बात जल्दी न आती हो।।

तीव्रबुद्धि—जो हर बात संकेत से और शीघ्र समझ ले।

लब्धप्रतिष्ठ—खूब यश और प्रतिष्ठा प्राप्त करनेवाला।

हँसमुख—जो हर समय और हर बात में हँसता हो।

मिलनसार—जो सबसे प्रसन्नतापूर्वक मिलता-जुलता हो।

जिज्ञासु—जो नयी नयी बातें जानने को हर समय उत्सुक हो।

उत्साही—जो हर काम को मन लगाकर और चाव से करे।

## पर्यायवाची शब्द

अच्छी भाषा लिखने के लिए लेख या परिच्छेद में एक ही शब्द का बार-बार प्रयोग न करके वही अर्थ रखनेवाले दूसरे शब्द का प्रयोग करना चाहिए। समान अर्थ रखनेवाले शब्दों को 'पर्यायवाची' कहते हैं। कुछ पर्यायवाची शब्द ये हैं—

अग्नि—वह्नि, कृशानु, पावक, अनल, वैश्वानर, हुताशन।

अमल--निर्मल, विमल, स्वच्छ, साफ, सुथरा।

अश्व—कुरग, वाजि, हय, घोटक, घोड़ा, तुरग।

अहकार—दर्प, दंभ, मान, अहम्मन्यता, अभिमान ।

आकाश—अभ्र, व्योम, अंबर, नभ, अतरिक्ष, गगन ।

आनद—मोद, प्रमोद, हर्ष, आमोद, सुख ।

आँख—नयन, लोचन, दृग, चक्षु, नेत्र, विलोचन ।

इच्छा—कांक्षा, स्पृहा, ईहा, वांछा, लिप्सा, मनोरथ, काम, अभिलाषा, लालसा ।

ईश्वर—प्रभु, परमात्मा, ब्रह्म, परब्रह्म, ईश ।

कमल—पद्म, अंबुज, कुवलय, इंदीवर, नलिन, अरविंद, शतपत्र, तामरस, सरसीरुह, राजीव, पुष्कर, अंभोज, अब्ज, जलज, नीरज, सरसिज, पाथोज, पुंडरीक, कज, सरोज, सारंग, वारिज ।

किरण—कर, मरीचि, मयूख, अंशु ।

क्रोध—कोप, अमर्ष, रोष ।

गंगा—विष्णुपदी, जाह्नवी, सुरसरि, भागीरथी ।

गणेश—विनायक, विघ्नराज, एकदत, गजानन ।

गृह—गेह, सद्म, निकेतन, सदन, भवन, आगार, मंदिर, आयतन, आलय, अयन ।

चद्र—चद्रमा, हिमांशु, इंदु, विधु, निशापति, सोम, मृगांक, शशि कलानिधि, सुधाकर, रजनीपति, सुधांशु, ओषधि-पति, मयंक, शशांक, राकेश, कलाधर, हिमकर, उडुपति ।

जल—वारि, सलिल, पय, अमृत, जीवन, वन, उदक, तोय, नीर ।

दुर्गा—उमा, गौरी, शिवा, भवानी, पार्वती, गिरिजा ।

देव—देवता, अमर, विबुध, सुर ।

देह—वपु, शरीर, काया, तन ।

दैत्य—असुर, दानव, राक्षस, निशाचर ।

नदी—सरिता, तरंगिणी, तटिनी ।

पडित—विद्वान, सुधी, कोविद, बुध, मनीषी, प्राज्ञ, विचक्षण ।

पक्षी—अंडज, द्विज, पतंग, शकुंत, शकुनि, विहंग, विहगम ।

पर्वत—गिरि, अचल, शैल, पहाड़, भूधर।

पृथ्वी—भू, भूमि, अचला, धरा, धरिणी, धरित्री, क्षिति, वसुमति, वसुधा, वसु धरा, अवनी, मेदनी, मही।

पुष्प—प्रसून, कुसुम, सुमन, फूल, पुहुप।

भ्रमर—मधुकर, षट्पद, अलि, द्विरेफ।

मनुष्य—मानुष, मनुज, मानव, नर, पुरुष।

मित्र—वयस्क, सखा, सुहृद।

मेघ—जलधर, पयोद, वारिद, घन, बादल।

राजा- नृप, भूप, महीप, नराधिप

रात्रि—निशा, रजनी, यामिनी, विभावरी, निशीथिनी।

लक्ष्मी—पद्मा, कमला, श्री, इंदिरा, रमा, चचला,।

वस्त्र—वसन, पट, चीर, कपड़ा।

वायु—अनिल, समीर, मारुत, पवन, वात।

विद्युत—तड़ित, चंजला, सौदामिनी, क्षणप्रभा, चपला।

विष्णु—नारायण, दामोदर, केशव, माधव, गोविंद, गरुड़ध्वज अच्युत, जनार्दन, चक्रपाणि, विश्वम्भर, मुकुंद।

शत्रु—वैरी, रिपु, अरि, विपक्षी, अमित्र।

समुद्र—अब्धि, उदधि, सिंधु, सागर, अर्णव, वारिधि, जलधि, तोयनिधि, नीरनिधि।

सर्प-भुजंग, विषधर, व्याल, फणी, नाग

सिंह—मृगेन्द्र, केहरि, हरि।

सुवर्ण—स्वर्ण, कनक, हेम, सोना।

सूर्य—सूर, आदित्य, दिवाकर, भास्कर, अर्क, रवि, मार्तंड, भानु, प्रभाकर, तरणि, सहस्रांशु।

स्त्री—अबला, नारी, वनिता, महिला, कामिनी।

सरस्वती—वाणी, भारती, शारदा, वीणापाणि, हंसवाहिनी।

हाथी—दंती, द्विप, द्विरद, मतंग, गज, करि, नाग, गयंद, वारण,

## विपरीत अर्थवाले शब्द

लिखते समय कभी-कभी विपरीत अर्थ रखनेवाले शब्द की आवश्यकता होती है। कुछ विपरीतार्थक शब्द ये हैं—

आदि-अंत, श्रद्धा-घृणा, शत्रु-मित्र, स्वर्ग-नरक, पाप-पुण्य, सुख-दुख, ऊँच-नीच, आकाश-पाताल, कोमल-कठोर, पंडित-मूर्ख, धनी-दरिद्र, सत्य-मिथ्या, लाभ-हानि, शुभ-अशुभ, धर्म-अधर्म, न्याय-अन्याय, जय-पराजय, संयोग-वियोग, सुगम-दुर्गम, सरस-नीरस, अनुकूल-प्रतिकूल, उपकार-अपकार, सुगंध-दुर्गंध, अनुराग-विराग, स्वतंत्र-परतंत्र, सधवा-विधवा, सज्जन-दुर्जन, आय-व्यय, उदय-अस्त, गुरु-लघु, आदि-अनादि, भद्र-अभद्र, मंगल-अमंगल, शांति-अशांति, संभव-असंभव, शुद्ध-अशुद्ध, यश अपयश, घात-प्रतिघात, वाद-प्रतिवाद, राग-विराग, विवाद-निर्वाद, सजीव-निर्जीव, उन्नति-अवनति, प्रकाश-अंधकार, जड़-चेतन, स्थूल-सूक्ष्म, शीत-उष्ण, निंदा-स्तुति, ज्येष्ठ-कनिष्ठ, नूतन-पुराण (पुरातन), सृष्टि-प्रलय, ह्रस्व-दीर्घ, उदार-कृपण, स्थावर-जंगम, उत्कृष्ट-निकृष्ट, आदान-प्रदान, अतिवृष्टि-अनावृष्टि, अर्थ-अनर्थ धीर-अधीर, क्रय-विक्रय, सम-विषम, मान-अपमान, सत-असत, आदर-अनादर, असुर-अनासुर, चर-अचर, ईश-अनीश, स्वस्थ-अस्वस्थ, उचित-अनुचित, कल्याण-अकल्याण, ऋत-अनृत, कुटिल-अकुटिल, एक-अनेक, ऐश्वर्य-अनैश्वर्य, नियम-अनियम, विधि-निषेध सुलभ-दुर्लभ।

## अनेकार्थक शब्द

कुछ शब्दों के एक से अधिक अर्थ होते हैं। सभी का ज्ञान न होने से कभी-कभी लिखी हुई बात का अर्थ समझने में बड़ी भूल हो जाती है। यहाँ ऐसे कुछ शब्दों की सूची दी जा रही है जिनका प्रयोग एक से अधिक अर्थों में होता है—

अर्क—सूर्य, मदार। अंक—चिन्ह, गोद, नंबर, परिच्छेद।

अज—ब्रह्मा, दशरथ के पिता, बकरा। अपवाद—कलंक, किसी नियम का न लगना। अंबर—वस्त्र, आकाश। अर्थ—धन, मतलब, प्रयोजन, कारण। उत्तर—जवाब, उत्तर दिशा, पीछे। कनक—सोना, धतूरा। कर—हाथ, किरण, सूँड, टैक्स। कोश—खजाना, डिक्शनरी। गुरु—गुरू, बड़ा, भारी, श्रेष्ठ। ग्रहण—सूर्य और चंद्र ग्रहण, लेना, पकड़ना। जलज—कमल, मोती, मछली, शंख, सिवार, चंद्रमा। जीवन—जीविका, जल, प्राण। तात—पिता, भाई, मित्र, बड़ा, पूज्य, प्यारा। तारा—नक्षत्र, आँख की पुतली, बालि की स्त्री, बृहस्पति की स्त्री, एक देवी। ताल—ताड़, बाजे का ताल, पोखरा, हरताल। दंड—डंडा, सजा। दल—पत्ता, समूह, पक्ष। द्विज—ब्राह्मण, पक्षी, दाँत, चंद्रमा। नाग—सर्प, हाथी, नागकेसर। पक्ष—महीने का आधा, तरफ, दल, पंख। पतंग—कनकौआ, पक्षी, सूर्य, पतिंगा। पत्र—पत्ता, चिट्ठी, पंख, पृष्ठ। पद—ओहदा, अधिकार, पैर। पय—पानी, दूध। पात्र—बर्तन, व्यक्ति। पृष्ठ—सफा, पीठ। पोत—नाव, लड़का, स्वभाव, वस्त्र, गुड़िया। फल—नतीजा, फल, चाकू का फल। भूत—प्राणी, प्रेत, बीता हुआ। मन्त्र—सलाह, देवता का मन्त्र। मान—अभिमान, नाप-तौल। माला—फूलों की माला, समूह। मित्र—मित्र, सूर्य। मुद्रा—रुपया-पैसा, मोहर, शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों को विशेष रीति से रखना। यम—यमराज, योग का एक अंश। योग—योग, योगशास्त्र, मिलना। रश्मि—किरण, रस्सी। रस—नवरस, षट्रस, दवा, प्रेम, सार, स्वाद, जल। राग—प्रेम, रंग, गाने का राग। वन—जंगल, जल। वर—श्रेष्ठ, दुलहा, वरदान। वर्ण—ब्राह्मण आदि चार वर्ण, रंग, अक्षर। विधि—रीति, ब्रह्मा, भाग्य, ईश। शक्ति—बल, देवी, अस्त्र। शिव—महादेव, कल्याण, भाग्यशाली, वेद। सारंग—राग विशेष, मोर, सर्प, मेघ, हिरन, पानी, पपीहा, हाथी, राजहंस, सिंह, कोयल, कामदेव, रंग विशेष, वर्ण, धनुष, भौंरा, मधुमक्खी, कपूर, कमल, भूषण, फूल, छत्र, शोभा, रात, दीपक, स्त्री, शंख, वस्त्र। सुधा—अमृत, जल। सैंधव—नमक, घोड़ा, सिंधु नदी के

पास का। सधि—मिलना, सुलह। सूत—सारथी, डोरा, एक ऋषि, सूत का लड्डू। हरि—विष्णु, इंद्र, साँप, मेढ़क, सिंह, घोड़ा, सूर्य, चाँद, तोता, बानर, यमराज, हवा, ब्रह्मा, शिव, किरण, मोर, कोयल, धनुष, गज, कामदेव, हरा रंग।

## भिन्नार्थक शब्द

कुछ ऐसे शब्द हैं जो या तो बिल्कुल मिलते-जुलते जान पड़ते हैं या जिनकी ध्वनि मे थोड़ा अन्तर है, परन्तु मूल भिन्न होने के कारण उनके अर्थ मे बहुत अन्तर रहता है। हिंदी, सस्कृत, अरबी, फारसी, अँगरेजी के ऐसे शब्दों के कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं।—

आगा—( हि० ) आगा-पीछा, आगे का, ( फा० ) सरदार।
आन—( हिं० ) लाज, दूसरा, आकर। ( अँ० ) समय।
आम—( हिं० ) एक फल, ( अ ) आम तौर से।
इतवार—( हि० ) रविवार, ( फा० ) विश्वास।
कद—( सं० ) मूल, जड़, ( फा० ) मिठाई।
कफ—( सं ) बलगम, ( फा० ) फेना, ( आ० ) कमीज का कफ।
कमान—( फा० ) फौजी हुक्म, ( हिं० ) धनुष।
कुंद—( स० ) फूल, ( फा० ) मंद, कम।
कुल—( स ) वंश ( अ० ) सब, केवल।
कै—( हि० ) कितने, अथवा, ( अ० ) कै करना।
खैर—( हिं० ) कत्था, ( फारसी ) कुशल, कुछ परवाह नहीं।
गौर—( स० ) गोरा, ( अ० ) ध्यान से देखना।
चारा—( हिं० ) घास, भोजन, ( फा० ) उपाय।
जाल—( स० ) जाल, माया जाल, ( अ० ) धोखा, छल।
झष—( स० ) मछली, ( हिं० ) खीझना।
तूल—( स० ) रुई, ( हिं० ) तुलना।

पट—( सं० ) कपड़ा, परदा, ( हिं० ) किवाड़, उलटा, पट पड़ना, चटपट।

पर—( सं० ) पराया, ऊपर, किंतु तो भी, ( हिं० ) अधिकरण कारक का चिह्न,-मेज पर, ( फा० ) पंख, पाँख।

बाण—( सं० ) धनुष का तीर, ( हिंदी-बान ) आदत।

रास—( स० ) क्रीड़ा, नाच, रासलीला, ( हि० ) घोड़े की रास।

शकल—( सं० ) टुकड़ा, ( फा० ) चेहरा-सूरत।

सन —एक पौधा, ( अ० ) संवत्।

सर—( स० ) तालाब, धनुष का तीर, पानी, ( फा० ) सिर, प्रधान, जीतना ( अं० ) महाशय।

हाल—( हिं० ) पहिये का हाल, उसी हाल ही में, ( अ० ) अवस्था, दशा, समाचार, ( अँ० ) भवन,-सिनेमा-हाल।

## मुहावरे

मुहावरो के प्रयोग से भाषा में विशेष सुंदरता, चमत्कार और सजीवता आ जाती है। साधारण वार्तालाप मे जब हम इनका प्रयोग करते हैं तब लिखते समय इनके सयोग से भाषा का रूप विशेष स्वाभाविक जान पड़ता है। किंतु, मुहावरो का प्रयोग करना तभी चाहिए जब उनका अर्थ अच्छी तरह ज्ञात हो और उनके प्रयोग के लिए अवसर भी हो। मुहावरेदार भाषा का एक अच्छा उदाहरण नीचे दिया जाता है—

कानूनगो इलाके में जाते तो सुजान महतो की चौपाल मे ठहरते। हल्के के हेड कास्टेबिल, थानेदार, शिक्षा विभाग के अफसर, एक-न-एक उस चौपाल मे पडा ही रहता। महतो मारे खुशी के फूले न समाते! धन्य भाग्य! उनके द्वार पर इतने बड़े बड़े हाकिम आकर ठहरते हैं। जिन हाकिमो के सामने उसका मुँह न खुलता था उन्हीं की अब महतो-महतो कहते जबान सूखती है। कभी कभी भजन-भाव भी हो जाता। एक महात्मा ने डौल अच्छा देखा तो गाँव मे आसन

जमा दिये। गाँजे और चरस की बहार उडने लगी। एक ढोलक आयी, मँजीरे मँगवाये गये, सत्संग होने लगा। यह सब सुजान के दम का जहूरा था। घर में सेरों दूध होता, मगर सुजान के कंठ तले एक बूँद भी जाने की कसम थी। कभी हाकिम लोग चखते, कभी महात्मा लोग।

—प्रेमचंद।

अंगार उगलना-क्रोध में असह्य वचन बोलना। अंगार बरसना—कड़ी धूप पड़ना। अँगूठा चूमना—चापलूसी करना। अंधे की लकड़ी—एक मात्र आधार। अंधे के हाथ बटेर—भाग्य से अच्छी चीज हाथ आना। अँधेरे घर का उजाला—कुल दीपक। अक्ल चरने जाना—मूर्खता का व्यवहार करना। अगर-मगर करना—बहाना बताना। अपना उल्लू सीधा करना—स्वार्थ सिद्ध करना। आँख खुलना—होश आना। आँखे तरसना—देखने को जी चाहना। आँखे दिखाना—क्रोध से घूरना। आँखे फिरना—प्रतिकूल होना। आँखे बदल जाना—पहले का सा प्रेम न रहना। आँखें बिछाना—प्रेम से स्वागत करना। आँखो से गिरना—आदर घटना। आँखो का तारा—प्रिय।

आँचल पसारना—प्रार्थना करना। आड़े हाथ लेना-खरी खोटी सुनाना। आसमान पर चढ़ना-अत्यधिक प्रशंसा करना। आसमान टूटना-विपत्तिपड़ना। आसमान पर चढ़ना-बहुत घमंड करना। आसमान सिर पर उठाना-अधिक शोर करना। आस्तीन का साँप —कपटी मित्र। उधेड़बुन- सोच-विचार। उल्टी गंगा बहाना—विपरीत बात करना।

कमर टूटना—निराश हो जाना, उत्साह न रहना। कलेजा पानी होना—चित्त मे अत्यंत दया आना। कान काटना—बढ कर काम करना। कान खाना—शोर मचाना। कान देना—ध्यान से सुनना।

कान भरना-चुगली खाना । काम आना-संग्राम में मारा जाना । काम तमाम करना—मार डालना । खटाई मे पड़ना—झमेले में पड़ना । गर्दन पर छुरी फेरना--अत्याचार करना । गर्दन पर सवार होना-पीछा न छोड़ना । गर्दन हिलाना— इनकार करना । गले का हार—अति प्रिय । गले मढ़ना या बाँधना—दूसरे की इच्छा के विरुद्ध देना । गहरी छानना—मौज करना । गाँठ का पूरा—मालदार । गुड़ गोबर करना—काम बिगाड़ना । गूँगेका गुड़—जिस बात का अनुभव हो पर वर्णन न हो सके । घड़ो पानी पड़ना-अत्यत लज्जित होना । घाव हरा करना—भूले हुए दुख की याद दिलाना । चाँद पर थूकना—किसी की व्यर्थ निंदा करना, फलतः स्वयं निंदित होना । चाँदी का जूता—रुपयो का लालच । चिकना घड़ा—वह आदमी जिस पर उपदेश का असर न हो । चुटकियो में—आसानी से । चोटी हाथ मे होना—वश मे होना । छक्के छुड़ाना—परास्त कर देना । छप्पर फाड़ कर देना—बिना परिश्रम के पाना । छाती पर साँप लोटना—ईर्ष्या करना । जमीन पर पैर न पड़ना—बहुत अभिमान होना । जी छोटा होना—उत्साह कम होना ।—जूतियाँ चटकाते फिरना—व्यर्थ इधर-उधर घूमना । टका सा मुँह लेकर रह जाना लज्जित-होना । टेढ़ी खीर—कठिन काम । टोपी उछालना—निरादर करना । ठनठन गोपाल—जिसके पास कुछ भी न हो । तिलांजलि देना—छोड़ देना । तीन तेरह करना—तितर-बितर करना । तीन पाँच करना—हुज्जत या घुमाव-फिराव करना । थुकाते फिरना—बदनामी करना । दाँत खट्टे करना—पराजित करना । दाँतों तले उँगली दबाना—आश्चर्य प्रकट करना । दाँत तोड़ना—परास्त करना, हराना । दाँत निकालना—( १ ) व्यर्थ हँसना ( २ ) गिड़गिड़ाना । दाँत पीस कर रह जाना—क्रोध आने पर भी कुछ न कर पाना । धोती ढीली होना—डरना । नाक चढ़ाना—घृणा करना । नाकों चने चबाना—खूब तंग करना । नीला-पीला होना—गुस्से मे आना ।

पट्टी पढ़ाना—बुरी सलाह देना। पानी का बुलबुला—शीघ्र नाश होने वाला। पानी के मोल—बहुत सस्ता। पेट मे दाढ़ी होना—बचपन मे बहुत काइयाँ होना। पौ बारह होना—खूब लाभ होना। बगले झाँकना—बचाव का रास्ता ढूँढ़ना। बछिया का ताऊ—मूर्ख। मुँह मे खून लगना—चसका पड़ना, चाट पड़ना। मुट्ठी गरम करना—रिश्वत देना। लुटिया डुबोना—काम बिगाड़ देना। साँप छछूँदर की दशा—दुविधा मे पड़ना। हवा लगना—संगत का बुरा असर होना। हाथ के तोते उड़ जाना—हक्का-बक्का हो जाना।

## लोकोक्तियाँ

यह शब्द 'लोक' और 'उक्ति' से मिल कर बना है। 'लोक' का अर्थ है ससार या समाज और 'उक्ति' कहते हैं कही हुई बात को। अतएव 'लोकोक्ति' का साधारण अर्थ है ऐसी बाते जो ससार या समाज मे जब-तब कही जाती हैं। ऐसी उक्तियाँ विशेष अर्थ रखती हैं; उनमें कुछ ऐसा अनुभव रहता है जिसकी सत्यता अनेक बार परखी जा चुकी होती है। इसीलिए धीरे-धीरे वे बाते दूर-दूर तक प्रचलित हो जाती हैं। अपने कथन की पुष्टि करना सबको उचित जान पड़ता है और लोकोक्ति के सहारे यह काम बड़ी सरलता और सुदरता से हो जाता है। रचना में इनके प्रयोग का प्रधान कारण यही है। इनसे भाषा की सुदरता भी बढ़ती है। नीचे कुछ लोकोक्तियो के प्रयोग दिये जाते हैं—

१—राम जन्म से निर्धन था। भाग्य से उसे दस हजार की थैली पड़ी मिल गयी। अब तो न वह किसी को अपने बराबर ही समझता और न उसके पैर ही जमीन पर पड़ते; मनमाने ढंग से अनाप-शनाप खर्च करने और लुटाने लगा। यह परिवर्तन और उसका कारण जानकर उसके मित्रों ने कहा—ठीक है, थोरेहि धन खल इतरही।

२—मोहन अपने मित्रो को सिखाया करता था कि मिलकर रहा करो। परतु एक साधारण सी बात पर वह छोटे भाई से इतना बिगड़ा

कि उसे घर से ही निकालने को तैयार हो गया। यह सूचना पाकर उसके मित्रों ने कहा—पर-उपदेश कुशल बहुतेरे।

३.—एक न्यायाधीश अपराध करने वालों को कड़ा दंड देना चाहता था। भेद खुलने पर पता लगा कि प्रधान अपराधी उसका सगा भाई ही है। अब तो वह बड़े धर्म-संकट में पड़ा; उसकी दशा सॉप-छछूँदर सी हो गई। इस धर्म-संकट से बचने का कोई उपाय उसे शीघ्र न सूझ सका।

अंधा चाहे आँखें दो—जिसके पास जो चीज नही है, वह उसे मिल जाय, तब यह कहावत कहते हैं। अंधा बाँटे रेवड़ी फिर फिर अपने को देय—अधिकार मिलने पर केवल अपने ही मिलने-जुलने वालों और संबंधियों को लाभ पहुँचाना। अंधे के आगे रोना, अपने नैना खोना—मूर्ख को समझाना अपना ही दिमाग खराब करना है। अंधे के हाथ बटेर लगी—भाग्य से अचानक कोई काम की चीज मिल जाना। अँधेरे घर मे उजाला—घर का इकलौता लड़का। अंधों मे काना राजा—बहुत से मूर्खों में थोड़ी बुद्धिवाले का भी सम्मान होता है। अक्ल के पीछे लाठी लेकर दौड़ना—बड़ी मूर्खता का काम करना। अति भक्ति चोर का लक्षण—कोई ज्यादा चापलूसी करे तो समझना चाहिए कि उसका कुछ मतलब जरूर है। अधजल गगरी छलकत जाय—ओछा आदमी थोड़ा लाभ होते ही इतराने लगता है। अपना उल्लू सीधा करना—अपना मतलब निकालना। अपना टेंटर न देखे दूसरे की फुल्ली निहारे—अपने ऐब पर ध्यान न देना पर दूसरे की जरा सी बात पर आफत कर देना। अपना पूत पराया ढटींगर—अपने को चाहना, दूसरे की परवाह न करना। अपनी गली में कुत्ता शेर—कमजोर से कमजोर भी अपने घर में धौंस जमाया करता है। अपनी जली दाढ़ी सब बुझाते हैं—अपनी बिगडी सब बनाते हैं। अपने दही को कोई खट्टा नहीं कहता—अपनी चीज की कोई बुराई नहीं करता। अपने से बैर पड़ोसी से नाता—संबंधियों से बुराई

करके दूसरों की सहायता करना। अपने मरे बिना स्वर्ग नहीं दीखता—अपना काम आप ही करने पर पूरा होता है। अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनना— अपनी बड़ाई आप करना। अपने लगे पीठ में और के लगे भीत में—अपने मामूली दुख को बहुत ज्यादा और दूसरे के बड़े दुख को कम समझना। अबल (निबल) की जोरू सब की भौजाई—गरीब को सभी दबाते हैं। अस्सी की आमद चौरासी का खर्च—आमदनी कम और खर्च ज्यादा।

आँख का अंधा गाँठ का पूरा—मूर्ख है और साथ ही धनी भी। आँख फूटी पीर गई—जिस बात से दुख हो उससे छुटकारा पाना ही अच्छा है। आँख बची माल दोस्तों का—लापरवाही करते ही दूसरे लाभ उठाने लगते हैं। आँख के अंधे नाम नयनसुख—जब सामने की पड़ी चीज ढूँढ़नेवाले को न दिखाई दे तब यह ताना देते हैं। आँसू एक नहीं कलेजा टूक टूक—दिखाने के लिए जोर जोर से रोना। आग लगाकर पानी को दौड़ना—झगड़ा कराने के बाद स्वय ही मेल कराने बैठना। आज किधर चाँद निकला है—बहुत दिन बाद दिखावी देना। आटे के साथ घुन पिसना—दोषी के साथ स्वयं निर्दोष होते हुये भी नुकसान उठाना। आटे दाल का भाव जानना—मुसीबत पड़ना। आदमी कुछ खोकर सीखता है—धोखा खाने पर ही अक्ल आती है। आम के आम गुठली के दाम—दुहरा लाभ होना। आम बोओ, आम खाओ, इमली बोओ इमली खाओ—जैसा करोगे वैसा भरोगे। आये थे हरिभजन को, ओटन लगे कपास—भले काम के लिए जाकर, किसी बुरे काम में फँस जाना। आसमान का थूका मुँह पर आता है—बड़ों की निंदा करने से अपनी ही बुराई होती है। आसमान से गिरा तो खजूर में अटका—करीब-करीब पूरा काम किसी तरह हो जाने पर कोई अड़चन आ जाना।

इक नागिन अरु पख लगाई—किसी दुखदायी चीज का और भी भयंकर हो जाना। इधर गिरूँ तो कुआँ, उधर गिरूँ तो खाई—दोनों

और मुसीबत देखकर दुविधा में पड़ना। इनके काटे की दवा नहीं है—बड़ा भयानक आदमी है। ईंट का घर मिट्टी करना—बना-बनाया काम बिगाड़ना। ईंट के लिए मस्जिद ढाना—अपने थोड़े से मतलब के लिए दूसरों को भारी नुकसान पहुँचाना। उँगली पकड़ते पहुँचा पकड़ना—थोड़ सहारा पाकर पूरा अधिकार जमाने की कोशिश करना। ऊखली में सर दिया तो मूसलों का क्या डर—जब काम करने को उद्यत हुए, तब कोई भी अड़चन आये तो हमें परवाह क्या! उलटा चोर कोतवाल को डाँटे—अपराध करने वाला उल्टी धौंस जमाये। उल्टी माला फेरना—किसी का बुरा चाहना। उल्टे छुरे से मूड़ना—बुरी तरह ठग लेना। उसी की ( मियाँ की ) जूती उसी का ( मियाँ का ) सिर—जिसकी चीज हो उससे उसी का नुकसान करना। ऊँची दूकान फीका पकवान—कोरी दिखावट के लिए बड़प्पन का ढोंग बनाये रखनेवाले पर ताना। ऊँट पर किसने छप्पर छाए है—गरीब के आराम की कौन परवाह करता है! ऊँट घोड़े बहे जायँ, गदहा कहे कितना पानी—बड़े बड़े जिस काम को न कर सकें, उसके लिए जब छोटे तैयार होने लगें, तब ताना। ऊँट जब भागे, तब पश्चिम को—अपना घर सबको प्यारा लगता है। ऊधो के लेन मे, न माधो के देन मे—सब झगड़ों से अलग। ऊपर गोरे, भीतर काले—ऊपर से भले बनना, अदर से कपट रखना। ऊसर में बरसे, तृन नहि जमै—मूर्ख पर भले उपदेशों का कोई असर नही होता।

एक आम की दो फाँकें है—दोनों एक से हैं। एक ताँबे के कई बर्तन हैं—एक ही वंश के हैं। एक और एक ग्यारह होते है—मिलकर काम करने से बड़ी शक्ति आ जाती है। न एक कहो न दस सुनो—न एक गाली दो और न दस गाली सुनो। एक कान सुनी दूसरे से उड़ा दी—बात पर ध्यान न दिया। एक चुप हजार को हराए—चुप्पी साधने से बोलनेवाले हार जाते हैं। एक थैली के चट्टे-बट्टे—सब एक से हैं। एक पथ दो काज—एक काम की कोशिश करने पर दूसरा

अपने आप हो जाय। एक पापी सारी नाव को ले डूबता है—एक के नीच होने से सारे समाज की हानि होती है—एक मछली सब जल गँदला करती है। एक हाथ से ताली नहीं बजती—एक के करने से झगड़ा नहीं होता। एकता बड़ी चीज है—( स्पष्ट )। ऐसा कौन लोभ नहिं जाके—सभी थोड़े-बहुत लालची होते हैं। ओछा पात्र उबलता है—थोड़ा धन पाते ही ओछे इतरा जाते हैं। ओठ ( ओस ) चाटे प्यास नहीं बुझती—जरा सी चीज से संतोष नहीं होता।

कटे पर नमक छिड़कना—जले को जलाना या चिढ़े हुए को और चिढ़ाना। कड़ुए से मिलिए मीठे से डरिए—कड़वी बात अंत में बहुत लाभ पहुँचाती है, पर मीठा बोलनेवाला पक्का मतलबी होता है। कफन सर पर बाँधे फिरना—मरने से न डरना। कब्र में पैर लटकाये है—मरनेवाले हैं। कबख्ती ( गरीबी ) में आटा गीला—मुसीबत पर मुसीबत पड़ना। कमर में तोशा ( मार्ग का भोजन ) बड़ा भरोसा—अपने पास के धन पर ही बड़ा भरोसा रहता है। कर सेवा खा मेवा—बड़ों की सेवा करने से सुख मिलता ही है। कहाँ राजा भोज कहाँ गंगा तेली—बेमेल व्यक्तियों की तुलना करने पर कहते हैं। कहे खेत की, सुने खलिहान की—कहा कुछ जाय, समझा कुछ जाय। कहे से धोबी गधे पर नहीं चढ़ता—जिद्दी आदमी अपनी खुशी से भले ही काम करे, पर दूसरों के कहने से नहीं करता। काँटे से काँटा निकाला जाता है ( जहर से जहर को मारते हैं )—शत्रु को शत्रु द्वारा ही नष्ट करना चाहिए। कागज की ( पाप की ) नाव, आज न डूबी, कल डूबी—बेईमानी या पाप का पैसा ज्यादा नहीं टिकता। काजी के घर चूहे भी सयाने—कंजूस के घर में सभी सयाने होते हैं। कान पर जूँ नहीं रेंगती—कहने पर जरा भी ध्यान न देना। कान में तेल डाले बैठे है—कुछ सुनते ही नहीं।

किया कराया सब गुड़ गोबर—काम बिगड़ जाना। किसी का घर जले, कोई तापे—किसी के नुकसान पर जब दूसरा लाभ उठाना चाहे

तब यह ताना। किसीका मुँह चले किसी का हाथ—जब कोई गाली देगा तो दूसरा मार ही बैठेगा। काल के हाथ कमान बूढ़ा बचे न जवान —काल किसी को नहीं छोड़ता। काल गया पर कहावत रह गयी—वक्त निकल जाता है, पर बात रह जाती है। काला अक्षर भैंस बराबर— अपढ़ आदमी पर ताना। कुएँ की मिट्टी कुएँ ही मे लगती है–जिसकी कमाई उसी मे लगायी। कुओं मे बाँस डलवा दिये—बहुत खोज की। कुँजड़िन अपने बेरों को खट्टा नहीं कहती—अपनी चीज को कोई बुरा नहीं कहता। कुछ दाल में काला है—कुछ रहस्य ( भेद ) जरूर है। कुछ लोहा खोटा कुछ लोहार खोटा—दोनों तरफ कुछ कमी है। कुत्ता घसींटी में पड़ना—झंझट मे फँस जाना। कुत्ता भी बैठता है तो दुम हिलाकर—जो सफाई से न रहे उस पर ताना। कुत्ता मुँह लगाये से सिर चढ़े—नीच को मुँह नहीं लगाना चाहिए। कुत्ते को घी नही पचता—ओछे के पेट में बात नहीं पचती, ओछा धन पाकर इतराने लगता है। कोठीवाला रोये, छप्परवाला सोये—धनी से निर्धन बेफिक्र होता है। कोढ मे खाज–दुख पर दुख पड़ना। कौडी नहीं पास चले बाग की सैर–(स्पष्ट है)। कौन सी चक्की का पिसा खाया है—बहुत मोटे आदमी पर ताना। क्या मुँह से फूल झड़ते है—जो कड़वी बातें बक रहा हो, उस पर ताना। क्या हाथ-पैरो मे मेहदी लगी है– आलसी पर ताना। क्यों काँटों में घसीटते हो—जब बड़े आदमी छोटों का आदर करे तो छोटा आदमी शर्मिंदा होकर कहता है।

खग जाने खग ही की भाषा–नीच अपने ही साथियों की बातें समझ सकता है। खरबूजे को देखकर खरबूजा रंग पकड़ता है—नीचके साथ रहने से भला भी उसकी बाते सीख जाता है। खरी मजूरी, चोखा काम—अच्छी मजूरी देने पर काम भी अच्छा होता है। खाने के दाँत और दिखाने के और—कहे कुछ, करे कुछ। खाने को शेर, कमाने को बकरी—जो खाय बहुत, पर काम न करे उस पर ताना। खाय चना रहे बना—(स्पष्ट है)। खाय बकरी की तरह, सूखे लकड़ी की तरह—जो

बहुत खाने पर भी दुबला बना रहे उस पर ताना। खिचड़ी खाते पहुँचा टूटा—सुकुमार आदमी पर ताना। खिलाये का नाम नही, रुलाये का नाम—पराये लड़के को खिलाने का नाम नहीं होता, पर डाटने मे बदनामी जरूर होती है। खूँटे के बल बछड़ा कूदे—नौकर अपने मालिक के बल पर इतराता है। खोटा (कपूत) बेटा और खोटा पैसा भी समय पर काम आता है—(स्पष्ट है)। खोदा पहाड़ निकली चुहिया—परिश्रम बहुत करना, पर लाभ नाम मात्र को हो।

गगा गए गगादास, जमुना गए जमुनादास—जिसके पास जाना उसी-की-सी कहना। गड़े मुर्दे उखाड़ना—पुरानी बात कहकर लड़ने को तैयार होना। गदहा धोए से घोडा नहीं होता—सुधारने से प्रकृति नहीं सुधरती। गया वक्त फिर हाथ नहीं आता—समय चूक जाने से फिर काम नहीं बनता। गये लेने को ऊन, आये बाल मुड़ाये—जो कमाने को जाय पर घर का भी खो आये उस पर ताना। गिरगिट का-सा रग पलटना—जिस मनुष्य की बात का कोई ठिकाना न हो, कभी कुछ कहे कभी कुछ; उस पर ताना। बदर घुड़की, गीदड भभकी—झूठा रोब दिखाना। गुड़ खायें पर गुलगुलों से परहेज—दिखावटी परहेज करनेवालों पर ताना। गुड दिये मरे तो जहर क्यो दे—समझाने से मान जाय या आसानी से काम निकल जाय तो सख्ती की क्या आवश्यकता है। गुड़ न दे तो गुड-की-सी-बात तो कहे—जिसके साथ कुछ भलाई न कर सके उससे मीठी बात तो करनी ही चाहिए। गुदडी मे लाल नही छिपते—गुणी यदि बुरी दशा मे भी रहे तो भी पहचाने जा सकते है। गुरु गुड़ ही रहे चेला शक्कर हो गये—चेला गुरू से भी बढ़ गया। गैर का सिर कद्दू बराबर—परायी चीज की दर्द नही होता। गोद मे लडका शहर मे ढिढोरा—पास पड़ी हुई चीज को इधर-उधर खोजना। घर की मुर्गी दाल बराबर—घर की चीज की कदर नहीं होती। घर के पीरो को तेल का मलीदा—घरवालों का आदर कम

होते देखकर कहते हैं। घर-घर मटियाले चूल्हे हैं—सभी घरों की एक सी हालत होती है।

चमड़े की जबान है—भूल-चूक हो सकती है। चाँद को भी ग्रहण लगता है—भले आदमी की कीर्ति मे भी धब्बा लग जाता है। चाँदी का जूता सिर पर—रुपये से सब कुछ हो सकता है। चार दिन की चाँदनी, फिर अँधेरी रात-बे समझे-बूझे गुलछर्रे उड़ानेवाले पर ताना। चिकना घड़ा—बड़ा बेशर्म है। चिकने मुँह को सब चूमते है—बड़े आदमी की हाँ में हाँ सभी मिलाते हैं। चिराग तले अँधेरा—जो दूसरो को उपदेश दे पर स्वय ढंग से काम न करे। चोर का भाई गँठकटा—जब एक बुरा आदमी दूसरे बुरे का पक्ष लें रहा हों तब कहते हैं। चोर की दाढ़ी मे तिनका—जो दोषी होता है वह सारी बात अपने ऊपर ही कही समझ कर लड़ने लगता है, इससे उसका दोष खुल जाता है। चोर के मन मे चोरी बसे—बुरे को बुराई ही सूझती है। चोर-चोर मौसेरे भाई—बुरे स्वभाव के लोग जल्दी दोस्त ( एक ) हो जाते हैं। चोली-दामन का साथ—बहुत घना संबंध। चौबे जी छब्बे होने गये और रह गये दुबे—जब कोई काम किया तो जाय लाभ की आशा से, पर हो जाय हानि; तब कहते हैं। छोटे मुँह बड़ी बात—छोटा आदमी अनुचित बात कहे, तब कहते हैं। जड़ काटते जायँ पानी देते जायँ—ऊपर से काम बनाते, पर अंदर से उसे बिगाड़ते रहने वाले पर ताना। टट्टी की ओट शिकार खेलना—छिपकर दूसरो को धोखा देना।

तन पर नहीं लत्ता, पान खाय अलबत्ता—झूठी शान दिखाना। तेली का तेल जले मसालची का पेट दुखे—खर्च किसी का हो दुख किसी को हो। थूक से सत्तू नहीं सनता—थोड़े खर्च से बड़ा काम नहीं होता। दुधारी गाय की लात भली—जिससे लाभ होता है उसकी बातें भी सहनी पड़ती हैं। दूध का जला छाँछ फूँक-फूँक पीता है—एक हानि उठानेवाले को हर काम मे अँदेशा रहता

है। दाल भात में मूसलचंद—व्यर्थ टाँग अड़ानेवाले को कहते हैं। दोनो हाथ मे लड्डू है—हर तरह लाभ है। दमड़ी की बुलबुल टका हलाली—वस्तु का मूल्य कम हो पर उसकी सँवराई (सँभाल) का खर्च बहुत हो। धोबी का कुत्ता, न घर का न घाट का—जिसका कहीं ठौर-ठिकाना न हो।

न रहेगा बाँस न बजेगा बाँसुरी—किसी चीज के कारण को जड़ से मिटा देना। नदी में रहकर मगर से बैर—बलवान अधिकारी से बैर न करना चाहिए। नक्कारखाने मे तूती की आवाज—बड़ों मे छोटो की कौन सुनता है। नाम बड़े दर्शन छोटे—कोरी शान दिखानेवाले पर ताना। नौ नगद न तेरह उधार—उधार से नगद थोड़ा भी मिलना अच्छा है। नौ दिन चले अढ़ाई कोस—अधिक परिश्रम का थोड़ा फल। नंगा क्या निचोड़े—निर्धन कुछ नहीं कर सकता। नौ सौ चूहे खाय बिलाई हज को चली—उम्र भर अन्याय करके अपने को भला बतानेवाले पर ताना। नाक काट कर दुशाले से पोछना—नुकसान करके हमदर्दी दिखाना।

पौ बारह है—खूब लाभ है। पर-उपदेश कुशल बहुतेरे—दूसरो को उपदेश देनेवाले बहुत होते हैं। पांडे जी पछताएँगे वही चने की खाएँगे—हारकर वही करना होगा। फूही-फूही कर तालाब भरता है—थोड़ा थोड़ा करके बहुत धन होता है। फूँक-फूँक कर पैर रखना—सोच-विचार कर काम करना। बकरी की माँ कब तक खैर मनाएगी—कमजोर आदमी जोरदार के समाने नहीं टिक सकता; यदि यही हाल है तो किसी न किसी दिन आपत्ति मे जरूर फँसेगा। बंदर क्या जाने अदरख का स्वाद—मूर्ख गुणो की कदर नहीं करता। बाप न मारी मेढ़की, बेटा तीरदाज—व्यर्थ शेखी मारने वाले पर ताना। भइ गति साँप छछूँदर केरी—पशोपेश मे पड़ना। मरी बछिया बाम्हन के सिर—निकम्मी चीज देने वाले पर ताना।

रस्सी जल गई ऐंठन न गई—बुरी हालत होने पर भी घमंड नहीं गया। लातों के देव बातों से नहीं मानते—दुष्ट समझाने से दुष्टता नहीं छोड़ते, पिट जाने पर सीधे हो जाते हैं। लिखें ईसा, पढ़ें मूसा—जो अपना लिखा आप न पढ़ सके उस पर ताना। लोमड़ी को अंगूर खट्टे—कोई चीज न मिलने पर 'इच्छा नहीं थी' कह देनेवाले पर ताना। साँप मरे, न लाठी टूटे—किसी का नुकसान न हो और काम हो जाय। सो (वह) का जानै पीर पराई, जाके पैर न फटी बिवाई—जिसके ऊपर दुख नहीं पड़ा, वह दूसरे की तकलीफ नहीं समझ सकता। सावन सूखे न भादो हरे—सदा एक से। सीधी उँगली घी नहीं निकलता—कोरी सिधाई से काम नहीं चलता। हाथ कंगन को आरसी क्या—सच्ची बात के लिए सबूत नहीं चाहिए।

## सूक्तियाँ

लोकोक्तियों की तरह सूक्तियाँ भी जनसाधारण में प्रचलित रहती हैं और जत्र-तत्र इनका प्रयोग किया जाता है। सूक्तियों की विशेषता यह है कि ये सारपूर्ण और सत्य होने के साथ साथ काव्य के चमत्कार से भी युक्त होती हैं। नीचे गद्य-पद्य की कुछ सूक्तियाँ सकलित हैं—

१ बच्चों का हृदय कोमल थाला है, चाहे इसमें कँटीली झाड़ी लगा दो, चाहे फूलों के पौधे।

२. मनुष्य व्यर्थ महत्व की आकांक्षा में मरता है।

३. विश्व भर में यदि कुछ कर सकती है तो वह करुणा है जो प्राणी मात्र में सम दृष्टि रखती है।

४. शीतल वाणी, मधुर व्यवहार से वन्य पशु भी वश मे हो जाते हैं।

५. संसार भर में उपद्रवों का मूल व्यंग्य है। हृदय मे जितना वह घुसता है, उतनी कटार भी नहीं।

६. काम करने के पहले किसी ने भी आज तक विश्वस्त प्रमाण नहीं दिया कि वह कार्य के योग्य है।

७. आत्मबल या प्रतिभा किसी की प्रशसा के बल से विश्व मे नहीं खड़ी होती; अपना अवलब वह स्वयं है।

८. उपकार, करुणा, समवेदना और पवित्रता मानव हृदय के लिए ही बने हैं।

९. दूसरों के मलिन कर्मों को विचारने से भी चित्त पर मलिन छाया पड़ती है।

१०. जिस देश के युवक वीर हों उसका पतन असभव है।

११. स्नेहसे हृदय चिकना हो जाता है,परंतु विछलने का भी भय है।

१२. कोमल शय्या पर लेटे रहने की आशा में स्वतत्रता का भी विसर्जन करना पड़ता है।

१३. विजयों की सीमा है, परतु अभिलाषाओं की नहीं।

१४. मनुष्य साधारणधर्मा पशु है, विचार शील होने से मनुष्य होता है, और निस्वार्थ कर्म करने से वही देवता भी हो सकता है।

१५ वीर को विश्वास रहता है कि मेरा कुछ कार्य है,उसकी साधना के लिए प्रकृति "अदृष्ट" दैव या ईश्वर कुछ अवलब जुटा ही देगा।

१६. कामी, क्रोधी, लालची, इनते भक्ति न होय।
भक्ति करै कोई सूरमा, जाति बरन कुल खोय।

१७. दुख में सुमिरन सब करे सुख में करै न कोय।

१८. लघुता से प्रभुता मिलै, प्रभुता से प्रभु दूरि।

१९. प्रेम गली अति साकरी या में दो न समाहिं ।

२०. प्रेम छिपाया ना छिपे जा घट परघट होय ।

२१. ऊँचे कुल का जनमिया, करनी ऊँच न होय ।

२२. मूरख को समझावते ज्ञान गाँठ का जाय ।

२३ जग में बैरी कोइ नहिं जो मन सीतल होय ।

२४. जिन ढूँढा तिन पाइयाँ, गहरे पानी पैठि ।

२५ कथनी थोथी जगत मे, करनी उत्तम सार ।

२६. दुबिधा में दोऊ गये, माया मिली न राम ।

२७- जहाँ दया तहँ धर्म है, जहाँ लोभ तहँ पाप ।
जहाँ क्रोध तहँ काल है, जहाँ छिमा तहँ आप ।

२८. साँच बराबर तप नही, झूठ बराबर पाप ।

२९. माँगन मरन समान है मत कोई माँगो भीख ।

३० जो तोको काँटा बुवै ताहि बोउ तू फूल ।
तोहि फूल को फूल है, वाको है तिरसूल ।

३१ ऐसी बानी बोलिये मन का आपा खोय ।
औरन को सीतल करै, आपौ सीतल होय ।

३२. प्रीति करि काहु सुख न लह्यो ।

३३. जे न मित्र दुख होहिं दुखारी ।
तिन्हहिं बिलोकत पातक भारी ।

३४ शत्रु-मित्र सुख दुख जग माहीं ।

३५. भलो भलाइहि पै लहइ, लहै निचाइहि नीच ।

३६. तेही प्रमान चलिबो भलो जो सब दिन ठहराय ।

३७. दीन सबन को लखत है दीनहिं लखै न कोय ।

३८. कमला थिर न रहीम कहि, यह जानत सब कोय ।

३९. अति रहीम सुख होत है बढत देखि निज गेत ।

४० यह रहीम निज सग लै जनमत जगत न कोइ ।
बैर प्रीति अभ्यास जस होत होत ही होइ ।

४१. जो रहीम उत्तम प्रकृति का करि सकत कुसग ।

४२. जो बिषया सतनि तजी मूढ ताहि लिपटात ।

४३ बड़े पेट के भरन में, है रहीम दुख बाढि ।

४४ ससि सँकोच साहस सलिल मान सनेह रहीम ।
बढ़त बढत बढ़ि जात है, घटत घटत घटि सीम ।

४५ छोटेन सो सोहत बड़े कह रहीम यह लेख ।

४६. रहिमन नीचन सग बसि लगत कलक न काहि ।

४७. अति रहीम सुख होत है उपकारी के अंग ।

४८ रहिमन कठिन चिताहुते, चिता कहै जित चेत ।
चिता दहति निजीव कहँ चिंता जीव समेत ॥

४९. खैर खून खाँसी खुशी बैर प्रीति मदपान ।
रहिमन दाबे ना दबै जानत सकल जहान ।

५०. गुनी गुनी सब कोउ कहत, निगुनी गुनी न होय ।

५१. सगति सुमति न पावहीं, परे कुमति के धध ।

५२ कनक कनक ते सौगुनी मादकता अधिकाय ।
वा खाए बौराई नर या पाए बौराय ॥

५३. बुरो बुराई जो तजै तौ चित खरो सकात ।

५४. बड़े न हूजे गुनतु बिनु बिरद बड़ाई पाइ ।

५५. तत्री नाद कवित्त रस, सरस राग रति रग ।

अन बूड़े बड़े तरे जे बूड़े सब अंग।

५६. क्षुद्र अमरत्व मृत रूप है नरत्व का।

५७. होती घर बैठने से उन्नति नहीं कभी,
विश्व परिवार है उदार वृत्तिवालों का।

५८ तर्क-बुद्धि से ही सब काम किये जाते हैं।
किंतु भगवान में तो श्रद्धा-भक्ति ही भली।
नास्तिकों के हेतु लोष्ठमात्र जो है, उसमें
पाती भगवान को है भावुकों की भावना।

५९. प्रेमियों का प्रेम गीतातीत है।
हार में जिसमें परस्पर जीत है।

६०. खनि की महता मणि से ही सिद्ध होती है।

## वाक्य-रचना

वाक्यों के द्वारा मनुष्य अपने विचार प्रगट करता है। वाक्यों में शब्दों की सख्या निश्चित नहीं हैं। कभी-कभी तो एक शब्द से ही पूरे वाक्य का अर्थ होता है। उस दशा में अर्थ-द्योतक बाकी शब्द छिपे रहते हैं। बातचीत में हम लोग कहते हैं—'चलिए'। यह एक शब्द पूरे वाक्य की तरह अर्थ में पूर्ण होता है। अनुमान है कि मनुष्य ने जब पहले पहल बोलना सीखा तब वह वाक्यों मे ही बात करता होगा। छोटे-छोटे बच्चे भी पहले वाक्यों का ही प्रयोग करते हैं, यद्यपि उनके वाक्य में एक या दो से अधिक शब्द नहीं होते। बच्चा कहता है—'पानी'। यह एक शब्द ही पूरा अर्थ बताता है कि पानी लाओ या मैं पानी पिऊँगा।

वाक्यों की रचना करते समय सबसे पहिले इसी बात पर ध्यान रखना चाहिए कि हम उतने ही शब्दों का प्रयोग करें जितने हमारा भाव प्रकट करने के लिए आवश्यक हों। बातचीत मे आठ-दस शब्दों से बड़ा वाक्य प्रायः नहीं होता। यही बात लिखते समय भी ध्यान में रखनी चाहिए। यह ठीक है कि बातचीत में सोचने-विचारने या अपनी गल्ती सुधारने का कोई मौका नहीं रहता और लिखते समय हम इन बातों के लिए स्वतंत्र रहते है, तथापि प्रयत्न यही करना चाहिए कि जहाँ तक हो सके छोटे-छोटे वाक्य लिखे जायँ। इससे एक लाभ यह होता है कि वाक्यों मे अशुद्धियाँ कम होती हैं और भूल-चूक हो जाने पर छोटे वाक्यो में ये जल्दी ही पकड़ी भी जा सकती है।

कभी-कभी विद्यार्थी अपनी योग्यता दिखलाने के लिए बड़े वाक्य लिखते हैं। वास्तव मे, अध्यापक बड़े-छोटे वाक्यों से प्रसन्न-अप्रसन्न नहीं होते। प्रसन्नता-अप्रसन्नता का कारण लिखी हुई वस्तु की शुद्धता-अशुद्धता होती है। लेख यदि ऐसे छोटे-छोटे वाक्यों में लिखा जाय जो शुद्ध हों, परस्पर सगठित हों और पढनेवाले पर प्रभाव डालें तो वह सुदर और सफल समझा जायगा।

## सुंदर भाषा

शुद्ध और सुदर भाषा लिखना सरल काम नहीं है। इसके लिए बहुत अध्ययन, अभ्यास और सतर्कता की आवश्यकता होती है। अध्ययन और अभ्यास के लिए तो विद्यार्थी तैयार हो ही रहे हैं, सतर्क उन्हें उन बातो से रहना चाहिए जिनके रहने पर भाषा दोषपूर्ण समझी जाती है। साधारण रूप से भाषा के दोष इतने प्रकार के होते हैं—

१.—कृत्रिमता या आडंबर—बड़े-बड़े शब्दों और बड़े प्रयास से जुटाये गये वाक्याशों के कारण भाषा की सरलता और स्वाभाविकता जाती रहती है। 'सानुज मै घर से प्रस्थानित हुआ' के स्थान पर 'छोटे भाई के साथ मैं घर से चला' लिखना ज्यादा अच्छा है।

२.—लचरपन—जिस भाषा में 'और', 'तथा', जिस प्रकार, 'क्योंकि' आदि शब्दो का प्रयोग अधिक होता है वह ढीलीढाली समझी जाती है।

३.—विचारक्रमहीनता—विचारो का क्रम से प्रकट न किया जाना ; जो बात पहले कही गयी हो, उसका आगे के विचार से सीधा सबंध न होना। उदाहरण—मोहन प०ने मे बहुत तेज है। वह आजकल खूब खेलता है—यहाँ दूसरे वाक्य का पहले से कोई संबध न होने से विचारक्रमहीनता' का दोष आ गया है।

४—पुनरक्ति—एक शब्द, वाक्याश वाक्य या विचार को अकारण दोहराना। जैसे—महाराजाधिराज राम का, जो सबसे बड़े महाराज थे, भाइयो से प्रेम था। यहाँ 'महाराजाधिराज' के साथ 'जो सबसे बड़े महाराज थे' लिखना पुनरुक्ति दोष है।

५. अतिशयोक्ति—किसी बात को अनावश्यक रूप से बढ़ाकर कहना साधारण प्रसिद्धि प्राप्त करने वाले किसी कवि के लिए 'महाकवि' या 'कविसम्राट' जैसे शब्दों का प्रयोग करना अनुचित है।

६—पक्षदोष—एक बात कह कर उसका समर्थन न करके विरोधात्मक बात कहना। जैसे—मोहन अच्छा लेखक है, वह अपनी रचनाओं का संशोधन दूसरों से करा लेता है। यहाँ पहली बात का समर्थन दूसरी बात से न होकर विरोध दिखाया गया है।

७—ग्राम्य दोष—अनुचित और अशिष्ट प्रयोग करना। जैसे श्रीकृष्ण सदा 'छैला' बने घूमा करते थे। यहाँ 'छैला' शब्द श्रीकृष्ण जैसे महान व्यक्ति के लिए अनुपयुक्त है।

८.—अप्रयुक्तता—ऐसे शब्दों का प्रयोग करना जो प्रचलित न हों।

जैसे 'चौड़े-मोटे' आदमी। यहाँ 'लंबे-चौड़े' या 'मोटे-ताजे' लिखना ठीक होता।

६ अर्थदोष—शब्दों का ठीक अर्थ के अनुसार प्रयोग न करना।

१० व्याकरण-दोष—रचना मे व्याकरण की भूलें करना।

## वाक्य में शब्दों का स्थान

वाक्य में शब्दों का स्थान निश्चित रहता है। एक शब्द को उसके स्थान से इधर-उधर कर देने से अर्थ में बहुत अतर हो जाता है। नीचे लिखे वाक्यों में 'ही' 'तो' भी आदि के प्रयोग से अर्थ में होनेवाले अतर को ध्यान से देखिये।

१. मैं व्यायाम नहीं करता, नियम संयम से रहता हूँ।

२. मैं व्यायाम तो नहीं करता, नियम-सयम से रहता हूँ।

३. मै व्यायाम ही नहीं करता, नियम सयम से भी रहता हूँ।

४. मैं व्यायाम तो नहीं करता, नियम-संयम से रहता हूँ।

५. मै व्यायाम नहीं करता, नियम-सयम से तो रहता हूँ।

६. मै व्यायाम नहीं करता, नियम-सयम से रहता ही हूँ।

७ मै व्यायाम नहीं करता, तो नियम सयम से रहता हूँ।

ऊपर के सातों वाक्यों का अर्थ अन्वय करने पर भिन्न जान पड़ेगा। इसी तरह नीचे के वाक्यों में 'ही' के स्थान-परिवर्तन से अर्थ में आने वाला अतर देखिए—

१ मै आज इस गाडी से कलकत्ते जा रहा हूँ।

२. मै ही आज इस गाड़ी से कलकत्ते जा रहा हूँ ।

३. मैं आज ही इस गाड़ी से कलकत्ते जा रहा हूँ ।

४. मैं आज इसी ( ही ) गाड़ी से कलकत्ते जा रहा हूँ ।

५. मैं आज इस गाड़ी से ही कलकत्ते जा रहा हूँ ।

६. मैं आज इस गाड़ी से कलकत्ते ही जा रहा हूँ ।

७. मैं आज इस गाड़ी से कलकत्ते जा ही रहा हूँ ।

## वाक्य-रचना में ध्यान रखने की बातें

( १ ) हम अपने विचार वाक्यों में प्रकट करते हैं। वाक्य जितने स्पष्ट होंगे उतनी ही सरलता और शीघ्रता से पाठक हमारे विचार समझ सकेगा। इसलिए वाक्य रचना मे ध्यान रखने की सबसे आवश्यक बात यह है कि जो कुछ कहना हो स्पष्ट शब्दों में और सीधे-सादे ढग से कहें।

( २ ) एक वाक्य में एक ही बात कहनी चाहिए; इससे वाक्य में स्पष्टता आती है। एक बात दो-तीन वाक्यों में भी लिखी जा सकती है; परतु दो तीन बातें केवल एक वाक्य में रखना ठीक नहीं है।

( ३ ) एक वाक्य का दूसरे से, विषय की व्याख्या की दृष्टि से सबंध होना चाहिए। इसका आशय यह है कि पहले वाक्य में जो बात कही गयीहै, आगे के वाक्यों मे उसी की व्याख्या करके उसे स्पष्ट किया जाय।

( ४ ) वाक्य छोटे-बड़े, दोनो तरह के होते हैं और विषय के अनुसार दोनों सुंदर भी लगते हैं। इसलिए छोटे-छोटे वाक्यो को 'और', 'तथा' 'क्योंकि', 'इसलिए' जैसे शब्दों से मिलाकर बड़ा बनाना अच्छा नहीं समझा जाता।

( ५ ) हिंदी के वाक्यों में क्रिया शब्द प्रायः अंत में ही रहता है। एक परिच्छेद के कई वाक्यों को सुंदर बनाने के लिए प्रत्येक की क्रिया का रूप बदल देना चाहिए।

( ६ ) वाक्य मे विशेषण शब्दों का प्रयोग बड़ी सावधानी से करना चाहिए। इन वाक्यों में विशेषणों को अशुद्ध स्थान पर रखा गया है—(क) लेख में 'कुछ' व्याकरण की भूलें हैं। (ख) 'आधुनिक' मनोरंजन के साधन क्या हैं? (ग) 'पुरानी' हिंदी की कविता सुंदर है। ये वाक्य शुद्ध रूप में इस तरह लिखे जायेंगे—(क) लेख में व्याकरण की कुछ भूलें हैं। (ख) मनोरंजन के आधुनिक साधन क्या हैं? (ग) हिंदी की पुरानी कविता सुंदर है।

( ७ ) 'ही' 'केवल' जैसे शब्दों का प्रयोग सावधानी से करना चाहिए। इनका स्थान बदल देने से वाक्य के अर्थ में बड़ा अन्तर आ जाता है। जैसे—(क) 'केवल' मोहन कल कलकत्ते जा रहा है। मोहन कल 'केवल' कलकत्ते जा रहा है। (ख) मोहन 'ही' कल कलकत्ते जा रहा है। मोहन कल 'ही' कलकत्ते जा रहा है। मोहन कलकत्ते जा ही रहा है।

( ८ ) वाक्य मे विशेषण शब्द का प्रयोग प्रथम संज्ञा या सर्वनाम के अनुसार होना चाहिए द्वितीय य अन्तिम के अनुसार नहीं। जैसे—मोहन 'अपनी' बहन और भाई के साथ जा रहा है। उसने 'नयी' गाड़ी और घोडा खरीदा।

( ९ ) वाक्य की क्रिया अंतिम संज्ञा या सर्वनाम के अनुसार होनी चाहिए। जैसे—मैदान मे लड़के और लड़कियाँ 'खेल रही हैं'। मैंने कहानियाँ और नाटक 'पढ़े हैं'।

विशेष—ऐसे वाक्यों मे यदि 'सभी' या 'सभी कुछ' शब्द जोड़ लिया

जाय तो वाक्य पढ़ने में सुदर लगेगा जैसे--मैदान मे लड़के लड़कियाँ, सभी खेल रहे हैं। मैंने कहानियाँ और नाटक, सभी कुछ पढ़ा है।

( १० ) सयुक्त या मिश्रित वाक्यों के बीच मे यदि संज्ञा, विशेषण या क्रियाविशेषण उपवाक्य लिखे जायँ तो इनके आरभ होने के पहले वाले शब्द मे विभक्ति लगा देनी चाहिए। जैसे गुलाब के फूल 'को', जो बड़ा प्यारा होता है, सभी चाहते हैं।

( ११ ) बड़े वाक्य लिखते समय कभी-कभी एक अनावश्यक कर्त्ता-शब्द विद्यार्थी प्राय: लिख जाते है, इससे सावधान रहना चाहिए। जैसे—मोहन का भाई, जो बहुत दिनों से बीमार था और स्कूल भी नहीं आता था, 'वह' चला गया। यहाँ वह शब्द अनावश्यक है।

( १२ ) एक वाक्य के क्लिष्ट शब्दों का अर्थ स्पष्ट करने के लिए दो-एक वाक्य उसी प्रसग मे और भी लिख देने से विषय सरलता से समझ मे आ जाता है। उदाहरण देखिए—कविता के बिगड़ने और उसकी सीमा के परिमित हो जाने से साहित्य पर भारी आघात होता है। वह बरबाद हो जाता है। भाषा में दोष आ जाता है। जब कविता की प्रणाली बिगड़ जाती है तब उसका असर सारे ग्रथकारों पर पड़ता है। यही क्यों, सर्वसाधारण की बोलचाल तक मे कविता के दोष आ जाते हैं। जिन शब्दों, जिन भावों, जिन उक्तियों का प्रयोग कवि करते हैं उन्ही का और लोग भी करने लगते हैं।

( १३ ) कभी कभी एक बात सीधे ढग से नही, विरोधात्मक ढंग से कहने मे भली लगती है। जैसे किसी निर्धन से, 'तुम निर्धन हो तो क्या हुआ, कहने की अपेक्षा—'तुम धनी नहीं हो तो क्या हुआ' कहना ज्यादा अच्छा लगता है। इसी तरह किसी युवक से यह कहना कि

तुम बच्चे नहीं हो, अधिक प्रभावशाली है। इससे वाक्य का प्रभाव बढ जाता है।

( १४ ) एक क्रिया शब्द एक ही वाक्य के कई उपवाक्यों में दोहरा देने से भी उसका प्रभाव बढ जाता है। जैसे---धार्मिक झगड़े ने धन का नाश किया, जन का नाश किया, बल का नाश किया, इतना ही नहीं, प्रीति और सहानुभूति का भी नाश कर दिया।

( १५ ) वाक्य मे वर्णित वस्तुओं के क्रम पर अवश्य ध्यान रखना चाहिए। हनुमान जी की गति मन से तेज थी, पवन से तेज थी, तीर से तेज थी—यह वाक्य 'क्रमदोष' से युक्त है; क्योंकि मन की गति सबसे तेज होती है और उससे बढी हुई गति की तुलना पवन और तीर की गति से करना निरर्थक है। कहना चाहिए था—उसकी गति तीर से तेज थी, पवन से तेज थी मन से भी तेज थी। इसी तरह---कुसग में पड़कर उसने धन खोया, स्वास्थ्य खोया, चरित्र भी खोया--लिखना ठीक है।

( १६ ) वाक्य रचना मे छोटे-बड़े वाक्यों की स्वाभाविकता अवश्य रहनी चाहिए। किसी से बात करते या किसी विषय पर विचार करते समय न हम सदैव छोटे-छोटे वाक्यो का प्रयोग करते हैं और न बड़े-बड़े। आवश्यकतानुसार कभी हमारे वाक्य छोटे हो जाते हैं और कभी बड़े। यह ध्यान लिखते समय भी रखना उचित है।

( १७ ) कभी हम किसी बात को बढ़ा कर लिखना चाहते हैं और कभी सक्षेप मे। स्थान और समय, दोनो की कमी हमसे सक्षिप्त रचना कराती है और इनका अभाव न होने पर हम सविस्तार लिखने के लिए स्वतत्र रहते हैं। दोनो स्थितियों में सफल वही होता है जिसे दोनों प्रकार की रचनाओं पर अधिकार होता है। इसके लिए प्रारभिक अभ्यास इस प्रकार करना चाहिए —

साधारण वाक्य—भारत आज ससार का एक निर्धन देश है।

मिश्रित वाक्य---भारत की गणना आज ससार के उन देशों में है जो निर्धन समझे जाते हैं।

साधारण वाक्य—स्वस्थ युवक जीवन मे सुखी रहते हैं।

मिश्रित वाक्य - जो युवक स्वस्थ होते हैं, वे ही सुखी होते हैं, उन्हे ही जीवन का सुख भोगने का सौभाग्य प्राप्त होता है।

नीचे कुछ सुदर वाक्य नमूने के तौर पर दिये जाते हैं—

१. किसी किसी मे कविता लिखने की प्रतिभा स्वाभाविक होती है ईश्वरदत्त होती हैं। जो चीज ईश्वरदत्त हैं, वह अवश्य लाभदायक होगी, निरर्थक नही हो सकती। उससे समाज को अवश्य कुछ न कुछ लाभ पहुँचता है।

२. साहित्य का स्वरूप सदा परिवर्तित होता है। भिन्न-भिन्न कालों में भिन्न-भिन्न आदर्शों की सृष्टि होती है। मनुष्य-जीवन मे हम जो वैचित्र्य और जटिलता देखते हैं, वही साहित्य में पाते हैं।

३. जिस समाज में सदाचार पर श्रद्धा और अत्याचार पर क्रोध प्रकट करने के लिए जितने ही अधिक लोग तैयार पाये जायँगे उतना ही वह समाज जाग्रत समझा जायगा।

## विरामचिन्ह

अक्षरों की तरह विरामचिह्न भी एक प्रकार के सकेत हैं। इनसे पता लगता है कि लेखक किस बात पर जोर दे रहा है और कौन अंश साधारण है। बातचीत में हम किसी शब्द पर जोर देकर अपना जो काम निकाल लेते हैं, लिखते समय उसीके लिए विरामो का प्रयोग किया जाता है। 'राम चला गया'। 'राम चला गया'! राम चला गया ?—इन तीन वाक्यों मेयदि विराम न होने तो अर्थ में कोई अतर न आता; परंतु विरामों के प्रयोग से पता हो गया कि दूसरे वाक्य से कहनेवाले का आश्चर्य प्रकट होता है तो तीसरे से उसका प्रश्न।

विरामों के प्रयोग से एक लाभ और है। इनसे वाक्य का अर्थ समझने में बडी सहायता मिलती है। जिस रचना में विरामों का प्रयोग नहीं रहता, कभी कभी उसका आशय एक बार उसे पढ़ने पर समझ में

ही नहीं आता। श्याम मोहन भाई यहाँ हैं नहीं गये—इस वाक्य का अर्थ स्पष्ट नहीं होता। विरामों का प्रयोग करने पर इसके कई अर्थ हो जाते हैं। ( १ ) श्याम—मोहन ! भाई यहाँ है, नहीं गये। ( २ )श्याममोहन भाई यहाँ हैं, नहीं गये। ( ३ ) श्याम ! मोहन भाई यहाँ हैं, नही गये। ( ४ ) श्याम—मोहन भाई यहाँ हैं नही, गये। ( ५ ) श्याम मोहन—भाई यहाँ हैं नहीं। गये ?—इसी तरह और भी दो एक अर्थ निकल सकते हैं।

विरामों के प्रयोग से तीसरा लाभ यह है कि पढते समय रुकने के स्थल हमें विरामो के द्वारा ज्ञात होते हैं। गद्य में तो कम परंतु पद्य मे इन चिह्नो से बहुत सहायता मिलती है। यदि ठीक स्थल पर रुका न जाय तो कविता का अर्थ समझने में कभी-कभी बड़ी कठिनाई होती है।

हिन्दी मे प्रचलित विराम-चिन्ह ये हैं—

पूण विराम—( । ) वाक्य के अत में।

अल्प विराम—( , ) पाँच स्थानों मे लगता है—( क ) कई नामों के साथ, जैसे—राम, मोहन, श्याम और हरी। ( ख ) सबोधन के बाद; जैसे—मोहन, यहाँ आओ। ( ग ) 'तब' के स्थान पर। जैसे जब मै आया, ( तब ) वह जा चुका था। ( घ ) परतु, किंतु, क्योंकि, अन्यथा, तथापि आदि के पहले। ( ङ ) समान कारक के साथ। जैसे—राम, मोहन का भाई नहीं आया।

अर्द्ध विराम— ( ; ) स्वतंत्र उपवाक्यों के बीच मे, जैसे—हम अपने शरीर को किस तरह ठीक रक्खें, हम अपने मन को किस तरह वश में रक्खें, हम अपने कारोबार का किस तरह प्रबध करे; हम अपने बाल-बच्चों को किस तरह पालें ?

प्रश्नवाचक—( ? ) जहाँ प्रश्न हो। जैसा—कहाँ गए थे ?

निर्देशक या डैश—( — ) ( क ) किसी उपवाक्य को स्वतंत्र रखने के लिए। जैसे, मोहन—ईश्वर उसकी रक्षा करे—बड़ा बीमार

है। (ख) कही हुई बात को स्पष्ट करने के लिए। जैसे, वे दोनों—आशय राम और मोहन से है—कहाँ है? (ग) वार्तालाप-विषयक लेखों में वक्ता के नाम के आगे। जैसे, बनवीर—तुम उत्तर नहीं देते विक्रम! (घ) यदि बोलने में ठिठकना पड़े तब। जैसे—हमें चिंता है कि तुम इस वर्ष—पास—नहीं होगे।

योजक—( - ) इसका प्रयोग सामासिक शब्दो के साथ जैसे—इष्ट-मित्र और एक पंक्ति में न आनेवाले शब्द के साथ होता है।

कोष्टक—( ) [ ] किसी शब्द को समझने के लिए। जैसे, उसके ददुआ ( ससुरजी ) वर खोज रहे थे।

उद्धरण चिन्ह ( ' ' और " " ) कभी-कभी कही हुई बात इनके अंदर रहती है। जैसे, राम ने कहा—"यहाँ आओ।"

विस्मयादिबोधक— ( ! ) (क) जहाँ हर्ष, शोक, विस्मय आदि का वर्णन हो। जैसे-आहा! आप आ गए। (ख) संबोधन के बाद जैसे—राम! यहाँ आओ।

त्रुटिपूरक या काक पद—( ∧ ) जब कोई शब्द या शब्दांश लिखने से छूट जाय जैसे—हम और मोहन ∧ (अभी) कलकत्ते गये थे।

संक्षेपता-सूचक—( ० और ) तारीख (ता०) मिस्टर ( मि० )।

शुद्धि-चिन्ह ( ✓ ) शुद्ध या ठीक होने पर लगता है।

अशुद्धि-चिन्ह—( X ) अशुद्ध या गलत होने पर लगता है।

अपूर्तिबोधक-चिन्ह—( X X X और .. ) (क) किसी वर्णन का कुछ अंश लिखने से संपूर्ण का बोध हो गया, पर कुछ अंश लिखना शेष रह गया हो। जैसे पुस्तक के लेखक एक कालेज के प्रोफेसर हैं X X X। (ख) उस समय जब किसी का नाम न देना हो। जैसे—श्रीमान् X X X जी ...हाई स्कूल के सुयोग्य अध्यापक हैं। (ग) असंबधित परिच्छेदों की स्पष्टता के लिए। यह कहानी में अधिक आता है।

———०———

# अपठित

पठित अंश में तो अधिक अंक रट-रटाकर भी प्राप्त किये जा सकते हैं, परन्तु अपठित भाग में, अधिक अंक प्राप्त करने के लिए विद्यार्थी में वास्तविक योग्यता होनी चाहिए। सच्चा ज्ञान स्वाध्याय से होता है। स्वाध्याय का अर्थ है आप अध्ययन करना। जब मन में विद्या के प्रति प्रेम उत्पन्न हो जाता है, अपना ज्ञान बढ़ाने की चाहा हम में आ जाती है, तब समझना चाहिए कि हम सच्चे अर्थ में विद्यार्थी हैं और विद्या-देवी सरस्वती की हम पर असीम कृपा है। स्वाध्याय से योग्यता बढ़ती है। प्रश्नपत्र में अपठित भाग देने का उद्देश्य विद्यार्थी की योग्यता की परीक्षा करना ही है। अतः यह आवश्यक है कि इसके प्रश्नों के उत्तर विशेष सावधानी से दिये जायँ। उत्तर लिखते समय नीचे लिखी बातों का ध्यान रखना चाहिए—

परिच्छेद का अध्ययन—परिच्छेद को दो बार ध्यान से पढ़िए और तब प्रश्नों पर विचार कीजिए। प्रायः अपठित भाग जिस मुख्य विषय से संबंध रखता है, प्रश्न भी उसी की ओर संकेत करते हैं। इसीलिए प्रश्नों का उत्तर समझते हुए एक बार फिर परिच्छेद पढ़िए।

उत्तर की रूपरेखा—प्रश्नों के उत्तर लिखने के पहिले परिच्छेद में ही उतना अंश कोष्टक ( ब्राइकेट ) में कर लीजिए जितना उनके उत्तरों से सम्बन्धित है। शेष भाग यह देखने के लिए कि इसका संबंध किसी प्रश्न से है तो नहीं, एकबार पुनः ध्यान से देख जाइए।

साधारण प्रश्नों के उत्तर—पहले साधारण प्रश्नों के उत्तर दीजिए। उत्तर अपनी भाषा में, लेखक का आशय समझकर, लिखना चाहिए। परिच्छेद का कुछ अंश नकल कर देने से काम नहीं चलेगा। संक्षेप में विषय की व्याख्या करते हुए उत्तर लिखिए। प्रत्येक प्रश्न का उत्तर एक सुन्दर और पूर्ण परिच्छेद में होना चाहिए।

व्याख्या—साधारण प्रश्नों के उत्तर देने के पश्चात व्याख्या लिखिए। यह अंश बहुत समझ-बूझकर लिखना चाहिए, क्योंकि यहाँ सिर्फ 'अकली गद्दा' लगाने से, जैसा विद्यार्थी साधारण प्रश्नो के उत्तर लिखते समय प्रायः किया करते हैं, काम नहीं चलेगा। साधारणतः विद्यार्थी 'व्याख्या' का अर्थ नहीं समझते। वे दिये हुए परिच्छेद का केवल पदानुवाद करके अर्थात् चुने हुए शब्दों के अर्थ लिख देने को ही व्याख्या समझते हैं। वास्तव मे व्याख्या का अर्थ है खूब समझाकर लिखना। नीचे के उदाहरण देखने से दोनों का अतर समझ में आ जायगा—

(१) कुसग का ज्वर बड़ा भयानक होता है।

पदानुवाद—कुसङ्ग से बड़ी हानि होती है।

व्याख्या—ज्वर से पीड़ित व्यक्ति सुखी नहीं रहता। ज्वर बढ़ जाने पर धन तो पानी की तरह बहाना ही पड़ता है, प्रायः रोगी अपने सवास्थ्य से भी हाथ धो बैठता है। इसी प्रकार-जो बुरे लोगों की सगत में पड जाते हैं उन्हे भयानक ज्वर से भी अधिक हानि उठानी पड़ती है।

(२) पतन के गर्त में शीघ्रता से गिरता जा रहा है।

पदानुवाद—वेग से अवनति कर रहा है।

व्याख्या—गर्त का अर्थ है नीचा गड्ढा। आलकारिक भाषा में अवनति करने को नीचे या गड्ढे में गिरना कहते हैं। अतः इसका अर्थ हुआ—बड़ी जल्दी अवनति करता जा रहा है।

व्याकरण सम्बन्धी प्रश्न—अन्त में व्याकरण के प्रश्नों के उत्तर लिखिए। साधारण प्रश्नों के उत्तर और व्याख्या परिच्छेद को भली-भाँति न समझने पर भी लिखने का प्रयत्न किया जा सकता है, परन्तु यदि व्याकरण न आती हो तो अशुद्ध शब्दान्वय या वाक्य-विग्रह करने से उस प्रश्न को छोड़ देना ही अच्छा है।

मुहावरों का प्रयोग—मुहावरो-कहावतों का प्रयोग भी अपठित

भाग का ही एक अंश है। इनका प्रयोग इस प्रकार करना चाहिए कि अर्थ स्पष्ट हो जाय। यह आवश्यक नहीं है कि एक ही वाक्य में एक मुहावरे या कहावतों का प्रयोग किया जाय। उदाहरण के लिए 'ऊँची दूकान फीका पकवान' का प्रयोग देखिए—बड़े ठाट-बाट से रहनेवाले मित्र को धनी समझ कर मोहन ने एक दिन उससे १००) माँगे। क्षण भर चिंतित रह कर मित्र महोदय ने उत्तर दिया—भाई, मेरे पास कुछ नहीं है। मोहन यह सुन कर इस प्रकार उसकी ओर देखने लगा मानों सोच रहा हो—'ऊँची दूकान फीका पकवान' वाली कहावत क्या सत्य है।

नीचे अभ्यास के लिए परिच्छेद दिये जा रहे हैं। प्रथम परिच्छेद के प्रश्नों के उत्तर नमूने के लिए लिख दिये गये हैं। इन्हें समझ कर आगे के अभ्यास विद्यार्थियों को करना चाहिए।

## नमूने का अभ्यास

कैकेयी की माता अपने पति की हत्या करने के लिए प्रस्तुत हुई थी और माता ही से कैकेयी के चरित्र में क्रूरता आयी थी। सुमंत्र ने राज-सभा में प्रकाश रूप से इस घटना का उल्लेख किया था। रामचन्द्र के बनवास के लिए लोग मंथरा ही को सर्वदा अपराधी ठहराते हैं, किंतु अनिष्ट का बीज कैकेयी के चरित्र में पहले ही से बोया हुआ था और मन्थरा उस बीज को अंकुरित करने के लिए उपलक्ष-मात्र थी

१. इस परिच्छेद का सार अपनी भाषा में लिखिए।

२. कैकेयी के चरित्र के सम्बन्ध में आपका क्या विचार है?

३. मोटे टाइप में छपे भाग की व्याख्या कीजिए।

४. अंतिम वाक्य का विग्रह कीजिए।

१. महाराज दशरथ ने कैकेयी के कहने से रामचन्द्र को चौदह वर्ष के लिए वन भेज दिया। समाज में इस कर्म की बड़ी निंदा हुई। कुछ लोगों ने इस अपराध का दोष मंथरा के माथे मढ़ा; क्योंकि उसी के कहने से कैकेयी ने पति से यह क्रूर कर्म कराया था। इस वर्ग के लोग

कैकेयी के स्वभाव में कोई दोष नहीं मानते और जो कुछ बुराई उसमें आयी, उसे 'कुमति' मथरा की कुसगति का फल समझते हैं। दूसरा वर्ग कैकेयी की क्रूरता जन्मजात समझता है; क्योकि जैसा क्रूर कर्म उसने किया उससे भी भयंकर उसकी माता कर चुकी थी, कैकेयी ने पुत्र को वन ही भेजा, पर उसकी माता तो पति की हत्या तक करने को प्रस्तुत थी। क्रूरता की यह सीमा है।

२. कैकेयी रूप पर गर्व करनेवाली दुर्बल चरित्र की नारी थी। स्वभाव उसका अच्छा था, सपत्नियो से उसका हेल-मेल था, उनके पुत्रों को वह प्यार करती थी। वह साहसी और वीर क्षत्राणी थी, पति के साथ युद्ध मे जाना इसका प्रमाण है। राम-से नम्र और शिष्ट बालक ने उसके हृदय मे घर कर लिया, यह उसकी सरलता है। परन्तु चरित्रकी दुर्बलता के कारण मंथरा के बहकाने में वह आ जाती है। गर्व, हठ और मान उसे पतन के गढ़े मे ढकेल देते हैं और आज तक समाज में उसका नाम तिरस्कार के साथ लिया जाता है।

३. अनिष्ट का बीज—जिस चीज का बीज होगा, वही चीज उससे पैदा होगी। यहाँ जिस बीज की चर्चा है, वह 'अनिष्ट' का है। 'अनिष्ट' का अर्थ है अकल्याण या अमगल। अर्थ यह है कि कैकेयी के चरित्र मे दोष था जिसके परिणामस्वरूप सारे परिवार का अनिष्ट हुआ; सभी को दुख उठाना पड़ा।

मथरा·········मात्र थी—बीज की उत्पत्ति के लिए भूमि तैयार करने वाला होना चाहिए। इस व्यक्ति को उपलक्ष कहेंगे। यदि यह व्यक्ति न हो, तब भी बीज उगेगा अवश्य। कैकेयी के चरित्र में अनिष्ट का जो बीज था, वह किसी दिन अंकुरित तो होता ही। इसलिए उसके कार्य का दोष मथरा के माथे मढ़ना अनुचित है।

४. (क) रामचन्द्र में··· ठहराते हैं—प्रधान उपवाक्य।

(ख) किंतु अनिष्ट का······हुआ था—प्रथम उपवाक्य का समानाधिकरण।

( ग ) और मंथरा……मात्र थी—द्वितीय का समानाधिकरण।

अतः वाक्य संयुक्त है।

१. वेदों में इस बात के यथेष्ट प्रमाण हैं कि वैदिक युग में भारतवासी आर्य व्यापार-वाणिज्य आदि के लिए समुद्र-यात्रा करते थे। भारतवासियों ने जहाज बनाने का काम विदेशियों से नहीं सीखा। जिस समय अन्य देशों के रहनेवाले असभ्य और वर्बर* थे, उस समय भारतवासी सभ्यता के ऊँचे शिखर पर पहुँच* गये थे। उन्होंने उसी समय ससार की सारी जातियों के सम्मुख अपना श्रेष्ठत्व सिद्ध कर दिया था। तरह-तरह की व्यापारोपयोगी चीजे नौकाओ और* जहाजों द्वारा अपने देश के भिन्न-भिन्न स्थानों को वे पहुँचाते थे। साथ ही द्रव्योपार्जन के निमित्त वे समुद्र-यात्रा करके विदेशों में भी पहुँचते थे।

क—समुद्रयात्रा से क्या लाभ होते हैं ?

ख—भारत का क्या महत्व यहाँ दिखाया गया है ?

ग—पुष्पाङ्कित शब्दों का पद-परिचय दीजिए।

घ— मोटे टाइप में छपे भाग की व्याख्या कीजिए।

२ सीता* ने रावण से क्रोध करके कहा—**मैं सूर्य कुल-धुरीण-वीरशिरोमणि मर्यादा-पुरुषोत्तम महाराज रामचन्द्र** की धर्मपत्नी तथा निमिकुल-तिलक महाराज जनक की कन्या होकर तेरे इन नीच और घृणित विचारों* को कैसे स्वीकार कर सकती हूँ ? पद्मिनी सूर्य ही के प्रकाश मे विकसित होती है। मै* अपने तपोबल* से तुझे भस्म कर अपना उद्धार स्वयम् कर सकती हूँ, पर अपने पति की इच्छा की प्रतिकूलता का परिहार करती हुई दृढ आशा पर स्थित हूँ कि वे निःसदेह सामात्य, भृत्य, सपरिवार और सबल-वाहन तेरा नाश कर मेरा उद्धार करेंगे।

क—सीता का चरित्र यहाँ कैसा दिखाया गया है ?

ख—मोटे टाइप में छपे भाग की व्याख्या कीजिए।

ग—पुष्पाङ्कित शब्दो का पद-परिचय दीजिए।

३. श्रीकामाख्यातीर्थ और आसाम देश के दुर्गम उत्तुङ्ग भूधर-शृंग गहन वन आदि चित्त-चमत्कारी मनोहारी अद्भुत अलौकिक अकथनीय प्राकृतिक शोभामय विधाता की कौशल-पूर्ण लीलाभूमि को निहार, चकित चित्त उन स्थानों में ऐसा लुब्ध हो गया था कि वहाँ से उतर आने पर भी हृदय-तट पर खिचित चमत्कारी चित्र आठो पहर **मेरे नयनों के आगे झूला ही करता और मन-पखेरू वैसी अटवी में विचरने को उत्कण्ठित रहा करता।**

क—इस परिच्छेद का सार सरल हिन्दी मे लिखिए।

ख—मोटे टाइप में छपे भाग की व्याख्या कीजिए।

ग—प्राकृतिक शोभा का मनुष्य के मन पर क्या प्रभाव पड़ता है?

४. जिस आदि कवि की पीयूष-वर्षिणी लेखनी से यह पवित्र रामकथा निकल कर भारतवर्ष के प्रत्येक मनुष्य के कर्णकुहर में जाकर अपूर्ववर्षा की झड़ी लगा देती है और प्रति दिन करोड़ों हिंदुओं को साधुता, सत्य-परायणता और पवित्रता का उपदेश करती हुई समस्त **संसार में धर्म की महिमा का विस्तार कर रही है, उन्हीं कवि-कुल शिरोमणि महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में महात्मा रामचन्द्र जी का प्रथम पदार्पण करना मन मे एक अद्भुत प्रकार का भाव उत्पन्न कर देता है।**

क—इस परिच्छेद का भाव सरल भाषा में लिखिए।

ख—आदि कवि ने समाज का क्या उपकार किया?

ग—मोटे टाइप में छपे भाग की व्याख्या कीजिए।

५. लक्ष्मी की प्रकृति* की विवेचना करके देखो, चाहे कितने ही कष्ट से इसको प्राप्त करो और कितने ही यत्न करो पर वह एक स्थान पर नहीं रह सकती। रूप-गुण, पाण्डित्य-कुल-शील किसी का विचार नहीं करती। रूपवान्, गुणवान्, विद्वान, और सुशील का परित्याग करके अधमाधम पुरुष के गृह में वास करती है। जिसके घर मे चञ्चला* जाती है वह स्वार्थ और लोभ के वश होकर दुष्कर्म को सुकर्म,

पशुधर्म को रसिकता, इष्टाचार को प्रभुत्व और मृगया को व्यायाम समझता है। यदि मिथ्या स्तुति न करें तो कोई धनी निकट सहवास के योग्य नहीं होता।

क—इस अवतरण का सार सरल हिंदी में लिखिए। ख—लक्ष्मी को चचला क्यो कहते हैं? ग—पुष्पाकित शब्दों का पद-परिचय दीजिए। घ—मोटे टाइप मे छपे भाग की व्याख्या कीजिए।

६—कार्य-कारण का बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। इस सूत्र के अनुसार देश या जाति का एक एक व्यक्ति सम्पूर्ण देश या जाति की सभ्यतारूप कार्य का कारण है, अर्थात जिस देश या जाति मे एक एक मनुष्य अलग अलग अपने चरित्र के सुधार मे लगे रहते हैं, वह समग्र देश का देश उन्नति की अन्तिम सीमा तक पहुँचकर सभ्यता का एक अच्छा नमूना बन जाता है। नीचे से नीचे कुल मे पैदा हुआ हो; बहुत पढ़ा-लिखा भी न हो, बड़ा सुभीतेवाला भी न हो, न किसी तरह की कोई असाधारण बात उसमें हो, किन्तु चरित्र की कसौटी मे यदि वह अच्छी तरह कस लिया गया हो तो उस आदरणीय मनुष्य का आदर समाज में कौन ऐसा होगा जो न करेगा?

क—कार्य कारण का सम्बन्ध उदाहरण देकर समझाइए।

ख—देश या जाति की उन्नति किस तरह होती है?

ग—समाज में मनुष्य का आदर कब होता है?

७ इस ससार में कुछ लोग आदर्श के नगर मे रहते हैं। वे किसी सुन्दर सरल विचार मे लौलीन होकर सुनहले स्वप्न देखने लगते है। उन्हे प्रतीत होता है कि बादलो से अमृत की वर्षा हो रही है और उसी से वे अपने मन के क्षेत्र को निर्भयता, पराक्रम और धैर्य के साथ सोचते हैं। ससार के लोग उनकी तरफ आकर्षित हो जाते हैं और वे स्वर्ग वास के पहले सहस्रों नर-नारियो की आत्माओ को पवित्र और उत्कृष्ट बना देते है।

क—मोटे टाइप मे छपे भाग की व्याख्या कीजिए।

ख—आदर्श के नगर में रहने का क्या आशय है ?

ग—ससार, धैर्य, स्वर्ग, नगर, इनके विशेषण-रूप लिखिए।

घ—तीसरे वाक्य का विग्रह कीजिए।

८—सब जातियों का स्वाभाविक* आदर्श एक नहीं है। इसलिए क्षोभ होना, पछताना बेकार और बेमतलब है। भारतवर्ष ने मनुष्य का उल्लघन करके कर्म को बड़ा नहीं बनाया। फलकामना रहित कर्म की महिमा बखान कर उसने वास्तव में कर्म को सयत ही कर दिया है। **फल की कामना उड़ा देना मानो कर्मरूपी नाग के जहरीले दाँत उखाड़ डालना है।** इस उपाय से मनुष्य कर्म के ऊपर भी अपने को सजग, सचेत करने का अवकाश पाता है, अर्थात् कर्म* के नशे में अपनी स्थिति को भूल नहीं जाता, सोच समझ कर चलता है। इसी से कहते हैं कि हमारे देश का चरम लक्ष्य 'होना' ही है; 'करना' तो केवल उपलक्ष्य-मात्र है।

क—इस परिच्छेद का सार लिखिए।

ख—कर्म करने का क्या उद्देश्य और आदर्श होना चाहिए।

ग—मोटे टाइप में छपे भाग की व्याख्या कीजिए।

घ—पुष्पांकित शब्दों का पदपरिचय दीजिए।

९.—सकल लोक को तुल्य निवास देनेवाली; बादशाह या योगी, धनी या दरिद्र, दुखी या सुखी, स्वच्छद या पराधीन सभी को अपने रूप को विस्मृत करानेवाली; प्रलय का द्वितीय दृश्य-सा दिखानेवाली उस सर्वसाक्षी, सर्वचेता, **केवल निर्गुण-स्वरूप आत्मा के वैभव को प्रकट करनेवाली,** चिंतापूरित मनुष्य से दूर भागनेवाली, महापतियो से क्रीड़ी करनेवाली, कृषकों तथा मजदूरों को गले से लिपटा लेने वाली, व्याधि-पीड़ित मनुष्यों को दूर ही से खड़ी ललचाने वाली निद्रा का हम ब्राह्ममुहूर्त त्याग करते हैं।

क—इस परिच्छेद का सार सरल वाक्यों में लिखिए।

ख—मोटे टाइप में छपे भाग की व्याख्या कीजिए।

ग—धनी और निर्धन, चिंतित और शात व्यक्ति पर नींद का क्या प्रभाव पड़ता है ?

घ—लोक, आत्मा, पीडा, निद्रा इनके विशेषणरूप लिखिए।

१०. मनुष्य सृष्टि के आरम्भ से ही जिज्ञासु रहा है। प्रकृति ने उसे विवेक और बुद्धि दी है। वह इनका उपयोग किये बिना कैसे रह सकता था ? उत्पन्न होते ही उसने देखा कि वह अकेला नहीं है। स्थल, जल, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्र तथा नक्षत्र आदि अनेक पदार्थ उसे परिवृत्त किये हुए हैं। बस, उसमें जिज्ञासा-वृत्ति उत्पन्न हो गयी। उसने इनके तथा अपने विषय में सोचना आरम्भ किया। यहीं से उन्नति का श्रीगणेश हुआ। **समाज-संगठन हो जाने पर मनुष्य के व्यक्तिगत अधिकारों को भारी धक्का लगा।**

क—मनुष्य ने किस प्रकार उन्नति करना आरभ किया ?

ख—उन्नति, समाज, मनुष्य, बुद्धि—इसके विशेषण रूप लिखिए।

ग—मोटे टाइप में छपे भाग की व्याख्या कीजिए।

११ नवाभ्यासी कवियों को सद्यः **कविता के चक्कर मे पड़कर पथभ्रष्ट न होना चाहिए।** पहिले कविता-सम्बन्धी ग्रन्थों का अभ्यास करे, प्राचीन उत्तम काव्यों का निरतर अनुशीलन करें, किसी सत्कवि से परामर्श लेते रहे, अपनी रचना को बार-बार समालोचक दृष्टि से देखते रहें, आवश्यकतासार काट-छाँट और परिवर्तन करते रहें। इस प्रकार सतत अभ्यास से जब कविता में **चमत्कार-चारुता और बध-सौष्ठव आ** जाय तब इस अखाड़े मे उतरे। **कवि-सम्मेलन कविता की** एक प्रदर्शिनी है जिसमें निकृष्ट और भद्दे माल को काई आँख उठाकर देखता भी नहीं।

क—मोटे टाइप में छपे वाक्याशों के भाव स्पष्ट कीजिए।

ख—'समालोचक दृष्टि' से आप क्या समझते है ? हिंदी के दो अच्छे समालोचकों के नाम लिखिए।

ग—कवि-सम्मेलन किसे कहते हैं? आज कल के कवि-सम्मेलन के संबंध मे अपने विचार लिखिए।

१२. भारतेन्दुजी के जीवन का उद्देश्य अपने देश की उन्नति के मार्ग को साफ-सुथरा और लम्बा-चौड़ा बनाया था। उन्होंने इसके **काँटो और कंकड़ों को दूर किया,** उसके दोनों ओर सुन्दर-सुन्दर क्यारियाँ बनाकर उनमें मनोरम फल-फूलो के वृक्ष लगाये। इस प्रकार उसे ऐसा सुरम्य बना दिया कि भारतवाली उस पर आनन्दपूर्वक चल कर अपनी उन्नति के इष्ट स्थान पर पहुँच सकें। यद्यपि भारतेन्दुजी अपने **लगाये हुए वृक्षों को फल-फूलों से लदा न देख सके,** फिर भी हमको यह कहने में किसी प्रकार का संकोच नहीं होता कि वे अपने जीवन के उद्देश्य में पूर्णतया सफल हुए। हिन्दी-भाषा और साहित्य की जो उन्नति आज देख पड़ रही है उसके मूल कारण भारतेन्दुजी हैं और **उन्हे ही इस उन्नति के बीज को आरोपित करने का श्रेय प्राप्त है।**

क—भारतेन्दुजी के जीवन का क्या उद्देश्य था? इस उद्देश्य में वे किस प्रकार सफल हुए?

ख—मोटे टाइप में छपे वाक्यांशों के भाव स्पष्ट कीजिए।

ग—अतिम वाक्य का विश्लेषण कीजिए।

१३. नालंदा का महाविहार एक आदर्श विद्यालय था। भारतीय शिक्षा के सभी उच्च आदर्श उसमें वर्तमान थे। कोलाहल पूर्ण समार से दूर निर्मल जलाशयों और सुविस्तृत आम्र-काननों से सुशोभित, शीत एवं सात्विक तपोवन में, इसकी स्थापना हुई थी। **तपोवन और तपोमय जीवन**—यही इसकी महत्ता का रहस्य था। आगरे के जगत्प्रसिद्ध ताजमहल पर कवियों ने अनूठी उक्तियाँ कही है, पर नालदा के भग्न—किन्तु दिव्य—विहारों और सघारामों पर उनका हृदय नही पसीजा! **नालदा तपस्वी महात्माओ के यशःसौरभ से सुरभित है।** इसमें **हृत्तंत्री को झंकृत करने की पर्याप्त सामग्री है।** तीर्थ-भूमि का **प्रत्येक रेणु-कण भारतीय सभ्यता एव संस्कृति का दर्पण है।**

क—नालंदा महाविहार की महत्ता का क्या रहस्य था ? इसके खंडहरो का दर्शक के हृदय पर कैसा प्रभाव पड़ता है ?

ख—लेखक की कवियो से क्या शिकायत है ?

ग—मोटे टाइप मे छपे वाक्याशों के भाव स्पष्ट कीजिए।

१४. ससार में भिन्न-भिन्न जातियों का सदैव उत्थान-पतन होता रहता है। परन्तु कुछ समय के बाद एक दूसरी ही जाति पहिली का स्थान ले लेती है। प्राचीन काल में जातियाँ उन्नति की **चरम सीमा तक पहुँच गयी थी, उनका गौरव अब अतीत काल की कथा मात्र है।** काल के अनन्त स्रोत मे उनकी **जीवनधारा** लुप्त हो गयी है, परन्तु काल के वक्षस्थल पर वे अपना अक्षयचिह्न छोड़ गयी है। संसार से उनका अस्तित्व उठ गया ; परन्तु ससार की गति को उन्होंने जिस ओर परिवर्तित कर दिया, उसी ओर उसको अग्रसर होना पड़ा। जिन मार्गों पर चलकर मानव-जाति वर्तमान अवस्था को प्राप्त हुई, वे मार्ग उन्हीं के द्वारा निर्दिष्ट किये गये थे। ससार के **ज्ञानागार** मे उनकी भी सम्पत्ति रक्खी हुई है। **आधुनिक सभ्यता का भवन उन्हीं की निर्मित भित्ति पर स्थापित है।**

क—मोटे टाइप में छपे भाग का अर्थ सरल भाषा मे लिखिए।

ख—आधुनिक सभ्यता के निर्माण मे प्राचीन विनष्ट जातियों का क्या हाथ है ? कुछ ऐसी जातियो के नाम बताइए।

ग—इस परिच्छेद का भाव अपने शब्दो मे लिखिए।

१५. रामचरितमानस मे रावण का जितना चरित हमारी दृष्टि में पड़ता है उसमे आदि से अन्त तक उसकी एक विशेषता हमे दृष्टिगत होती है। वह है **घोर भौतिकता** कदाचित आत्मा की उपेक्षा **करते हुए भौतिक शक्ति का अर्जन** गोसाईं जी राक्षसत्व का अभिप्राय समझते थे। उसका अपार बल, **विश्वविश्रुत वैभव,** उसकी **धनहीन शासनप्रणाली** जिसमे ऋषि मुनियों से कर वसूल किया जाता था, उसके राज्य भर मे **अभिरुचि का अभाव,** ये सब उसके भौतिकवाद

के द्योतक हैं। प्रश्न उठ सकता है कि वह बड़ा तपस्वी भी तो था ? किंतु उसके तप से उसकी भौतिकता का ही परिचय मिलता है। वह तप उसने अपनी आध्यात्मिक उन्नति या मुक्ति के उद्देश्य से नहीं किया था वरन् इस कामना से कि भौतिक सुख को भोगने के लिए वह इस शरीर से अमर हो जाय।

क—गोस्वामी जी का राक्षसत्व से क्या अभिप्राय है ?

ख—तपस्वी होते हुए भी रावण राक्षस क्यों कहा गया है ?

ग—मोटे टाइप में छपे भाग की व्याख्या कीजिए ?

घ—अंतिम वाक्य का विग्रह कीजिए।

१६ प्रेमचन्द का यथासमय भारतीय साहित्य में वही सम्मान होगा जो डिकेंस और टालसटाय को योरपीय साहित्य में प्राप्य है। भारत का हृदय कलकत्ते की गलियों में नहीं है, न वह शिक्षित बंगालियों की अट्टालिकाओं में है, उसका हृदय दिहात में है, किसानों के टूटे-फूटे झोपड़ों में है। हरे-भरे खेतों को देखकर उसे शान्ति मिलती है; अनावृष्टि से वह सूख जाता है। उस हृदय का मार्मिक चित्र जिसने खींचा है वह देश भर के धन्यवाद का पात्र है। अभी भारतीय किसानों में शिक्षा का अभाव है। अभी तक उन्हें मालूम नहीं है कि उन्हीं के समान किस सरल प्रकृति तथा अस्वस्थ व्यक्ति ने शारीरिक और मानसिक वेदनाएं झेलते हुए उनके दुःखों और आशाओं की कथा कही है। जब वे शिक्षित हो जायेंगे, जब उनकी आँखें खुलेंगी, और अपने पूर्वजों का जीता जागता चित्र जब वे प्रेमचद के उपन्यासों में देखेंगे तब इनके विधाता की पूजा होगी। हाँ, अभी कुछ समय तक नहीं।

क—रेखांकित अंशों का अर्थ सरल हिंदी में लिखिए। प्रेमचंद का क्या महत्त्व यहाँ दिखाया गया है ? ग—अंतिम वाक्य का विग्रह कीजिए। घ—प्रेमचद के ४ उपन्यासों के नाम लिखिए।

१७ अपने उत्तरदायित्व का ज्ञान बहुधा हमारे संकुचित व्यवहारों

का सुधारक होता है। जब हम राह भूल कर भटकने लगते हैं तब यही ज्ञान हमारा विश्वसनीय पथप्रदर्शक बन जाता है। पत्र सम्पादक अपनी शान्ति-कुटी* में बैठा हुआ धृष्ठता और स्वतंत्रता के साथ अपनी प्रबल लेखनी से मन्त्रि-मण्डल पर आक्रमण करता है। परन्तु ऐसे अवसर भी आते हैं, जब* वह स्वयम्-मण्डल में सम्मिलित होता है। मण्डल के भवन में पग धरते ही उसकी लेखनी कितनी मर्मज्ञ, कितनी विचार-**शील, कितनी न्यायपरायण हो जाती है**। इसका कारण उत्तरदायित्व का ज्ञान है। नवयुवक युवावस्था में कितना* उद्दंड रहता है! माता-पिता उसकी ओर से कितने चिन्तित रहते हैं! वे उसे कुलकलंक समझने* हैं। परन्तु थोड़े ही समय में परिवार का बोझ सिर पर पड़ते ही वही **अव्यवस्थितचित्त उन्मत्त युवक कितना धैर्यशील, कैसा शान्तचित्त हो जाता है!** यह भी उत्तरदायित्व के ज्ञान का फल है।

क—मोटे टाइप मे छपे अंशों का अर्थ सरल हिंदी में लिखिए।

ख—उत्तरदायित्व की भावना उत्पन्न हो जाने पर मनुष्य के स्वभाव में अन्तर क्यों हो जाता है?

ग—पुष्पांकित शब्दों का अन्वय कीजिए।

घ—इस परिच्छेद का उचित शीर्षक दीजिए।

१८. प्राय. लोगों का विचार है कि कल्पना कवि की ही संपत्ति है; चित्रकार का उससे विशेष प्रयोजन नहीं है। पर यह बात सत्य की सीमा से परे है। कवि और चित्रकार दोनों ही स्वर्गीय पक्षी की भाँति कल्पना के रग-बिरंगे पखों पर उड़कर अमर्त्य एव अपार्थिव सौन्दर्य की खोज में उन्मत्त हो जाते हैं। चित्रकार की कला की पराकाष्ठा अनुकरण करने मे नहीं है। यह तो वर्णनात्मक कविता की भाँति निकृष्ट कोटि की कला है। शिल्पकार का चातुर्य इसमे नहीं है कि वह वस्तु का प्रतिरूप बना दे। उसकी कला आदर्शरूप बनाने में है। चित्रकार और कवि के लिए भी यही बात है।

क—कवि और चित्रकार की रचना में क्या विशेषता होना चाहिए?

ख—वर्णनात्मक कविता किसको कहते हैं ? किसी वर्णनात्मक कविता की चार पंक्तियाँ लिखिए।

ग—मोटे टाइप में छपे वाक्यों का अर्थ लिखिए।

घ—प्रथम वाक्य का विग्रह कीजिए।

१९. यह बात स्पष्ट है कि **मानव समाज की उन्नति उस समाज के अंतर्भूत व्यक्तियों के सहयोग और साहचर्य से होती है,** पर इस सहयोग और साहचर्य का साफल्य तभी सभव है—**जब परस्पर भावों या विचारों के विनिमय का साधन उपस्थित हो।** भाषा ही इसके लिए मूल साधन है और इसी की सहायता से मानव-समाज की उन्नति हो सकती है। अतएव भाषा का समाज के साथ बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है; एक के बिना दूसरे का अस्तित्व ही सभव नहीं। पर यहीं उनके **सम्बन्ध के साफल्य की इतिश्री भी नहीं होती,** दोनों साथ ही साथ चलते हैं। समाज की उन्नति के साथ भाषा की उन्नति और भाषा की उन्नति के साथ समाज की उन्नति होती रहती है। इसलिए हम कह सकते हैं कि **उनका अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है।**

क—इस अवतरण का सारांश अपनी भाषा में लिखिए। ख—भाषा के अतिरिक्त विचार-विनिमय के क्या साधन हो सकते हैं ? ग—मोटे टाइप में छपे भाग का अर्थ सरल हिंदी में लिखिए। घ—प्रथम वाक्य का विश्लेषण कीजिए।

२०. तत्ववेत्ताओं ने आज तक जो बड़े-बड़े काम किये हैं उन्हें सिर्फ उनके **बुद्धि वैभव का फल न समझिए।** उनकी—**धार्मिक प्रवृत्ति इसमे अधिक कारणीभूत है।** यदि उनके मन में धार्मिक* उत्साह की मात्रा अधिक न होती तो उनके हाथ * से कभी ऐसे बड़े काम न होते। विद्या-वधू ने सिर्फ उनकी **कुशाग्रबुद्धि और तर्कना शक्ति पर मोहित होकर उनके कण्ठ में जयमाल नहीं डाली,** किंतु उनका धीरता, सत्यप्रीति, सहिष्णुता, एकनिष्ठा और आत्मनिग्रह पर मोहित होकर डाली* है।

क—धार्मिक उत्साह का समाज पर क्या प्रभाव पड़ता है? ख—मोटे टाइप में छपे भाग की व्याख्या कीजिए। ग—अंतिम वाक्य की उपमा स्पष्ट कीजिए। घ—पुष्पांकित शब्दों का पद-परिचय दीजिए।

२१. पाश्चात्य समाज का प्रत्येक व्यक्ति संसार को संग्राम भूमि और इतर मनुष्यों को अपना शत्रु समझता है। वह—**शारीरिक और मानसिक शक्तियों के विकास के लिए**—जी-तोड़ परिश्रम इसलिए करता है कि वह अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त करे। शान्ति उसे पसन्द नहीं—**प्रभुता ही उसके जीवन का ध्येय है।** हम बीसवीं शताब्दी के हिंदुओं ने भी संसार को संग्राम-क्षेत्र कहना सीख लिया है, कम से कम हम मुँह से ऐसा कहा ही करते हैं। हमारे पूर्वज इसके कट्टर विरोधी थे। **उन्होंने कर्त्तव्य के आपेक्षत्व के सिद्धान्त को भली भाँति समझ कर भारतीय समाज की रचना की थी।**

क—मोटे टाइप में छपे भाग का अर्थ सरल भाषा में लिखिए। ख—पाश्चात्य समाज के विषय में यहाँ क्या कहा गया है? ग—संसार, विकास, विजय, शांत, सुख, रचना—इन शब्दों के विशेषण रूप लिखिए। घ—भारतीय और पाश्चात्य विचारधारा में क्या अंतर है?

२२. यदि किसी को अपने देश से सचमुच प्रेम है, तो उसे अपने देश के मनुष्य, पशु, पक्षी, लता, पेड़, पत्ते बन, पर्वत, नदी, निर्झर आदि सब से प्रेम होगा, वह सब को चाहभरी दृष्टि से देखेगा,—**वह सबकी सुध करके विदेश में आँसू बहायेगा।** जो यह भी नहीं झाँकते कि किसानों के झोंपड़ों के भीतर क्या हो रहा है, वे यदि दस बने ठने मित्रों के बीच प्रत्येक भारतवासी की औसत आमदनी का परता बता कर देश-प्रेम का दावा करें तो उनसे पूछना चाहिए कि भाइयों! बिना **रूप-परिचय का यह प्रेम कैसा**—जिनके दुख सुख से तुम कभी साथी नहीं हुए उन्हें तुम सुखी देखा चाहते हो, यह कैसे समझें? उनसे दूर बैठे-बैठे, पड़े-पड़े तुम विलायती बोली में अर्थशास्त्र की दुहाई दिया करो पर प्रेम का नाम उसके साथ न घसीटो।—**प्रेम हिसाब-किताब की**

बात नहीं है। हिसाब-किताब करने वाले भाड़े पर भी मिल सकते हैं; पर प्रेम करने वाले नहीं।

क—देश-प्रेमी किसे कहते हैं? ख—आज के देश प्रेमी कैसे होते हैं? ग—मोटे टाइप में छपे भाग की व्याख्या कीजिए। घ—देशोन्नति के लिए कैसे प्रेमी चाहिएँ?

२३. जो अपने जीवन के साथ सुख और विलास को दोनों हाथों से **दृढ़ता पूर्वक पकड़े रहता है सुख उस घृणितदास के आगे ही अपना सारा भण्डार नहीं खोल देता; उसे केवल जूठन देकर द्वार पर डाल रखता है। किन्तु जो मृत्यु का बुलावा पाते ही चुटकी बजा कर चल देते हैं, और सदा आदर पाये हुए सुख की ओर** एक बार फिर कर भी नहीं देखते, सुख उन्हीं को चाहता है और सुख को भी वे ही जानते हैं। जो दृढ़ता के साथ त्यागकर सकते हैं वे ही निःशङ्क हो कर भोग भी कर सकते हैं। जो मरना नहीं जानते उनके भोग विलास की दीनता, दुर्बलता और घृणितपन को—घोड़े-गाड़ी, तमगा, चपरासा से-नहीं ढका जा सकता। त्याग की विलासशून्य कठोरता में पुरुषार्थ है। यदि इच्छापूर्वक उस त्याग को हम स्वीकार करें तो निःसन्देह हम अपनी लज्जा को बचा सकते हैं।

क—इस गद्य का अर्थ सरल भाषा में लिखिए। ख—मोटे टाइप में छपे भाग की व्याख्या कीजिए। ग—सच्चा सुख किसे और कैसे प्राप्त होता है?

२४. राष्ट्रीयता का क्या है? जिसने अपने नगर अथवा ग्राम की से की है, वही सच्चा देश-सेवक बन सकता है। जिसने अपने ग्राम के भूखे-प्यासे को कभी मुट्ठी भर अन्न नहीं दिया उससे देशहित के लिए खून बहाने और प्राणाहुति देने की क्या आशा? स्वदेशी मोटे कपड़ों से जिस मनुष्य के हाथ-पैर छिलने लगते हैं अथवा उनके लिए पैसा-धेला अधिक खर्च करना बुरा मालूम पड़ता हैं, क्या वह भी राष्ट्रीय

सैनिक बन सकता है ? नहीं, कदापि नहीं । जो मनुष्य नागरिकता की परीक्षा में पास नहीं हो सकता उसके लिए राष्ट्रीयता की कक्षा में कोई स्थान नही । जितना ही अधिक हम नागरिकता का आदर्श ऊँचा रखेंगे, हमारी राष्ट्रीयता उतनी ही अधिक उच्च कोटि की होगी ।

क-- उक्त गद्य का अर्थ सरल भाषा में लिखिए । ख—राष्ट्रीयता का आदर्श क्या है ? ग—आज के राष्ट्र-सेवकों मे क्या दोष हैं ? घ—मोटे टाइप मे छपे भाग की व्याख्या कीजिए ।

२५ माँ वसुधे ! इन कायरों को देख लिया न ? आज इन मूक पाषाण मूर्तियो से तू जैसी कुछ भाराक्रात हो रही है, कदाचित ही वैसी कभी हुई हो । वे वही हैं, जिन्होंने तुझ कपिला को दान की बछिया की तरह स्वय ही विदेशियो और विधर्मियो के हाथ में सौंप दिया । ये वही हैं, जिन्होंने अपने जन्मजात अधिकार-कुसुमो को कुचल कर अपनी छाती पर परतंत्रता की संतप्त शिला हँसते-हँसते रख ली ! ये वहीं हैं, जिन्होंने तेरे उन्नत मस्तक पर से स्वाधीनता का ताज उतार तुझे गुलामी की बेड़ियाँ पहना दीं । ये वही हैं, जो कब्र मे बैठे हुए बेशर्मी से अपने को जानदार कहने का दम भर रहे है । आश्चर्य ! तू इन कायरों को अब भी अपने पुनीत अंक में बिठाये हैं ।

क—यहाँ किन पाषाण-मूर्तियों की ओर सकेत है ? ख--देश की पराधीनता के क्या कारण हो सकते हैं ! ग—मोटे टाइप में छपे भाग की व्याख्या कीजिए ।

२६ प्रेम और श्रद्धा में अन्तर यह है कि प्रेम प्रिय के स्वाधीन कार्यों पर उतना निर्भर नहीं—कभी कभी किसी का रूप मात्र, जिसमें उसका कुछ भी हाथ नहीं, उसके प्रति प्रेम उत्पन्न होने का कारण होता है । पर श्रद्धा ऐसी नहीं है । किसी की सुन्दर आँख या नाक देख कर उसके प्रति श्रद्धा नही उत्पन्न होगी, प्रीति उत्पन्न हो सकती है । प्रेम के लिए

इतना ही बस है कि कोई मनुष्य हमें अच्छा लगे, पर श्रद्धा के लिए आवश्यक यह है कोई मनुष्य किसी बात में बड़ा हुआ होने के कारण हमारे सम्मान का पात्र हो। श्रद्धा का व्यापार-स्थल विस्तृत है; प्रेम का एकान्त। प्रेम मे घनत्व अधिक है और श्रद्धा मे विस्तार। किसी मनुष्य से प्रेम रखने वाले दो ही एक मिलेंगे, पर उस पर श्रद्धा रखने वाले सैकड़ों, हजारों, लाखों क्या करोड़ों मिल सकते हैं।

१—मोटे टाइप में छपे भाग की व्याख्या कीजिए।

२—प्रेम तथा श्रद्धा में क्या भेद है? उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।

३—क्या एक ही मनुष्य से कोई व्यक्ति प्रेम और श्रद्धा एक साथ ही कर सकता है?

२७. साहित्य का प्रभाव हमारे ऊपर उसी समय पड़ता है जब कि इसके अध्ययन से हममे वैसी ही सहानुभूति तथा वैसी ही शक्ति उत्पन्न हो जावे जो कि उसको जन्म देते समय लेखक में थी। **साहित्य की उत्पत्ति मे सर्वप्रथम मानव-जीवन का हाथ है। दूसरा काम लेखक का है जो आदमी की रुचि के अनुसार इस मसाले को साँचे मे ढालता है।** लेखक की बुद्धिमत्ता सर्वप्रथम उसमें किसी विषय विशेष पर विचार उत्पन्न करती है। लेखक इन विचारों को अपनी रचना में स्थान देता है। दूसरी सहायता लेखक को उसकी भावुकता से मिलती है। **भावुक होने के कारण लेखक के हृदय मे किसी विशेष विषय के कारण भावनाओं का उद्रेक होता है और इन भावनाओं का वह पाठकों मे भी उद्रेक करना चाहता है।** तीसरी सहायता लेखक को उसकी सूझ से मिलती है। अपनी सूझ की प्रचण्डता को लेखक पाठको तक पहुँचाने के लिए बहुत उत्सुक होता है। लेखक में पाये जाने वाले इन तीन गुणों से सत्-साहित्य की सृष्टि होती है। **यह वह कच्चा माल है जिससे अच्छे से अच्छे भवन निर्माण किये जा सकते है। इन सब के होते हुए भी यदि किसी बात की कमी रह जाती**

है तो वह है कारीगरी की कसौटी। मसाला कितना ही अच्छा क्यों न हो, लेखक के विचार, भाव तथा सूक्ष्म कितनी ही उत्तम क्यों न हो, जब तक उसमे शैली रूपी कारीगर की कसौटी न होगी तब तक साहित्य उच्च कोटि का न होगा। मसाले को सुन्दर तथा आकर्षक साँचो में ढाला जाता है तथा इस प्रकार लेखक में एक चौथी बात की आवश्यकता है— वह है उसकी शैली। साहित्य क्या है यह समझने के लिए इतना जानना पर्याप्त है कि कौन सी पुस्तक किन कारणों से साहित्यिक समझी जाती है।

( १ ) दिये हुए परिच्छेद का उपयुक्त शीर्षक लिखिए।

( २ ) मोटे टाइप में छपे हुए भाग की व्याख्या कीजिए।

( ३ ) एक सफल लेखक में किन चार विशिष्ट गुणों की आवश्यकता सत् साहित्य के सृजन के लिए होती है?

( ४ ) साहित्य में शैली को विशेष महत्वपूर्ण स्थान क्यों दिया गया है?

२८. साहित्य हमे क्यों पढ़ना चाहिए? साहित्य हमे कोई ऐसा उपदेश अथवा ऐसी सूचनायें नहीं देता जो हमारी व्यावसायिक उन्नति में सहायक हो सके। फिर हम क्यों साहित्य की चिन्ता करें? इस प्रश्न के उत्तर मे यही कहा जा सकता है कि साहित्य हम पढ़ते हैं कि इसका मानव हृदय पर गहरा तथा चिरस्थायी प्रभाव पड़ता है। एक बहुमूल्य पुस्तक का निर्माण जीवन की आहुति देकर होता है। अतएव पुस्तक के अध्ययन से हम जीवन के निकटतम तथा नवीन पहलुओं से परिचय प्राप्त करते हैं। साहित्य उसका तथ्य है जो मनुष्य ने जीवनमे देखा है, जो उसने जीवन मे अनुभव किया है अथवा जिस पर उसने गभीरता पूर्वक विचार किया है तथा जिसने उसके हृदय पर चोट पहुँचायी है और जो हम सब पर तुरन्त ही स्थायी प्रभाव डालनेवाला है।

१— व्यावसाय, निमार्ण, साहित्य तथा सूचना के विशेषण रूप लिखिए।

२—इस अवतरण का सार अपनी भाषा में लिखिए।

३—एक बहुमूल्य पुस्तक का निर्माण जीवन की आहुति दे कर कैसे होता है ?

४—क्या साहित्य के द्वारा व्यावसायिक उन्नति भी हो सकती है ?

२९. यह ससार एक महाश्मशान है। जो चिताग्नि यहाँ धधक रही है उसमे जो न जले ऐसी चीज ही दुनिया में नहीं है। जड़-प्रकृति किसी का मुँह नहीं देखती, जो सामने आता है उसी को जलाती हुई, धधकती हुई, हँसती और किलकारती हुई चली जाती है। यह जो नक्षत्रों का समूह अल्पाधकार मे झिलमिला रहा है वह इस विश्व-व्यापी महावह्नि की सिर्फ चिनगारियाँ हैं। इस ससार मे अग्नि कहाँ नहीं है ? निर्मल चन्द्रिका में, अफुल्ल मल्लिका में, कोकिल की ककली में, कुसुम के सौरभ में, मृदुल पवन में, पक्षियो के कूजन मे, रमणी के मुखड़े मे, पुरुष के हृदय मे—कहाँ आग नहीं धधक रही है ? किस आग में आदमी नहीं जलता ? अगर प्यार करोगे तो जल मरना होगा; और यदि नही प्यार करोगे तो जल भुनकर खाक हो जाना होगा। लड़के-बाले न हों तो शून्यगृह लेकर जलना होगा, अगर होंगे तो संसार-ज्वाला मे जलना होगा। केवल मनुष्य ही नहीं सारे ससार में जीव जला करते हैं। **दुःख के ऊपर दुःख तो यह है कि इस पापी संसार में सहृदयता नहीं, सहानुभूति नहीं, करुणा नहीं।**

( १ ) क्या यह सत्य है कि इस संसार में सहृदयता नहीं, सहानुभूति नहीं और करुणा नहीं है ?

( २ ) मोटे टाइप मे छपे भाग को विस्तार पूर्वक समझाइए।

( ३ ) संसार की उपमा महाश्मशान से क्यों दी गयी है ?

( ४ ) इस अवतरण में जिस आग का वर्णन लेखक ने किया है वह कहाँ धधक रही है ? और उसका परिचय हमें कैसे मिल सकता है ?

३०. लोभियों का दमन योगियों के दमन से किसी प्रकार कम नहीं होता। **लोभ के बल से वे काम और क्रोध को जीतते हैं, सुख की वासना का त्याग करते हैं, मान-अपमान*में समान भाव रखते हैं।** अब और चाहिए क्या ? जिससे वे कुछ पाने की आशा रखते हैं वह यदि उन्हें दस गालियाँ भी देता है तो उसकी आकृति पर न रोष का कोई चिन्ह प्रकट होता है और न मन में ग्लानि होती है। **न उन्हें मक्खी चूसने में घृणा होती है और न रक्त चूसने में दया। सुंदर से सुंदर रूप देख कर वे अपनी कौड़ी भी नहीं भूलते।** करुण से करुण स्वर सुन कर वे अपना एक पैसा भी किसी के यहाँ नहीं छोड़ते। तुच्छ से तुच्छ व्यक्ति के सामने हाथ फैलाने में लज्जित नहीं होते। क्रोध, दया, घृणा, लज्जा आदि करने से क्या मिलता है कि वे करने जायं ? वे शरीर सुखाते हैं, अच्छे भोजन, अच्छे वस्त्र आदि की आकांक्षा नहीं करते, **लोभ के अंकुश से अपनी सम्पूर्ण इन्द्रियों को वश में रखते हैं।** लोभियों ! तुम्हारा अक्रोध, तुम्हारा इन्द्रिय-निग्रह*, तुम्हारी मानापमान-समता*, तुम्हारा तप अनुकरणीय है; तुम्हारी निष्ठुरता, तुम्हारी निर्लज्जता, तुम्हारा अविवेक, तुम्हारा अन्याय निंदनीय है। तुम धन्य हो ! तुम्हें धिक्कार है !!

( १ ) मोटे टाइप में छपे भाग की व्याख्या कीजिए।

( २ ) पुष्पांकित पदों के समास सविग्रह लिखिए।

( ३ ) लोभियों की समता योगियों से किस प्रकार की जा सकती है ?

( ४ ) लेखक ने लोभियों को "धन्य" भी कहा है और "धिक्कार" भी दी है—क्यों ?

३१. हम सब इस संसार के खेल के पुतले हैं। ससार कभी अत्यन्त आदर करके हमें गोद मे उठा लेता है, और कभी अवहेला के साथ पृथ्वी पर पटक देता है। संसार हमारी हँसी और रोने पर वैसे ही कान नहीं देता जैसे बालक अपने खिलौने के आनद और रूठने को समझ नहीं सकता। लेकिन खिलौने को गोद मे लेने से क्या वह सचमुच नहीं हँसता, और घर के कोने में फेंक देने मे क्या सचमुच ही उसे दु:ख नहीं होता ? अथवा यह बात है कि मनुष्य के सुख दुख पर ईश्वर ध्यान ही नहीं देता। उसकी सृष्टि के महान उद्देश्य के बीच इनके लिए स्थान ही नहीं है! **उसके भारी कारखाने मे मनुष्यता का सुख दुख उससे निकली हुई चिनगारी और धूमराशि की तरह है—उधर उसका लक्ष्य नहीं है। कालचक्र की लीक विश्व घटना-मार्ग को दलित करती चली जाती है—विश्व की वेदना की ओर उसकी दृष्टि नहीं है।**

( १ ) इस परिच्छेद का उपयुक्त शीर्षक लिखिए।

( २ ) मोटे टाइप मे छपे भागों की व्याख्या कीजिए।

( ३ ) ईश्वर तथा जीव के विषय में लेखक के निजी विचार क्या हैं और आप उनसे कहाँ तक सहमत हैं ?

३२. प्राणियों के विकास मे स्त्री का पद पुरुष के पद से श्रेष्ठ है, उसी तरह जैसे प्रेम, त्याग और श्रद्धा हिंसा, संग्राम और कलह से श्रेष्ठ है। **अगर हमारी देवियाँ सृष्टि और पालन के देवमन्दिर से हिंसा और कलह के दानव-क्षेत्र मे आना चाहती हैं तो उससे समाज का कल्याण न होगा।** पुरुष ने अपने अभिमान में अपनी दानवी कीर्ति को अधिक महत्व दिया। वह अपने भाई का स्वत्व छीन कर और उसका रक्त बहाकर समझने लगा उसने बहुत बड़ी विजय पायी। जिन शिशुओं को देवियों ने अपने रक्त से सिरजा और पाला, उन्हे बम मशीनगन का निशाना बना कर वह अपने को विजेता समझता है।

और जब हमारी ही माताएँ उसके माथे पर केसर का तिलक लगा कर और उसे अपने असीसों का कवच पहना कर हिंसा-क्षेत्र में भेजती है, तो क्या आश्चर्य है कि पुरुष ने विनाश को ही संसार के कल्याण की वस्तु समझा और उसकी हिंसा-प्रवृत्ति दिन दिन बढती गयी और आज हम देख रहे हैं कि यह दानवता प्रचण्ड होकर समस्त संसार को रौंदती, प्राणियों को कुचलती, हरीभरी खेतियों को जलाती, और गुलजार बस्तियों को वीरान करती चली जाती है। क्या हमारी देवियाँ इस दानवलीला में सहयोग देकर इस संग्राम क्षेत्र में उतर कर ससार का कल्याण करेंगी ?

( १ ) मोटे टाइप में छपे भाग की व्याख्या कीजिए।

( २ ) क्या प्राणियों के विकास में स्त्री का पद पुरुष के पद से श्रेष्ठ है ? यदि है तो क्यों और कैसे ?

( ३ ) इस अणु-बम के युग में हमारी देवियाँ किस प्रकार से संसार का कल्याण कर सकती हैं ?

३३. इतिहास के अध्ययन से, प्राचीन आख्यानों के श्रवण से भूतकाल के जो दृश्य कल्पना मे बस जाते हैं वे वर्तमान दृश्यों को खडित और एकांत प्रतीत होने से बचाते है, उन्हें अपने मेल मे दिखाते हैं और हमारे भावों को काल-बद्ध न रखकर अधिक व्यापकत्त्व प्रदान करते हैं। हम केवल उन्ही की ओर अपने हृदय के भावों को नहीं प्रवृत्त करते जिनसे हम घिरे हुए होते हैं बल्कि उनकी ओर भी जो अब इस संसार मे नहीं हैं, पहले कभी थे। पशुत्व और मनुष्यत्त्व मे यह भी एक बडा भारी भेद है। मनुष्य उस कोटि की पहुँची हुई सत्ता है जो इस अल्प क्षण मे ही जिसे वर्तमान कहते हैं आत्मा के प्रसार को बद्ध रखकर संतुष्ट नहीं रह सकती। वह अतीत के दीर्घ प्रसार को पार करती हुई अपनी वृद्धि को ही नहीं,

रागात्मिका वृत्ति को भी ले जाती है। हमारे भावों या मनोविकारों के लिए भूत काल का क्षेत्र अत्यत पवित्र है। वहाँ ये भाव शरीरयात्रा के स्थूल स्वार्थ से स शिलष्ट होकर मैले नहीं रहते, अपने विशुद्धरूपमें में दिखायी पडते हैं।

( १ ) मोटे टाइप में छपे भागों की व्याख्या कीजिए।

( २ ) मनुष्य उस कोटि की.. ...नहीं रह सकती—का वाक्य-विश्लेषण कीजिए।

( ३ ) गयी हुई स्वतंत्रता क्या फिर लौट सकती है? यदि हाँ, तो कैसे?

( ४ ) पशुत्व और मनुष्यत्व में किस भारी भेद की ओर लेखक ने सकेत किया है।

३४, यह पुस्तकोंही में शक्ति है कि चाहे घर में बैठा हो किंतु विश्वके सभी स्थलों में पहुँच जाय। चाहे चित्रकूट की रम्यस्थलियों मे तपस्वी के बालकों के साथ खेले चाहे काश्मीर के खेतों मे बैठ केसर की सुगंधि घ्राण कर, हँसते हँसते विह्वल हो जायें, वा नगाधिराज हिमालय की प्रोत्तु ग शिखरों पर आरूढ़ हो परमात्मा के औदार्य्य से रम्य वसुधरा की शोभा निरखें वा उसके परम प्रशांत गभीरता को सराहें। चाहे प्यारे शेक्सपियर की परम अलौकिक और गूढ कविता मे लीन हो किंचित काल के लिए सारे विश्व को विस्मरण कर जाये वा मिल्टन की गंभीर गिरा मे निमग्न हो जाये।

इन सब सत्कर्म्मों के बदले पुस्तकें केवल इतना ही चाहती हैं कि हम उन्हें मकान के किसी कोने में सुरक्षित रख दें जिसमें वे सकुशल शाति पूर्वक स्थित रहें।

( १ ) मोटे टाइप में छपे भागो की व्याख्या कीजिए।

( २ ) इन सब सत्कर्मों......स्थित रहे—का वाक्य-विश्लेषण कीजिए।

( ३ ) पुस्तकें हमारी सब से उत्तम मित्र हैं—कैसे ?

( ४ ) पुस्तकालय से क्या लाभ हैं ?

३५. जिस समाजमे सदाचार पर श्रद्धा और अत्याचार पर क्रोध प्रकट करने के लिए जितने ही अधिक लोग तत्पर पाये जायँगे उतना ही वह समाज जाग्रत समझा जायगा। श्रद्धा की सामाजिक विशेषता एक इसी बात से समझ लीजिए कि जिस पर हम श्रद्धा रखते हैं उस पर चाहते हैं कि और लोग भी श्रद्धा रक्खे, पर जिस पर हमारा प्रेम होता है उससे और दस पाँच आदमी प्रेम रक्खे इसकी हमे परवा क्या इच्छा ही नही होती, क्योंकि हम प्रिय व्यक्ति पर लोभ - वश एक प्रकार का अनन्य अधिकार व इजारा चाहते हैं। श्रद्धालु अपने भाव मे संसार को भी सम्मिलित करना चाहता है पर प्रेमी नही।

( १ ) मोटे टाइप मे छपे भाग की व्याख्या कीजिए।

( २ ) क्या प्रेम ईर्ष्या द्वेष, लोभ तथा संकीर्णता को भी जन्म देता है ?

( ३ ) अत्याचार के प्रति क्रोध तथा सदाचार के प्रति श्रद्धा प्रदर्शन करना क्यों महानता के लक्षण हैं ?

( ४ ) श्रद्धा किस प्रकार मानव की सात्त्विक वृत्तियों का विकास तथा वृद्धि करती है ?

३६. जिसकी रचना के भीतर एक समस्त देश एक समग्रयुग, अपने हृदय को, अपनी अभिज्ञता को व्यक्त कर उसको मानव-जाति की चिरतन सामग्री बना देती है उसी कवि को महाकवि कहा जाता है। समग्र देश की और समस्त जाति की सरस्वती उसका आश्रय ग्रहण कर सकती है—वह जो रचना करता है, वह किसी व्यक्ति विशेष की रचना नहीं मानी जा सकती है। ऐसा ज्ञात होता है, मानो वह बृहत्

वनस्पति के समान देश के भूतल-जठर से उत्पन्न होकर उस देश को ही आश्रयच्छाया प्रदान करती है।

( १ ) मोटे टाइप में छपे भागों की व्याख्या कीजिए।

( २ ) महाकवि किसे कहते हैं ? तीन महाकवियों के नाम लिखिए।

( ३ ) एक महाकवि किस प्रकार सारे संसार, समग्र समाज तथा भूत-वर्तमान-भविष्य का प्रतिनिधि होता है।

३७. चित्त की प्रत्येक दशा को दर्शाने के लिए प्रकृति के स्वरूप का आश्रय लिया गया है। इसलिए मनोभाव का चित्र सा आँखों के सामने खिंच जाता है। महाकवि के गीतों में सुमधुर उषा काल **मनोमोहिनी संध्या, मध्यांह के प्रचण्ड ताप, निशापति की निर्मल ज्योत्सना, घनघोर रात्रि के भयावह अन्धकार, बालरवि की सुवर्ण वर्ण धूप और पृथ्वी की मधुरता** आदि का पुनः पुनः वर्णन आया है; जिनके द्वारा हृदय के भावों की बाह्य प्रकृति मे **झाँकी बनायी गयी है।** ऐसे गीतों को पढ़ते पढ़ते बाहर-भीतर आनन्द का समुद्र उमड़ पड़ता है। कहीं कहीं तो मन ऐसा मग्न हो जाता है कि **आनंद किस ओर से आ रहा है यह विचार करने का अवकाश ही नहीं मिलता।**

(१) मोटे टाइप में छपे भागों की व्याख्या कीजिए।

(२) इस अवतरण का उपयुक्त शीर्षक दीजिए।

(३) कवि 'प्रकृति' का छोर छोड़ देने पर कवि नही रह जाता—समझाइये कैसे ?

३८. कला की उन्नति तभी होती है, जब व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य रहता है। जब मनुष्य को **यथेष्ट सुखोपभोग की स्वतंत्रता रहती है,** जब **उसे अपने हृदयगत भावो के दबाने की जरूरत नहीं रहती,** तभी

वह इस सौन्दर्य दृष्टि के लिए चेष्टा करता है। उल्लास के इस भाव में एक प्रकार की स्वच्छंदता रहती है। जब यह स्वच्छंदता सयम हो जाती है, जब उस भाव में सामजस्य प्रबल हो जाता है, तब कला की सृष्टि होती है। सौन्दर्य की अनुभूति के लिए सभी स्वच्छंद हैं। पर कला कोविद का कार्य शृंखला-बद्ध और प्रणाली-संगत होना चाहिए। मतलब यह है कि सौन्दर्य के उपयोग का सामर्थ्य तभी होता है, जब चित्त स्वच्छंद रहता है। परतु चित्त-वृत्ति को सर्वथा निरकुश न रखकर सयत रखना चाहिए। तभी सौन्दर्य का निर्मलतर रूप प्रकट होता है।

(१) मोटे टाइप में छपे भाग की व्याख्या कीजिए।

(२) कला की उन्नति किस प्रकार व्यक्तिगत स्वतन्त्रता पर निर्भर है?

(३) निरकुश, सगत, स्वच्छंदता, उल्लास, स्वतन्त्रता तथा प्रबल के विरोधी शब्द लिखिए।

२९ कोई दिन था कि हम कुछ थे, कुछ नहीं, बहुत कुछ थे। देवता हमारा मुँह जोहते थे, स्वर्ग मे हमारी धूम थी और धरती हमारे उधरने से उधरती थी। हम आसमान मे उड़ते, समुद्र को छानते, जगलो को खँगालते और पहाड़ों को हिला देते थे। दुनियाँ में हमारे नाम लेवा थे, देश-देश में हमारी धाक थी, दिशा हमारी जोति से जगमगाती थीं और आसमान के तारे हमे आँख फाड़-फाड़ कर देखते थे। हम अन्धकार में उजाला करते थे, बन्द आँखों को खोलते थे, सोतों को जगाते थे और उकठे काठ को भी हराभरा बना देते थे। सूरमापन हम पर निछावर होता था, दिलेरी हमारे बाँट पड़ी थी, बहादुरी हमारा दम भरती थी, और प्रेम ही हमारा बाना था। हम बेजान मे जान डालते थे, बिगड़ों को बनाते थे, और भूलों को राह पर लाते थे।

( १ ) मोटे टाइप मे छपे भाग की व्याखया कीजिए।

( २ ) हम भारतीयो की वर्त्तमान दशा कैसी है? समझाकर लिखिए।

( ३ ) अतीत काल मे भारतीय कैसे थे? सप्रमाण उत्तर दीजिए।

( ४ ) इस परिच्छेद के मुहावरों का संकलन करके अर्थ लिखिए और उनका वाक्यों में प्रयोग कीजिए।

४० अवकाशाभाव के बारे में हम कह सकते हैं कि किसी व्यक्ति को यदि किसी विशेप कार्य के करने की उत्कट इच्छा हो, तो उसके लिए अवकाश अवश्य ही मिल जायगा। जब कुछ व्यसनी लोगों को दिनभर कठिन परिश्रम करके रात्रि मे ताश या शतरञ्ज खेलने का अवकाश मिल जाता है, तब कोई कारण नही कि एक चिट्ठी लिखने या कुछ संगीत सीखने या प्राणायाम करने या कोई धार्मिक या साहित्यिक पुस्तक के पढ़ने का अवकाश न मिल सके। आवश्यकता है उत्कट इच्छा और मन-लगन*की। सत्सगति* का फल ही यह है कि उपादेय विपयो मे सदिच्छा पैदा हो जाय। अतः विद्यार्थी लोग तथा अन्य जन इस बात का निश्चय और दृढ़ संकल्प* कर लें कि वे अपने अमूल्य समय का एक क्षण भी व्यर्थ न खोयेंगे, और यदि वे अधिक से अधिक पुस्तक तथा व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त कर लेंगे तो बिना किसी कठिनता के उनका मनोरथ सिद्ध हो जायगा।

( १ ) मोटे टाइप में छपे भाग की व्याख्या कीजिए।

( २ ) पुष्पाकित शब्दों के समास विग्रह कीजिए।

( ६ ) इस परिच्छेद का शीर्षक लिखिए।

( ४ ) 'जहाँ चाह वहाँ राह' वाली कहावत की सत्यता सिद्ध कीजिए।

( ५ ) पुस्तकीय तथा व्यावहारिक ज्ञान में क्या भेद है? दोनों की उपयोगिता जीवन मे सिद्ध कीजिए।

४१. मनुष्य-जीवन का सबसे बड़ा उद्देश्य है सुख-शान्ति के साथ परमानद परमात्मा को प्राप्त करना और इसे साधने वाला सबसे बड़ा कर्म है--सयम-शील-ब्रह्मचर्य। बस इसी उद्देश्य की प्राप्ति और इसी कर्म के करने के लिए वैदिक-काल से प्रयत्न होता आ रहा है। मनुष्य-जाति के विविध मत-मतान्तरों के धम-ग्रन्थो का सारा तत्व भी यही है। ससार मे सब धर्मों के ऋषि मुनियों ने भी अपने जीवन में इसी के लिए प्रयत्न किया है। मनुष्य-जीवन का उद्देश्य क्षणिक और कृत्रिम सुख नही जो कि विषयोपभोग से मिलता है वह तो पशुओं—नहीं, नहीं—राक्षसों का उद्देश्य और कर्म है। वास्तव में मनुष्य के गुण—सत्यनिष्ठा, शील, बल, विद्या, सदाचरण, परोपकार, तेज, उत्साह, साहस, धैर्य, जीव-दया, विश्व-प्रेम, भ्रातृ भाव तथा सत्सुधार आदि हैं।

( १ ) मोटे टाइप नें छपे भाग की व्याख्या कीजिए।

( २ ) जीवन का मुख्य उद्देश्य क्या है और वह कैसे प्राप्त हो सकता है ?

( ३ ) मनुष्यता के अंतर्गत कौन कौन गुणों की आवश्यकता होती है और क्यों ?

( ४ ) लेखक वास्तविक सुख किसे समझता है ?

४२।४३ यदि ध्यान-पूर्वक देखा जाय तो इस प्रकारके सैकड़ों-हजारों महापुरुष मिलेंगे, जिन्होंने केवल अपने अध्यवसाय, दृढ़निश्चय और आत्मविश्वास के भरोसे ही ससार मे असम्भव समझी जाने वाली सैकड़ो हजारो बातों को सम्भव कर दिखलाया और इस प्रकार सिद्ध कर दिया कि दृढ़ निश्चय और आत्मविश्वास के सामने संसार मे कोई बात असम्भव नहीं है। कोई ऐसा आविष्कारक, कोई ऐसा धर्म-प्रवर्तक, कोई ऐसा वीर, कोई ऐसा महापुरुष नहीं हुआ, जिसमे दृढ़ निश्चय और आत्मविश्वास न हो। सच तो

यह है कि बिना इन दोनों बातों के मनुष्य में महत्व आ ही नहीं सकता। वह किसी प्रकार बड़ा बन ही नहीं सकता। यही बातें ऐसी हैं, जो अन्त में मनुष्य को पूर्ण सफल और विजयी बनाकर छोड़ती है। वास्तविक बात यह है कि महत्ता तो ईश्वर स्वयं ही हममें भर देता है, हम उसपर उचित ध्यान नही देते और जबरदस्ती अपने आप में अयोग्यता और तुच्छता आदि का आरोपण करके अयोग्य और तुच्छ बन जाते है। परन्तु यदि हम अपने विचारों को कुछ और प्रशस्त करें, अपनी दृष्टि कुछ और विस्तृत करें तो अनायास ही हम उन गुणों से अलकृत से हो सकते है, जो किसी वीर या महापुरुष में पाये जाते हैं। यदि हम नीचे की ओर देखना छोड़कर ऊपर की ओर देखना आरम्भ करें तो अवश्य ही उस स्थान पर पहुँच सकते है, जहाँ महत्ता के सिवा और कुछ है ही नहीं।

(१) मोटे टाइप मे छपे भाग की व्याख्या कीजिए।

(२) दिये हुए परिच्छेद का सार अपनीभाषा में लिखिए।

(३) यदि हम नीचे ·····है ही नहीं-का वाक्य विश्लेषण कीजिए।

(४) उपर का परिच्छेद पढ़ कर किसी ऐसे महापुरुष का नाम लीजिए जिसने असम्भव को सम्भव तथा अपने अध्यवसाय से असाध्य को साध्य कर दिखलाया हो।

(५) वीर या महापुरुष बनने के लिए किन किन गुणों की आवश्यकता होती है?

४४. सच्चा विद्यानुरागी ज्ञान-प्राप्ति का साधन इसलिए करेगा जिसमें वह अपना तथा दूसरों का हित साधन कर सके। इसका मुख्य उद्देश्य उन शक्तियो की वृद्धि और परिष्कृति का साधन होना चाहिए जो उसे प्राप्त है। और उस साधन का मुख्य फल वह आनन्द

होनाचाहिएजो ज्ञान द्वारा प्राप्त होता हैं। इसके लिए बातचीत और लिखना दोनों बहुत प्रयोजनीय हैं। बातचीत व्यवहार-कुशल पुरुषों के लिए प्रायः पुस्तक का काम देती है। पर विद्यानुरागी के लिए पढ़ना एक बड़ा क्षेत्र है जिसके प्रभाव से चिरकाल का संचित ज्ञान-भंडार उसके सामने खुल पड़ता है, वह सब काल के पुरुषों का समकालीन हो जाता है, और सब जातियों के विचारों का आगार बन जाता है, सैकड़ों पीढ़ियों के प्रयत्न का फल उसके हाथ में आ जाता है। यह प्रत्यक्ष है कि मनुष्यों के कर्मों की व्यवस्था ज्ञान से प्राप्त होती है; और ज्ञान वही श्रेष्ठ है जो अनेक विषयों से सम्बन्ध रखता है। ऐसे ज्ञान का द्वार अध्ययन है।

(१) मोटे टाइप में छपे भाग की व्याख्या कीजिए।

(२) इस परिच्छेद का उपयुक्त शीर्षक लिखें।

(३) 'पढ़ना' तथा 'गुनना' के क्या भेद है?

(४) सच्चा विद्यानुरागी अपना स्वार्थ तथा परमार्थ दोनों ही कैसे कर सकता है?

४५. पुस्तकों के हम सब बड़े ऋणी हैं। ये अध्यापक हमको बिना दण्ड लकुट-प्रहार के, बिना कुटिल शब्द कहे या क्रोध किये और बिना द्रव्य लिये हुए ही शिक्षा दे सकते हैं। यदि आप इनके सन्निकट जाइये तो ये सोते न मिलेंगे। यदि आप जिज्ञासु हैं और इनसे प्रश्न करते हैं तो ये आप से कुछ परोक्ष न रक्खेंगे, यदि आप इनके रूप को यथार्थ न समझिये तो भुनभुनायेंगे नहीं, यदि आप अज्ञानी हैं तो वे आपकी मूर्खता पर हँसेंगे नहीं। इससे बुद्धि तथा ज्ञान से पूर्ण पुस्तकालय इस लोक की समस्त सम्पत्ति से बहुमूल्य है। और किसी स्पृहणीय वस्तु की तुलना उससे नहीं की जा सकती। सच तो यह है जो कोई सत्य, आनन्द, धर्म व विज्ञान की बात जानना चाहता है तो उसे निश्चय पुस्तकों से प्रेम करना चाहिए।

(१) मोटे टाइप में छपे भाग की व्याख्या कीजिए।

(२) सन्निकट, कुटिल, परोक्ष, मूर्खता तथा निश्चय के विरोधी शब्द लिखिए।

(३) इस परिच्छेद का उपयुक्त शीर्षक दीजिए।

(४) सच्चे अध्यापक में क्या गुण होने चाहिएँ?

४६ साहित्य के दो भेद किये जासकते हैं—एक काव्य और दूसरा विज्ञान काव्यमें कल्पनाका साम्राज्य है और विज्ञानका मे तर्कका। काव्य कभी भी तर्कका सामना नहीं कर सकता। उपन्यास और नाटक काव्यके अन्त-र्गत हैं और इतिहास विज्ञान में सम्मिलित किया जा सकता है। काव्य का कार्य-क्षेत्र अन्तर्जगत् है और विज्ञान का उपादान बहिर्जगत् है। हम लोगों को प्रायः सत्य का रूप वाह्य जगत में ही परिमित होता है। अन्तर्जगत् की घटनाओं में वे सहसा सत्य का स्वरूप नहीं देख सकते। पत्थर के लगने से फल का गिरना सत्य है— उसको सभी मान लेंगे; **परन्तु किसी अलक्षित कारण विशेष से मनुष्य के अधःपतन में सत्य का दर्शन कर लेना सभी के लिए साध्य नहीं है। विज्ञान के आविष्कारों की सत्यता में किसी को सन्देह नहीं हो सकता; परन्तु जब कवि अपनी कल्पना द्वारा अन्तर्जगत का गूढ़ रहस्य समझने लगता है, तब कुछ लोग सदिग्ध-चित्त हो सकते हैं। कितने ही लोग ऐसे है जो कल्पना को सत्य का विरोधी समझते हैं।**

(१) मोटे टाइप में छपे भाग की व्याख्या कीजिए।

(२) काव्य तथा विज्ञान में क्या भेद है?

(३) साहित्य के अन्तर्गत कौन कौन से प्रमुख विषय आते हैं।

(४) कवि अन्तर्जगत् का गूढ रहस्य किस प्रकार समझता और समझाता है?

—:o:—

# अनुवाद

हमारा जीवन आज इतना व्यस्त है कि एक-दो भाषाओं से अधिक जानने का समय ही नहीं मिलता। फिर भी वह इच्छा तो बनी ही रहती है कि जो भाषाएँ हम नहीं जानते उनमें लिखी हुई अमूल्य और सुन्दर बातें मालूम होती रहें। अँगरेजी न जाननेवाले शेक्सपियर, मिल्टन आदि के और सस्कृत न जानने वाले कालिदास, भवभूति इत्यादि के ग्रंथ पढ़ना चाहते हैं और पढ़ते भी हैं। उनकी इच्छा सुन्दर ग्रंथों के अनुवादो द्वारा पूरी होती है। भारत के अमूल्य ग्रंथ पाश्चात्य देशों में, और वहाँ के ग्रंथ भारत में अनुवादित होकर ही पढ़े गये हैं।

अनुवाद क्या है—एक भाषा में प्रकट किए हुए विचारो को दूसरी भाषा में कहना अनुवाद कहलाता है। अनुवाद करनेवाले को 'अनुवादक' और अनुवाद की हुई रचना को 'अनूदित' अथवा 'अनुवादित' कहते हैं। अनुवाद की सफलता अनुवादक की योग्यता पर निर्भर है। अनुवादित रचना सफल तब समझी जाती है जब मूल लेखक के भावों की पूर्ण रक्षा की जाय और अनुवादित रचना में वही शक्ति हो जो मूल ग्रंथ में पायी जाती है। यह कार्य सरल नहीं है। वास्तव मे अनुवादक का काम स्वतंत्र पुस्तक लिखने वाले लेखक से भी कभी-कभी कठिन हो जाता है। मूल लेखक स्वतंत्र रीति से सोचता-विचारता और स्वतत्रता पूर्वक अपने विचार प्रकट करता है; परन्तु अनुवादक को सभी दृष्टियों से बंधन में रहना पड़ता है। स्वतत्र होकर कुछ कहने का तो उसे कोई अधिकार ही नहीं है, मूल लेखक से मतभेद होने पर उसी के विचार उसे लिखने पड़ते हैं। अतः अनुवाद-कार्य में पूरी-पूरी सफलता तभी मिल सकती है जब दोनों भाषाओं—उनके शब्दों, मुहावरों, कहावतों और शक्तियों—का उसे ठीक-ठीक ज्ञान हो।

अनुवाद का उद्देश्य—अनुवाद का उद्देश्य स्पष्ट है। ज्ञान बढ़ाने की इच्छा मनुष्य मात्र में स्वाभाविक है। जो बातें हमें अपनी भाषा

में नहीं मिलती, उन्हें भी हम जानना चाहते हैं; जानना चाहिए भी। साथ ही, जो बातें हमारी भाषा में वर्तमान है उनके संबंध मे विदेशियों की सम्मति जानने की इच्छा भी हम में बनी रहती है। इसी आवश्यकता और इच्छा की पूर्ति अनुवाद से होती है।

अनुवाद से लाभ—अनुवाद द्वारा हम उन रचनाओं को सहज ही प्राप्त कर लेते हैं जो भाषा न जानने के कारण हमें सुलभ नहीं थीं। जानी-पहचानी बातों के संबंध मे अन्य भाषा वाले विद्वानों के मत भी हमें सरलता से मालूम हो जाते हैं। दूसरी भाषा की अमूल्य कृतियाँ देखकर हमें अपनी भाषा और साहित्य की स्थिति का ज्ञान होता है और हम उसके अभावो को दूर करने की बात मन में सोचते हैं। साहित्य के खाली अंगो की पूर्ति का आरंभ अनुवादित ग्रंथ देखकर ही होता है। जिन विषयों के ग्रंथ हमारी भाषा मे नहीं हैं उन पर अपनी भाषा में सुन्दर पुस्तकें रचने का प्रयत्न अन्य भाषा के ग्रंथ देखकर ही किया जाता है।

अनुवाद करने के पूर्व—अनुवादक जब किसी भाषा से अनुवाद करने का काम शुरू करे तब पहले उसे ध्यान रखना है कि उसका उद्देश्य मूल लेखक के भाव उसी शक्ति के साथ अपनी भाषा मे लिखना है जिस शक्ति से वे मूल रचना में प्रगट किये गये हैं। शब्दो में विशेष शक्ति होती है प्रत्येक लेखक शब्दों का विशेष अर्थों में प्रयोग करता है। अनुवाद के प्रत्येक शब्द की मूल शक्ति जाननी चाहिए और साथ ही लेखक का सकेत भी समझ लेना होगा।

एक शब्द या वाक्याश के स्थान पर उसी का अर्थ बताने वाला शब्द या वाक्याश रख देने से अनुवादक का काम नहीं चल सकता। मुहावरों और कहावतो का अनुवाद भी इसी प्रकार अर्थ समझ कर करना चाहिए। अनुवाद करते समय शब्दो का साधारण अर्थ लेने से काम नहीं चलेगा। मेरा सर चक्कर खा रहा है—का अनुवाद अगर यह किया

जाय कि My head is eating circle, तो कितनी हँसी की बात होगी! इसलिए लेखक के प्रत्येक प्रयोग को सावधानी से समझकर उसका अनुवाद करना चाहिए।

दूसरी मुख्य बात ध्यान मे रखने की यह है कि अनुवाद की भाषा प्रभावपूर्ण होनी चाहिए, उसमे शिथिलता कदापि न हो। कभी-कभी मूल लेखक के वाक्य-विन्यास की नकल करने का फल यह होता है कि अनुवाद की भाषा शिथिल हो जाती है और पाठक को पढने में कोई आनन्द नहीं आता। यह अनुवाद का दोष है। भाषा में शिथिलता आ जाने में यदि अनुवाद किसी ने पढा ही नहीं तो इस परिश्रम से लाभ ही क्या? ऐसा अनुवाद असफल रहता है।

तीसरी और सबसे आवश्यक बात यह है कि मूल लेखक के भावों की पूर्णतः रक्षा करनी चाहिए। अनुवाद का मुख्य उद्देश्य जब दूसरी भाषा के लेखक के विचारो से अपनी भाषा जानने वालों को परिचित कराना है तब मूल लेखक के भावों की यदि रक्षा न की जायगी तो अनुवाद का प्रथम उद्देश्य ही नष्ट हो जायगा। यही कारण है कि कभी-कभी मूल लेखक के भावों की रक्षा के लिए हम उसकी भाषा की सुंदरता की भी परवाह नहीं करते। अतः सबसे पहले प्रयत्न भावों की रक्षा का ही होना चाहिए। पर यदि भाषा भी सुन्दर, प्रभावपूर्ण और गठी हुई हो तो क्या कहना!

अनुवाद के प्रकार—अनुवाद करते समय लेखक का मुख्य उद्देश्य दूसरी भाषा में लिखे विचारों को अपनी भाषा में लिखना रहता है। अत: कभी तो वह अन्य भाषा मे लिखी प्रत्येक बात का शब्दानुरूप अनुवाद करता है, कभी मूल लेखक के भावों को ज्यों का त्यों अपनी भाषा में लिखता है और कभी अनुवाद्य रचना को भली भाँति समझकर स्वतन्त्र रूप से मूल लेखक के विचार निजी ढंग से प्रकट करता है। इस प्रकार अनुवाद के मुख्य तीन प्रकार हैं—

(१) अविकल या शब्दानुवाद—जिस ग्रन्थ का अनुवाद अक्षरशः मूल को मिलाकर किया गया हो, उसे 'शब्दानुवाद' कहेंगे। इस प्रकार के दो तीन उदाहरण देखिए—

He first went to school in his own village, but while he was yet very young he went to Calcutta.

पहले वह अपने गाँव की पाठशाला में पढ़ने गया। बाद में, जब वह बहुत छोटा था, तभी उसे कलकत्ता पढ़ने जाना पड़ा।

यहाँ He went to Calcutta का सीधा अनुवाद 'वह कलकत्ता गया,' कर देना ठीक नहीं है; जिक्र शिक्षा का हो रहा है, इसलिए इसका अनुवाद 'पढ़ने जाना पड़ा' ही ठीक है।

Every body in Japan from quite old men to mere babies, fly kites.

जापान में छोटे से बड़े बूढ़े तक सभी पतंग उड़ाते हैं।

यहाँ Every body के लिए प्रत्येक या हर एकके स्थान पर 'सभी' का प्रयोग अधिक उपयुक्त है।

He and his brothers had accomplished the great purpose of their lives. The moment had come for their departure from the world.

वह और उसके भाई अपने जीवन का मुख्य उद्देश्य पूर्ण कर चुके थे। अब इस संसार से बिदा होने का समय आ गया था।

(२) भावानुवाद—लेखक के भावों को समझ कर अपनी भाषा में उन्हें प्रकट करना 'भावानुवाद' कहलाता है। इस प्रकार के अनुवाद में मूल लेखक के भावों की तो उचित रक्षा की जाती है, पर अनुवादक भाषा और शैली के बंधन को नहीं मानता। इस ढंग के अनुवाद के उदाहरण देखिए—

In Calcutta he continued to attend school till he was about seventeen years old.

कलकत्ते में वह सत्रह वर्ष की अवस्था तक स्कूल जाता रहा।

To Arjun, when Krishna passed away, the whole earth became a blank.

कृष्ण की मृत्यु के पश्चात् अर्जुन के लिए सारा संसार निस्सार हो गया।

British boys spend so much of their time in play that many people think they would do more good to themselves and their country if they devoted much more of their time to study and work.

अँगरेज बालक अपना बहुत सा समय खेल कूद में बिताते हैं। कुछ लोगों का विचार है कि यदि ये इतना ही समय पढ़ने और काम करने में लगाएँ तो इससे अपना और अपने देश का अधिक उपकार कर सकते हैं।

दोनों मे अंतर—शब्दानुवाद में मूल लेखक के भावो के साथ साथ भाषा-शैली की भी रक्षा करने का प्रयत्न किया जाता है; भावानुवाद मे यह बात नहीं रहती। प्रथम प्रकार का अनुवाद करते समय मूल वाक्य में जितने उपवाक्य हों अनुवादित रचना में भी उतने ही देने का प्रयत्न किया जाता है। भावानुवाद में इतना ध्यान नहीं रखना पड़ता; वहाँ एक बड़े वाक्य का अनुवाद करते समय उसके उपवाक्यों को लेकर छोटे-छोटे वाक्य लिखने की स्वतन्त्रता अनुवादक को रहती है। यह अंतर नीचे का उदाहरण देख कर जाना जा सकता है—

Therefore he had to flee from rock to rock, and feed his family with the fruits of his native hills and bring up his son Amar Singh, in the midst of savage beasts.

शब्दानुवाद—अतएव उन्हें एक पहाड़ से दूसरे पर भागना, अपने परिवार को जंगली फल खिलाकर जीवित रखना और अपने पुत्र अमरसिंह को जंगली जानवरों के बीच में पालना पड़ता था।

भावानुवाद—इसलिए वे एक पहाड़ से दूसरे पहाड़ पर भागने को विवश थे। फलस्वरूप अपने परिवार को वे जंगली फल खिलाकर ही जीवित रख सकते थे और पुत्र अमरसिंह को जंगली जानवरों के बीच में उन्हें पालना पड़ता था।

३—स्वतन्त्रानुवाद—अनुवाद का तीसरा प्रकार स्वतंत्रानुवाद है। इसमें अनुवादक मूल लेखक की भाषा-शैली के संबंध में तो पूर्ण स्वतंत्र रहता ही है, विचारों के प्रकट करने में भी विशेष बंधन नहीं मानता। सारा परिच्छेद पढ़कर मूल लेखक के भाव वह समझ लेता है और तब अपने ढंग से भाषा में उन्हें प्रकट करता है। इस ढंग का अनुवादक यह नहीं देखता कि एक वाक्य का अनुवाद एक से अधिक में हुआ है या एक से अधिक का केवल एक वाक्य में; उसका उद्देश्य मूल लेखक के केवल विचार समझा देना होता है। अनुवाद का यह ढंग जल्दी काम करनेवाले, विशेषकर पत्रकार ही अपनाते हैं। इनके लिए केवल इतना ही बंधन रहता है कि मूल लेखक का कोई विचार छूट न जाय। विद्यार्थियों को जो अवतरण दिये जाते हैं उनका अनुवाद करते समय इतनी स्वतंत्रता से काम लेने का अधिकार नहीं रहता। इसलिए स्वतंत्रानुवाद के चक्कर में उन्हें नहीं पड़ना चाहिए।

अब प्रश्न है कि शब्दानुवाद और भावानुवाद में विद्यार्थी कौन सा ढंग अपनाएँ? मूल लेखक के भाव और विन्यास की पूर्ण रक्षा

करना बड़ा कठिन है। इसके लिए बड़ी योग्यता और अभ्यास की आवश्यकता है। अनभ्यासी यदि इस प्रकार के अनुवाद में प्रवृत्त होता है तो उसकी भाषा बड़ी शिथिल और लद्दड़ हो जाती है। ऐसी अनुवादित रचना पढने मे किसी तरह का आनन्द नहीं आता। इसलिए विद्यार्थियों को शब्दानुवाद पर अपनी दृष्टि बनाए रखकर भावानुवाद ही करना चाहिए। उनका प्रयत्न यह होना चाहिए कि मूल लेखक के सभी भाव तो अनुवाद मे आ ही जायँ, जहाँ तक हो सके, उसके विन्यास की भी रक्षा की जाय। शब्दानुवाद और भावानुवाद के बीच का मार्ग विद्यार्थियों के लिए सबसे उत्तम है। इसके पश्चात् ज्यों-ज्यों उनका अभ्यास बढ़ता जाय त्यों-त्यों उन्हें शब्दानुवाद की ओर बढना चाहिए। भावानुवाद से हमें मूल लेखक के केवल भाव ही मालूम होते हैं, परन्तु शब्दानुवाद भावों के साथ-साथ उसकी रचना-कुशलता से भी परिचित कराता है। इसलिए सफल शब्दानुवाद करके ही अनुवादक मूल लेखक के प्रति कर्त्तव्य पालन कर सकता है।

सफल अनुवाद की पहचान—अनुवाद का मुख्य उद्देश्य है मूल लेखक के विचारों और उसके लेखन-कौशल से अपनी भाषा के पाठकों को परिचित कराना। जो अनुवाद यह महत्त्वपूर्ण कार्य जितनी मात्रा मे कर सके वह उतना ही सफल कहा जायगा। मूल लेखक ने जिस उद्देश्य को लेकर अपनी रचना लिखी थी, वही यदि अनुवाद से भी पूरा होता है तो अनुवादक का श्रम सफल समझना चाहिए। उदाहरण के लिए एक निबन्ध या व्याख्यान किसी अन्याय या अत्याचार के विरोध में पाठकों या श्रोताओं को उत्तेजित करने के लिए लिखा गया है। अनुवादक इसका अपनी भाषा में अनुवाद करता है। मूल लेखक का निबध या व्याख्यान पढ या सुन कर जनता जोश से भर जाती है, क्रोध से लाल हो जाती है। अनुवादित रचना पढ या सुनकर भी यदि यही प्रभाव जनता पर पड़ता है तो

समझना चाहिए कि अनुवादक अपने श्रम में सफल हुआ है और मूल लेखक के प्रति उसने अपने कर्त्तव्य का पालन भी कर लिया है। ध्यान रखना चाहिए कि असफल अनुवाद करना जनता के प्रति अन्याय तो है ही, मूल लेखक के सामने अपराध भी है। इसलिए अनुवाद करते समय बड़ी सावधानी से काम करना चाहिए।

पद्य का अनुवाद—पद्य का अनुवाद करना और भी कठिन है। कई विद्वानों का मत है कि पद्य का ठीक-ठीक अनुवाद किया ही नहीं जा सकता। किसी सीमा तक यह कथन ठीक है। एक शीशी में भरा हुआ इत्र यदि दूसरी में उलटा जाय तो कुछ न कुछ सुगन्ध उसकी उड़ ही जायगी। इसी प्रकार सुन्दर कविता का एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद करने में काव्य का थोड़ा-बहुत सौंदर्य नष्ट हो ही जायगा। फिर भी एक भाषा के सुन्दर काव्यों का दूसरी भाषा में बराबर अनुवाद किया गया है। कालिदास, तुलसीदास आदि प्राचीन भारतीय रत्नों का ही नहीं, आधुनिक रवीन्द्रनाथ ठाकुर आदि का भी महत्व विदेशियों ने अनुवादित काव्यों से ही समझा है। परन्तु इतना निश्चित है कि काव्य के अनुवादक का कार्य गद्य के अनुवादक से कठिन है। स्व० पंडित श्रीधर पाठक ने अँगरेजी कवि गोल्ड स्मिथ के The Hermit का 'एकान्तवासी योगी' के नाम से सुन्दर अनुवाद किया था। हमारे जो विद्यार्थी कविता का अनुवाद करने की इच्छा रखते हों, उन्हें मूल और अनुवादित रचनाओं का भली-भाँति अध्ययन करना चाहिए। पश्चात्, वे इस काम में प्रवृत्त हों। उन्हें निश्चय रूप से सफलता मिलेगी।

—o—

## काव्य के अंग

**काव्य**—जो सुंदर रचना हृदय को अलौकिक आनंद प्रदान करे, वही काव्य है। कवि के हृदय मे जब इतने अधिक भाव उमडते हैं कि वे उसमे समाते नहीं, छलकने लगते हैं तब वह उन्हे शब्दो से बने पात्र मे भर देता है। मानव-समाज इस रसमय भाव का रसास्वादन करता हैं, निजी विचारो की उसमें छाया देखता है और मन्त्रमुग्ध-सा हो जाता है।

काव्य एक कला है। कला का मुख्य उद्देश्य है आनंद देना। सुंदर कविता से मन को अद्भुत आनंद मिलता है। इसलिए काव्य-कला सब कलाओं मे श्रेष्ठ है। मनोरंजन के अतिरिक्त काव्य का एक उद्देश्य यह भी है कि वह मनुष्य की सद्वृत्तियों को जाग्रत और उत्तेजित करे। देशप्रेम की कविता पढ़ने-सुनने से हमारे हृदय मे देश-प्रेम की भावना का उदय होता है। इसी से काव्य मानव-समाज के लिए उपयोगी भी है।

**काव्य के विषय**—मानव-जीवन और प्रकृति काव्य के दो प्रधान विषय हैं। मनुष्य के हृदय की भावना, उसका आदर्श उसकी आकांक्षा, आदि का वर्णन करना कवि का एक ओर उद्देश्य रहता है तो दूसरी ओर रम्य और प्रतिक्षण नूतन रूप धारण करने वाली प्रकृति के अद्भुत दृश्यों का। हृदय का भाव और प्रकृति का रूप पुस्तक के पृष्ट की तरह, खुला तो सभी के लिए रहता है, परन्तु उसका समझना, उसका संदेश सुनना, उसमे लीन हो जाना सबके वश की बात नहीं है। यह सौभाग्य केवल कवि को ही प्राप्त होता है।

अतएव कवि वही है जो मानव जीवन की प्रत्येक क्रिया और प्रकृति के कण कण की गति मे कुछ विशेषता लक्ष्य करता है. विशेष संदेश पाता है; उसमे अपनी वृत्ति को लीन करके विशेष रूप से उसका वर्णन करता है। कवि का आदर्श है मानव जीवन के सुख-दुख,

उद्देश्य-आदर्श आदि की व्याख्या करना और प्राकृतिक सौंदर्य का वर्णन करना। इस आदर्श की पूर्ति करते समय उसे जो सुख प्राप्त होता है, उसका अनुभव साधारण मनुष्य नही करता और न उसका मूल्य ही आँका जा सकता है। इसी प्रकार काव्य का रसास्वादन करने वाले को जो आनद प्राप्त होता है, वह संसार के समस्त सुख भोगने के आनंद से बढकर है।

**रचना-शैली के अनुसार काव्य के भेद**—काव्य रचना गद्य मे भी होती है और पद्य मे भी। इस कारण काव्य के दो प्रधान भेद हैं—( १ ) गद्यकाव्य—जैसे उपन्यास, कहानी, निबंध। ( २ ) पद्यकाव्य—जैसे रामचरितमानस, साकेत, प्रियप्रवास। जिस रचना मे इन दोनों का मेल रहता है उसे 'मिश्र' या चंपू काव्य कहते हैं। हिंदी मे इस ढग की रचनाएँ कम हैं।

प्रयोजन के अनुसार भी काव्य के दो भेद होते हैं—( १ ) दृश्य काव्य जैसे नाटक। ऐसे काव्य का पूर्ण आनद उस समय प्राप्त होता है जब उसका अभिनय देखा जाय ; केवल पढने से इसका पूरा आनद नहीं मिलता। ( २ ) श्रव्य काव्य—जिस रचना का पूर्ण आनद सुनने या पढने से ही प्राप्त हो जाय जैसे रामचरितमानस, गोदान उपन्यास, साधारण कहानियाँ।

जीवन की कथा या दशा के वर्णन की दृष्टि से काव्य के दो भेद होते हैं—( १ ) प्रबध काव्य—जिसमें किसी व्यक्ति या अन्य प्राणी के जीवन की कथा वर्णित हो। इस प्रकार की रचना मे सभी छंद एक दूसरे से इस प्रकार सबद्ध रहते हैं कि एक का अर्थ समझने के के लिए आगे-पीछे का प्रसंग जानना पड़ता है। इसलिए ऐसी रचना के फुटकर छदों के पढ़ने पर उनका पूरा आनद नहीं मिलता। ( २ ) मुक्तक काव्य—जिस काव्य के सब छद विषय और अर्थ की दृष्टि से स्वतत्र और पूर्ण हों। ऐसी रचना मे एक छंद का अर्थ समझने के

लिए आगे-पीछे के छद पढने की आवश्यकता नहीं होती और प्रत्येक छद का पूर्ण आनद उसे पढते-समझने ही प्राप्त हो जाता है।

प्रबध काव्य के दो भेद और होते हैं— (क) महाकाव्य—जिस रचना मे सारे जीवन की लबी कथा कही गयी हो जैसे रामचरितमानस। (ख) खडकाव्य—जिस रचना मे जीवन की सारी कथा न लेकर केवल एक प्रसग का वर्णन किया गया हो जैसे जयद्रथ-वध, अभिमन्यु-वध, पचवटी।

रमणीयता की दृष्टि से काव्य के तीन भेद हैं— (१) उत्तम-काव्य–जिस रचना मे ध्वनि या व्यग्यार्थ की प्रधानता हो। (२) मध्यम-काव्य–जहाँ ध्वनि या व्यग्य साधारण श्रेणी का हो। (३) अवर-(अधम) काव्य—जहाँ व्यग्य का अभाव हो। ऐसी रचना में केवल अलंकारों की अधिकता रहती है।

'ध्वनि' या 'व्यग्य' शब्द का प्रयोग, ऊपर के परिच्छेद में. साधारण अर्थ में नहीं किया गया है। यह शब्दो के अर्थ से संबध रखनेवाली विशेष शक्ति है। शब्दो का मूल्य उनके अर्थों के कारण ही होता है। अर्थो में ही शब्दों की शक्ति छिपी रहती है और उन्हीं के द्वारा मनुष्य पर शब्दों का प्रभाव पड़ता है। प्रत्येक शब्द का एक सीधा-सादा सामान्य अर्थ रहता है और दूसरा साकेतिक अर्थ जो प्रसग समझने पर ज्ञात होता है। 'गधा' शब्द सीधा सादा है और एक पशु का बोध कराता है; परन्तु किसी की मूर्खता का काम देखकर जब कहा जाता है—वह तो बिलकुल गधा है—तब 'गधा' का अर्थ होता है 'मूर्ख'। इस तरह शब्दशक्तियाँ तीन प्रकार की होती हैं—

(१) अभिधा शक्ति—शब्दों का जो साधारण अर्थ, कोश आदि की सहायता से, सबको ज्ञात हो जाता है उसे वाच्यार्थ कहते हैं। यह अर्थ बतानेवाला शब्द वाचक कहलाता है और जिस शक्ति के द्वारा यह अर्थ ज्ञात होता है वह अभिधा कहलाती है। 'लखनऊ का नवाब', 'धोबी का गधा', 'आदमी मोटा है' जैसे वाक्यो में 'नवाब'

'गधा' और 'मोटा' शब्द का सीधा-सादा अर्थ लिया गया है। इसी तरह, प्रसंग के सबध से, एक शब्द के कई अर्थों में से एक अभिधा शक्ति के द्वारा ही जाना जाता है; जैसे—राम-कृष्ण ब्रजभूषन जानौ। 'राम' शब्द साधारणतः परशुराम, रामचद्र और बलराम के लिए आता है; परंतु यहाँ कृष्ण के संबध के कारण इसका अर्थ 'बलराम' ही लिया जायगा।

( २ ) लक्षणा शक्ति—शब्द के सीधे-सादे अर्थ को छोड़कर स्थिति या सबध के अनुसार किसी प्रचलित 'रूढ़ि' या प्रयोजन के कारण जो विशेष अर्थ समझा जाता है उसे लक्ष्यार्थ कहते हैं। यह अर्थ बतानेवाला शब्द लक्षक कहलाता है और जिस शक्ति के द्वारा यह अर्थ ज्ञात होता है वह लक्षणा कहलाती है। किसी की लापरवाही, मूर्खता या धन देखकर यह कहना—वह तो 'नवाब' हो रहा है, वह बिलकुल 'गधा' है। काफी 'मोटा' आसामी फाँसा है, लक्ष्यार्थ का उदाहरण है। कारण, इन वाक्यो मे 'नवाब', 'गधा' और 'मोटा' के सीधे सादे अर्थ न लेकर प्रसंग से सबधित विशेष अर्थ 'लापरवाह', मूर्ख और 'धनी'—लिये गये हैं। एक उदाहरण और—

कोऊ कोरिक संग्रहौ, कोऊ लाख हजार।
मो संपति जदुपति सदा बिपति बिदारन हार॥

यहाँ जदुपति कृष्ण को 'सपत्ति' कहा है। अतएव यह शब्द साधारण धन-दौलत का द्योतक न होकर अपनाने या प्राप्त करने योग्य उत्तम पात्र का द्योतक है।

( ३ ) व्यजना शक्ति—शब्द का वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ छोड़कर जो विलक्षण अर्थ कभी कभी ज्ञात होता है, वह 'व्यग्यार्थ कहलाता है। यह अर्थ बतानेवाला शब्द व्यंजक कहलाता है और जिस शक्ति के द्वारा यह अर्थ ज्ञात होता है वह व्यजना कहलाती है। एक मित्र ने कहा—शरीफो में बैठकर इस तरह कहकहे नही लगाये जाते। दूसरे ने

उत्तर दिया—ठीक है, शरीफों मे बैठकर इस तरह कहकहे नही लगाये जाते। इस उत्तर का व्यग्यार्थ यह है कि आप लोग शरीफ हैं ही कब। दूसरा उदाहरण—

हंस-वस दसरथ-जनक राम लखन से भाइ।
जननी तू जननी भई, विधि-सन कहा बसाइ ॥

यहाँ भरत जी कैकेयी के अनुचित कर्म की निंदा करते हुए वश की श्रेष्ठता, पिता की श्रेष्ठता और भाइयों के व्यवहार की श्रेष्ठता की ओर संकेत करके 'जननी' के कर्म की तुच्छता बता रहे हैं। यह अर्थ व्यंजना शक्ति द्वारा ही निकलता है। व्यजना शक्ति से व्यग्यार्थ का बोध होता है।

काव्य के गुण—लेखक अपनी कृति को सुन्दर से सुन्दर रूप में पाठक के सामने रखना चाहता है। यही प्रयत्न कवि का भी रहता है। अपने काव्य को जिन गुणो की सहायता से वह विशेष प्रभावशाली या लोकप्रिय बनाता है, वे तीन हैं—

( १ ) माधुर्य गुण—जिस गुण की सहायता से कवि अपनी रचना को मधुर बनाता है। इस गुण का सबध प्रायः शब्दों की बनावट से होता है। इसके लिए वह ट ठ ड ढ ण च्च आदि को छोड़कर शेष अक्षरों वाले शब्दों का प्रयोग करता है। अनुस्वार भी ऐसी रचना में अधिक प्रयुक्त होते हैं और समास भी छोटे छोटे ही अपनाये जाते हैं। रेफ और द्वित्व शब्दों का त्याग ऐमी रचना में किया जाता है। इस गुण का सम्बन्ध विशेष रूप से शृंगार, करुण और शात रसो से है, और साधारण सबन्ध हास्य तथा अद्भुत से। माधुर्यगुणपूर्ण रचना पढ़ने में बडी मधुर जान पड़ती है। उदाहरण—

सुनि सुन्दर बैन सुधा रस साने सयानी हैं जानकी जानी भली।
तिरछे करि नैन दै सैन तिन्हें, समुझाइ कछू मुसुकाइ चली ॥
तुलसी तेहि औसर सोहैं सबै अवलोकति लोचन लाहु अली।
अनुराग-तड़ाग मे भानु उदै विगसी मनो मंजुल कंज कली ॥

( २ ) ओज गुण—इस गुण का विशेष सबन्ध वीर और रौद्र रसों से तथा साधारण सम्बन्ध बीभत्स और भयानक रसो से होता है। यह गुण भी, माधुर्य की तरह, शब्दों की बनावट ही से सम्बन्ध रखता है। अतएव कविता मे इस गुण को लाने के लिए ऐसी भाषा का प्रयोग किया जाता है जिसमें ( क ) द्वित्व वर्ण ( क्क, च्च, ट्ट, त्त, प्प आदि ) ( ख ) संयुक्त वर्ण ( क्ख, ग्घ, च्छ, ज्झ, ड्ड, ड्ढ, त्थ, द्ध, प्फ, ब्भ आदि ) ( ग ) रेफ और अर्द्ध रकार ( र्ं, र्ध, क्र, स्र, ग्र, आदि ) और ( ४ ) ट, ठ, ड, ढ, श, आदि अक्षरों से बननेवाले शब्दों की और लबे लबे समासों की अधिकता हो। इस प्रकार की भाषा का उच्चारण करते समय शब्दों पर विशेष बल देना पड़ता है और इससे रचना प्रभावशालिनी हो जाती है। उदाहरण—

बज्जिय घोर निसान रान चौहान चहौ दिस।
सकल सूर सामत समरि बल तत्र म त्र तिस।
उट्ठि राज प्रिथिराज बाग मनो लग्ग बीर नट।
कढ़त तेग मन बेग लतग मनो बीजु भट्ट घट।
थकि रहे सूर कौटिक गगन, रँगन मगन भई शोनधर।
हृदि हरषि बीर जग्गे हुलसि हुरेउ रग नव रत्त बर॥

(३) प्रसाद गुण—प्रथम दो गुणों का सम्बन्ध, जैसा ऊपर कहा जा चुका है, शब्दों की बनावट से होता है। इसके विपरीत, प्रसाद गुण का सबंध शब्दों के अर्थ से रहता है। अतएव जिस रचना में सीधा-सादा अर्थ रखनेवाले सरल शब्दों का प्रयोग अधिक होता है, वह प्रसादगुण युक्त समझी जाती है। माधुर्य और ओजपूर्ण रचनाओं का अर्थ समझने के लिए पाठक को कुछ देर रुकना पड़ता है, परन्तु प्रसादगुण युक्त रचना की विशेषता यह है कि पढते-पढ़ते ही उसका अर्थ स्पष्ट हो जाता है। अर्थ से सम्बन्ध रखने के कारण प्रसादगुणयुक्त रचनाएँ सभी रसों की मिलती हैं। उदाहरण—

बढ़ जाता है मान वीर का, रण में बलि होने से।
मूल्यवती होती सोने की भस्म यथा सोने से॥
रानी से भी अधिक हमे अब यह समाधि है प्यारी।
यहाँ निहित है स्वतन्त्रता की, आशा की चिनगारी॥
इससे भी सुन्दर समाधियाँ हम जग मे हैं पाते।
उनकी गाथा पर निशीथ में क्षुद्र जंतु ही गाते॥
पर कवियों की अमर गिरा मे, इसकी अमिट कहानी।
स्नेह और श्रद्धा से गाती है वीरों की बानी॥

काव्य के अग—काव्य के तीन प्रधान अग हैं—(१) रस और भाव (२) भाषा और अलंकार (३) छंद शास्त्र या पिंगल। काव्य की रचना के पूर्व इन तीनो अगों का ज्ञान आवश्यक होता है। आगे इन्हीं की चर्चा की जायगी।

## रस

रामायण का 'रामवन गमन प्रसग' पढ़ते-पढ़ते आँसू बहने लगते हैं; दुष्यन्त और शकुंतला की कथा प्रेम में मग्न कर देती है; आल्हा सुनकर भुजाएँ फड़कने लगती हैं। कविता पढ़ते पढ़ते हृदय के भावों का इस प्रकार प्रकट हो जाना इस बात का द्योतक है कि पाठक या श्रोता अपने को भूलकर ऐसे आनद मे मग्न है जो साधारण आनंद से बहुत बढ़कर है। इसी असाधारण या अलौकिक आनन्द का नाम रस है। ध्यान देने की बात यह है कि कविता-पाठ या नाटक-दर्शन से 'रस' की उत्पत्ति के लिए जो भाव जागते हैं वे हृदय मे सोये रहते हैं, कहीं बाहर से नहीं आते। कविता पाठ से या कोई दृश्य देखकर इन सोते हुए भावों को ठेस लगती है और वे जाग जाते हैं।

कविता के लिए नौ रस माने गये हैं—शृगार, हास्य, अद्‌भुत, करुण, रौद्र, बीभत्स, वीर, भयानक, शांत। रस के चार अग हैं जिनकी सहायता से वह पूर्णता को प्राप्त होता है—

(१) स्थायी भाव--जो भाव मनुष्य के हृदय में सदा (स्थायी रूप से) वर्तमान रहते हैं और स्थिति, घटना या दृश्य की ठेस लगने पर जाग्रत होते हैं। प्रत्येक रस का एक स्थायी भाव होता है। इसलिए इनकी सख्या भी नौ है - रति या प्रेम (शृंगार रस), हँसी (हास्य रस), शोक (करुण रस), क्रोध (रौद्र रस, उत्साह (वीर रस), भय (भयानक रस), जुगुप्सा, ग्लानि या घृणा (बीभत्सरस), आश्चर्य (अद्भुत रस), और निर्वेद, शम या शाति (शात रस)। स्थायी भावों की विशेषता यह है कि ये विरोधी-अविरोधी भावो से न दबते हैं न उनमे छिपते हैं और रस की पूर्णता तक उसके साथ रहते हैं।

(२) विभाव--हृदय मे सोते हुए स्थायी भाव जिन कारणों से जाग्रत होते हैं उन्हें 'विभाव'' कहते हैं। इनके दो प्रकार होते हैं--(क) आलबन विभाव--वह पात्र या पात्री जिसे देखकर स्थायी-भाव जागे, जैसे शकुतला को देखकर दुष्यन्त के मन में प्रेम जागा। शृ गाररस का आलबन 'प्रेम मात्र' होता है, करुणरस का 'मृतव्यक्ति' और रौद्ररस का 'शत्रु'। ( ख ) उद्दीपन विभाव--आलबन विभाव के कारण मन में जागे हुए स्थायीभाव को बढ़ानेवाली बातें; जैसे फूलों की सुगध, चाँदनी रात, एकात स्थान इन बातों ने दुष्यन्त का प्रेम और बढ़ा दिया।

(३) अनुभाव--स्थायी भाव के जागने और 'विभाव' की सहायता से बढ़ जाने पर जो शारीरिक चेष्टाएँ की जायँ और जिनसे मालूम हो जाय कि व्यक्ति के मन मे अमुक भाव पैदा हो गया है, उन्हें अनुभाव कहते हैं। दुष्यन्त का शकुतला की ओर प्रेम से देखने लगना, कटाक्ष करना, हृदय पर हाथ रख लेना आदि चेष्टाएँ अनुभाव हैं। इसी तरह क्रोध में होठ काटना, दाँत किटकिटाना, आँखें निकालना, हँसी में मुख खिल जाना, हो हो करना, शोक मे रो पड़ना आदि क्रियाएँ भी अनुभाव कहलाती हैं।

(४) व्यभिचारी या संचारी भाव—स्थायी भावों के साथ कुछ और भाव भी होते हैं जो सदा बने तो नहीं रहते पर समय पर याद आकर रस के पूर्ण होने में सहायता देते हैं। हृदय में उठते हुए भाव को एक बढ़ावा देना इनका काम है और इसके पश्चात वे विलीन हो जाते हैं। किसी दुष्ट की दुष्टता देखकर आप को क्रोध आ रहा है, उसी समय आपको याद आता है कि कई बार ऐसी ही दुष्टता के काम यह दुष्ट चुका है। उन पुरानी बातों की याद आते ही आप का क्रोध बहुत बढ़ जायगा। अतएव यह 'याद' 'संचारी भाव' होगी जो आप के क्रोध को बढ़ावा देकर लुप्त हो जायगी। इसी प्रकार लज्जा का भाव, आशा, उत्साह आदि 'संचारी भाव' हैं जो प्रेम की भावना को बढ़ावा देकर विलीन हो जाते हैं।

इस प्रकार विभाव, अनुभाव और संचारी भाव—तीन की सहायता से स्थायी भाव का पूर्ण अवस्था पर पहुँच जाना रस कहलाता है। नीचे करुण रस का एक उदाहरण दिया जा रहा है—

मात को मोह न द्रोह बिमात को सोंच न तात के गात दहे को।
भ्रात को छोभ न, बन्धु बिछोभ न, राज को लोभ न मोद रहे को।
एते पै नेक न मानत 'श्रीपत' एते मैं सीय बियोग सहे को।
तारन-भूमि मैं राम कह्यौ, मोहि सोच बिभीषण भूप कहे को॥

लक्ष्मण के शक्ति लगने पर राम विलाप कर रहे हैं। उनका शोक स्थायी भाव है। लक्ष्मण आलंबन विभाव हैं। युद्ध क्षेत्र, मृत शरीर, लक्ष्मण की वीरता आदि उद्दीपन विभाव हैं। राम का दुखी होना, विलाप करना आदि अनुभाव हैं। विभीषण को राजा बनाने का ध्यान और स्मृति संचारीभाव हैं।

नौ रसों के स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव और संचारीभावों की सूची नीचे दी जाती है—

(१) शृंगार रस—रति या प्रेम स्थायी भाव है। नायक-नायिका आलंबन विभाव और वाटिका, चाँदनी, शीतल मंद सुगंधित पवन, वसंत ऋतु, एकांत स्थान आदि उद्दीपन विभाव है। प्रेमपूर्वक देखना, कटाक्ष

करना, हृदय पर हाथ रखना, आदि अनुभाव हैं। मोह, स्मृति, गर्व, उत्सुक्कता, हर्ष, लज्जा, निद्रा, आवेग, उन्माद, चपलता आदि संचारीभाव हैं।

( २ ) हास्य रस—हास स्थायीभाव है। उलटी पुलटी बात कहनेवाला या गड़बड़ वेश वाला व्यक्ति आलम्बन विभाव है, उसकी गड़बड़ बात या भेष, हँसमुख मित्रों का जमघट आदि उद्दीपन विभाव हैं। होहो करना, खिलखिलाना, खीसे निकालना आदि अनुभाव हैं। चपलता, उत्सुक्ता, आलस्य आदि सचारीभाव हैं।

( ३ ) करुण रस—शोक स्थायीभाव है। दुखी, पीड़ित या मृत व्यक्ति आलबन विभाव और उससे सबंध रखने वाली वस्तुओं को तथा अन्य सबंधियों को देखना उद्दीपन विभाव। भाग्य को कोसना, रोना, विलाप करना, पृथ्वी पर गिरना, सिर पीटना, छाती कूटना—अनुभाव हैं। मोह, व्यधि, ग्लानि, स्मृति श्रम, विषाद, उन्माद, जड़ता, चिंता आदि सचारी भाव हैं।

( ४ ) रौद्ररस—क्रोध स्थायीभाव है। अपराधी, शत्रु या दुष्ट आलंबन विभाव और उसकी पिछली करतूतें उद्दीपन हैं। आँखें लाल होना, त्योरी चढ़ना, दाँत किटकिटाना आदि अनुभाव हैं। मद, उग्रता, झुँझलाहट, स्मृति आदि सचारीभाव हैं।

( ५ ) वीररस—उत्साह स्थायीभाव है। उन्नत शत्रु आलंबन विभाव और रण के बाजे, शत्रुओं की ललकार आदि उद्दीपन हैं। सेना-सचालन, भुजा फड़कना, ललकारना, वार करना आदि अनुभाव हैं। हर्ष, गर्व, धैर्य आदि सचारी भाव हैं।

( ६ ) भयानक रस—भय स्थायीभाव है। भयानक जतु, बलवान, अपराधी, क्रूरशत्रु, आदि आलंबन विभाव और शून्य स्थान तथा उनकी भयानक क्रियाएँ उद्दीपन विभाव हैं। काँपना, चेहरा सफेद हो जाना, रोएँ खड़े होना, घिग्घी बँधना आदि अनुभाव हैं। विषाद, चिंता, पिछली क्रूरता की स्मृति आदि संचारीभाव हैं।

( ७ ) बीभत्स रस—ग्लानि या घृणा स्थायी भाव है। मांस का लोथड़ा, रक्त, हड्डी, कंकाल आदि आलंबन विभाव और इनका सड़ना, कीड़े पड़ना, पशु-पक्षियों का नोच-खसोट कर खाना आदि उद्दीपन हैं। मुँह बिगाड़ना, थूकना, कँपकँपी होना, आँख मूँदना आदि अनुभाव हैं। मोह आवेग, व्याधि, मरण, पुरानी स्मृति आदि संचारीभाव हैं।

( ८ ) अद्भुत रस—विस्मय स्थायीभाव है। अद्भुत वस्तु या कार्य आलंबन विभाव है और विचित्रता उद्दीपन विभाव। रोमांच, कंप, हक्काबक्का रह जाना आदि अनुभाव हैं। विचार, भ्रम, हर्ष, मोह, स्मृति आदि संचारीभाव हैं।

( ९ ) शांतरस—निर्वेद या शम स्थायीभाव है। संसार की नश्वरता, ईश्वर की भक्ति और ज्ञान आदि आलंबन विभाव हैं और सत्संग, तीर्थ स्थान, मंदिर आदि उद्दीपन। प्रेम से आँसू बहाना, गद्गद् हो जाना आदि अनुभाव हैं और धैर्य, मति, हर्ष, स्मृति, पुरानी कथाएँ आदि संचारीभाव हैं।

## अलंकार

मनुष्य अपना भाव प्रकट करता है 'शब्दों' द्वारा और उसे दूसरे व्यक्ति समझते हैं 'अर्थ द्वारा'। इसलिए कवि या लेखक की दृष्टि में 'शब्द' और 'अर्थ' दोनों का प्रायः समान महत्व रहता है। यद्यपि कुछ लोग 'शब्द' पर और कुछ 'अर्थ' पर अधिक ध्यान देते हैं तथापि आज तक शायद कोई भी कवि या लेखक ऐसा नहीं हुआ जिसने इन दो में से केवल एक का ही सम्मान किया हो और दूसरे का तिरस्कार। वास्तव में 'शब्द' काव्य का 'शरीर' है और अर्थ उसका 'हृदय'।

समाज में दूसरों को प्रभावित करने या दूसरों की दृष्टि में अपना मान-पद बढ़ाने के लिए हम हृदय को विशाल दिखाना चाहते हैं। हमारा प्रयत्न होता है कि दूसरे हमारे विचार को पवित्र, आदर्श को ऊँचा और भाव को स्वार्थरहित समझें। इसी प्रकार शरीर और वेशभूषा को भी

सुन्दर, आकर्षक और सुरुचिपूर्ण बनाना हमारा ध्येय रहता है और इसका उद्देश्य भी उक्त ही है।

काव्य-रचना करते समय कवि का उद्देश्य, आदर्श और प्रयत्न भी ऐसा ही रहता है। हृदय और शरीर को सुन्दर दिखाने के लिए उच्चाशय और सुन्दर वस्त्राभूषणों का सहारा लिया जाता है। इसी प्रकार काव्य को सजाने के लिए 'अलंकारों' का सहारा कवि लेता है। इस शब्द का अर्थ है आभूषण या गहना। सुन्दर सजी हुई अर्थात् अलकृत भाषा में जो बात चमत्कारपूर्ण ढग से कवि कहता है वह पाठक के मन को विशेष प्रिय लगती है। जो अलकार केवल भाषा को सजाने के लिए आते हैं उन्हें 'शब्दालंकार' कहते हैं और जो अर्थ की सुन्दरता बढ़ाते हैं उन्हें 'अर्थालंकार'। जो अलंकार शब्द और अर्थ दोनों की सुन्दरता बढ़ाते हैं वे 'उभयालंकार' ( उभय = दोनों ) कहलाते हैं।

## शब्दालंकार

भाषा को सजाने के लिए जिन अलकारों का सहारा लिया जाता है, वे शब्दालंकार कहलाते हैं। इस सबध में ध्यान रखने की बात यह है कि शब्दालंकार के सहारे केवल शब्दों मे सजावट या चमत्कार होता है। अतएव रचना मे जिस शब्द का प्रयोग कवि ने किया है उसके पर्याय-वाची मे वह चमत्कार या सौंदर्य नहीं आ सकता। मुख्य शब्दालकार ये हैं—

( १ ) अनुप्रास—एक ही अक्षर का बार-बार प्रयोग करना। जैसे—तरनि-तनूजा-तट-तमाल-तरुवर बहु छाये। यहाँ 'त' अक्षर कई बार आया है। इस अलंकार के तीन भेद हैं—

( क ) छेकानुप्रास—जब एक या अनेक अक्षर केवल दो बार प्रयुक्त हों, जैसे—

राधा के बर बैन सुनि, चीनी चकित सुभाय।
दाख दुखी मिसरी मुरी, सुधा रही सकुचाय॥

यहाँ 'बरबैन', 'चीनी चकित', 'मिसरी मुरी', दाख दुखी',

'सुआ सकुचाय' मे ब, च, म, द, ख, स अक्षर केवल दो-दो बार आये है।

( ख ) वृत्यनुप्रास—एक या अनेक अक्षरों का दो से अधिक बार आना ; जैसे—सत्य—सनेह—सील—सुख—सागर में 'स' अक्षर पाँच बार आया है।

(ग) लाटानुप्रास—जहाँ शब्द या वाक्य दोहराये जायँ, उनका अर्थ एक ही हो, परतु अन्वय करने पर आशय बदल जाय , जैसे—

तीरथ-व्रत-साधन कहा, जो निसदिन हरि-गान।
तीरथ व्रत-साधन कहा, बिन निसदिन हरि-गान ॥

यहाँ दोनों पक्तियों के शब्द एक ही अर्थ मे प्रयुक्त हैं परंतु अन्वय करने पर आशय भिन्न हो जाता है। पहली पक्ति—यदि दिन रात ईश्वर का भजन करते हो तो तीर्थ-व्रत आदि के चक्कर मे पडने की आवश्यकता ही क्या ? दूसरी पक्ति—यदि दिन-रात मे ईश्वर का भजन ही नही करते तो तीर्थ-व्रत करना भी व्यर्थ ही है।

(२) यमक—एक शब्द का बार-बार प्रयोग हो परन्तु अर्थ हर बार भिन्न रहे ; जैसे—तीन 'बेर' खातीं ते वे बीन 'बेर' खाती हैं। पहले 'बेर' का अर्थ है बार या समय और दूसरे का बेर के फल।

(३) श्लेष—जब एक ही शब्द का प्रयोग किया जाय परंतु उसके अर्थ एक से अधिक निकले ; जैसे—मंगन को देखि 'पट देत' बार-बार हैं। यहाँ 'पट देत' के दो अर्थ हैं—(क) वस्त्र दान करना। (ख) दरवाजा बन्द करना। पहला अर्थ दानियो के लिए है कि वे भिखमगो को वस्त्र दान करते हैं। दूसरा अर्थ कजूसो के लिए है कि वे भिखमंगो को देखते ही द्वार बन्द कर लेते हैं कि कुछ देना न पड़े।

(४) वक्रोक्ति—जब कहने वाला एक शब्द का प्रयोग एक अर्थ मे करे और सुनने वाला उसका दूसरा अर्थ समझे ; जैसे—को तुम ! हरि प्यारी। कहा बानर को पुर काम। हरि शब्द का एक अर्थ है विष्णु और दूसरा है बानर। (इस शब्द के और भी अर्थ हैं)। एक दिन विष्णु ने

दरवाजा खटखटाया । लक्ष्मी ने पूछा—कौन ? विष्णु ने अपना नाम बताया—मैं हूँ हरि । लक्ष्मी जी को हँसी सूझी ; उन्होंने 'हरि' शब्द का दूसरा अर्थ 'बानर' लगाकर पूछा—यहाँ बंदर का क्या काम है ?

वक्रोक्ति के दो भेद होते हैं—(क) श्लेष वक्रोक्ति—जिसमें श्लेष के द्वारा एक शब्द के एक से अधिक अर्थों का सहारा लेकर सुननेवाला कहनेवाले से भिन्न अर्थ निकाले । इसका उदाहरण ऊपर दिया जा चुका है । (ख) काकु वक्रोक्ति—जहाँ कंठ की ध्वनि को बदलने से सुननेवाला कही हुई बात का भिन्न अर्थ निकाल ले ; जैसे--

क्यों ह्वै रह्यो निरास कहि हरि नहिं हरिहैं बिपति ।
राखिय दृढ़ विश्वास, हरि ह्वै नहिं हरिहैं बिपति ॥

एक व्यक्ति कहता है—हरि मेरी विपत्ति नहीं हरेंगे (हरि नहि हरिहैं विपति) । दूसरा इसी कथन पर जोर देकर उसे प्रश्नवाचक बनाकर अर्थ बदल देता है—अरे कैसी बातें करते हो ; नाम है हरि, और तुम्हारी विपत्ति नहीं हरेंगे (नहि हरिहैं विपत्ति ?) विश्वास रखो, अवश्य हरेंगे ।

(५) वीप्सा—आश्चर्य, घृणा, प्रेम आदि भावावेश को प्रकट करने के लिए एक शब्द का कई बार प्रयोग करना ; जैसे—(क) घृणा—राम ! राम !! ऐसा न करो । (ख) ऊबना—माफ करो, माफ करो ; मुझे मत छेड़ो । तंग आ गया हूँ मैं तुम्हारे इस प्यार से ।

(६) पुनरुक्तवदाभास—एक से अधिक पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग इस ढंग से करना कि उनका अर्थ भिन्न हो—पुनि फिरि राम निकट सो आयी—में 'पुनि' का अर्थ है पुनः और 'फिरि' का अर्थ है लौट कर ।

## अर्थालंकार

ये अलंकार शब्दों के अर्थ के कारण होते हैं । अतएव यदि एक शब्द के स्थान पर उसका पर्यायवाची ( वही अर्थ रखने वाला शब्द ) लिख दिया जाय, तब भी अर्थ का चमत्कार बना रहेगा । मुख्य अर्थालंकार ये हैं ।

( १ ) उपमा—जहाँ एक वस्तु की समानता दूसरी से दिखायी जाय जैसे–मुख चद्रमा के समान सुंदर है।

उपमा अलकार के चार अग होते हैं— ( क ) उपमेय--जिस वस्तु या पात्र का वर्णन किया जाय, जैसे ऊपर के वाक्य में 'मुख' ( ख ) उपमान—जिस वस्तु या पात्र से उपमेय की तुलना की जाय, जैसे चद्रमा ( ग ) साधारण धर्म—उपमेय और उपमान मे जो समानता बतायी जाय, जैसे 'सुंदर'। ( घ ) जिस शब्द के द्वारा उपमेय और उपमान की समानता सूचित हो, जैसे– 'समान'। इसी तरह सा, इव, तुल्य, लौं, सदृश, सम, ज्यों, जैसे, जिमि, इमि, आदि शब्द भी वाचक होते हैं।

उपमा के दो भेद होते हैं— ( क ) पूर्णोपमा—जब उपमा के चारो अंग वर्तमान हों। ऊपर का वाक्य इसका उदाहरण है। ( ख ) लुप्तोपमा—जब उपमा के चारों अंगों में से एक, दो या तीन का लोप हो। जैसे--मुख चंद्रमा के समान है। यहाँ साधारण धर्म 'सुंदर' का लोप है। सरस विमल विधु बदन सुहावन—यहाँ वाचक 'सरिस' का लोप है। उपमेय 'नयन' का लोप नीचे के सोरठे मे देखिए—

चचल हैं ज्यों मीन, अरुनारे पंकज सरिस।
निरखि न होय अधीन ऐसो नर नागर कवन॥

( २ ) अनन्वय—जहाँ उपमेय और उपमान एक ही हों; जैसे—राम से राम, सिया सी सिया, सिरमौर विरचि विचारि सँवारे। यहाँ राम को राम के और सीता को सीता के समान कहा गया है।

( ३ ) प्रतीप—जहाँ उपमान को उपमेय कहा जाय या उपमेय से उपमान को हीन ठहराया जाय अथवा दोनों की समता ही अनुचित बतायी जाय।

( क ) जैसे—गरब करत कत चाँदनी, हीरक छीर समान।
फैलो इती समाजगत, कीरति सिवा खुमान॥

( ख ) राम रावरे बदन की सरवरि करत मयक।
ते कवि गन झूठे जगत, लखि मलीन सकल क॥

पहले उदाहरण मे शिवा की चारों ओर फैली हुई कीर्ति की चर्चा करते हुये कवि चाँदनी का निरादर करता हुआ पूछता है कि तू गर्व किस बात का करती है, शिवा की कीर्ति तुझसे अधिक उज्ज्वल है, अधिक व्यापक है। दूसरे उदाहरण में मलीन और कलंकित चद्र से राम के मुख की उपमा देना कवि अनुचित ठहराता है क्योंकि राम का मुख सदैव् प्रफुल्ल रहता है और सर्वथा निष्कलंक है।

( ४ ) रूपक—जहाँ उपमेय और उपमान में कोई भेद न रह जाय अर्थात उपमेय को उपमान का ही रूप कहा जाय, जैसे—मुख–चद्र।

रूपक के दो भेद होते हैं—( क ) अभेद रूपक—जहाँ उपमेय और उपमान में कोई भेद न रहे और उनके अग भी एक से हो; जैसे—

नारि-कुमुदिनी अवध-सर रघुवर-बिरह दिनेस।
अस्त भये बिकसित भईं, निरखि राम राकेस॥

अवध, नारियाँ, राम का विरह, और राम ( का दर्शन )—इनसे सर ( तालाब ), कुमुदिनी ( रात मे खिलनेवाली कुई ), दिनेश ( सूर्य ) और राकेश ( चद्रमा ) की अभेदता दिखाई गयी है।

( ख ) तद्रूप रूपक—जहाँ उपमेय और उपमान को अलग बताकर भी एकसा और एक ही कार्य करनेवाला कहा जाय, जैसे—

रच्यौ बिधाता दुहुँन लै, सिगरी सोभा-साज।
तू सुंदरि, सचि दूसरी, यह दूजो सुरराज॥

यहाँ दूसरी शची ( इद्र की पत्नी ) और सुरराज ( इंद्र ) कहने से उपमेय और उपमान को अलग तो किया गया है पर है उपमेय उसी का रूप।

(५) दीपक—जहाँ उपमेय और उपमान दोनों का धर्म (विशेषता का कार्य) एक ही बताया जाय ; जैसे गज मद सौ नृप तेज सौ सोभा लहत बनाय। यहाँ राजा और हाथी दोनों का धर्म ( शोभा पाना ) एक ही बताया गया है।

( ६ ) उल्लेख—जहाँ एक व्यक्ति का अनेक प्रकार से वर्णन हो। यहाँ राम के अनेक रूप भिन्न-भिन्न लोगो को दिखायी दे रहे हैं—

जनक जाति अवलोकहि कैसे। सजन सगे प्रिय लागहि जैसे।
सहित विदेह विलोकहिं रानी। सिसु सम प्रीति न जाहि बखानी।
जोगिन परम तत्व मय भासा। सत सुद्ध मन सहज प्रकासा।
हरि भगतन देखउ दोउ भ्राता। इष्टदेव इव सब सुखदाता।
रहे असुर छल जो नृप-भेषा। तिन प्रभु प्रकट काल-सम देखा।

( ७ ) स्मरण—जहाँ एक वस्तु या प्रसग को देखने, सुनने या सोचने से पिछली वैसी ही वस्तु या घटना की याद आ जाय; जैसे—उत्तर दिशा से याद उनको उत्तरा की आ गयी।

( ८ ) भ्रांतिमान—समानता के कारण एक वस्तु को निश्चयपूर्वक दूसरी समझ लेना ; जैसे।

बिल बिचारि प्रबिसन लग्यौ ब्याल सुंड मै ब्याल।
ताहू कारी ऊख भ्रम लियौ उठाइ उताल।

हाथी की सूड को भ्रम से साँप ने बिल समझा और साँप को हाथी ने भ्रम से ऊख समझा।

( ९ ) सदेह—जहाँ 'यह है या वह' कहकर सदेह प्रकट किया जाय, जैसे—

सारी बीच नारी है कि नारी बीच सारी है,
सारी ही की नारी है कि नारी ही की सारी है।

( १० ) अपन्हुति—जहाँ उपमेय को अस्वीकार करके उपमान की प्रतिष्ठा की जाय , जैसे—बधु न होय मोर यह काला। यहाँ 'बधु' (वालि) को स्वीकार न करके उसे 'काल' (उपमान) कहा गया है।

(११) उत्प्रेक्षा—जहाँ उपमेय मे उपमान मान ही लिया जाय; जैसे—बाला- कथन-श्रवण से मानो, बादल को करुणा आयी। मनु, मानो, जनु, जानो, इव, आदि इस अलकार के चिन्ह हैं।

( १२ ) अतिशयोक्ति—जहाँ उपमेय की ऐसी प्रशसा की जाय

जो लोक-सीमा से बाहर की हो जैसे—मुँह से फूल झड़ते हैं; ईद का चाँद हो रहे हो। दो उदाहरण और—

( क ) फन्नि फहर अति उच्च निसाना, तिन महँ अटकत बिबुध बिमाना।

( ख ) जो सुख भा सिय मातु मन देखि राम बरबेष।
सो न सकहिं कहि कल्प सत, सहस सारदा सेष।

पहले उदाहरण में झंडों की ऊँचाई बहुत ही बढ़ाकर कही गयी है। दूसरे में, सुख की बहुत अधिकता बतायी है। इसी प्रकार जहाँ शेष, शारदा, वेद, गणेश आदि का किसी बात का वर्णन करने में असमर्थ होना कहा जाय वहाँ भी अतिशयोक्ति अलंकार होता है।

( १३ ) दृष्टांत—जहाँ एक बात कह कर दूसरी से उसे सिद्ध किया जाय; जैसे—

भरतहिं होइ न राजमद बिधि-हरि-हर पद पाइ।
कबहुँ कि काँजी-सीकरनि छीर-सिंधु बिनसाइ॥

ब्रह्मा, विष्णु और महेश का पद पाकर भी भरत को गर्व नहीं हो सकता—इस कथन की सिद्धि, दूध का समुद्र काँजी ( खटाई ) की बूँदों से नहीं बिगड़ सकता—कहकर की गयी है।

(१५) व्याजस्तुति—जहाँ स्तुति से निंदा और निंदा से स्तुति की जाय, जैसे (क) स्तुति द्वारा निन्दा—

(क) नाक-कान बिनु भगिनी निहारी। छमा कीन्ह तुम धर्म बिचारी।

(ख) धन्य कीस जो निज प्रभु काजा। जहँ तहँ नाचहिं परिहरि लाजा।

(ख) निन्दा द्वारा स्तुति—

(क) स्वर्ग चढाये तै पतित, गग कहा कहुँ तोय।

(ख) जमुना तू अबिबेकनी कौन लियौ यह ढंग।
पापिन सों निज बन्धु को मान करावत भंग॥

(१६) विभावना—जहाँ कारण न होने पर भी कार्य होने या फल मिलने की चमत्कारपूर्ण कल्पना की जाय; जैसे—

बिनु पद चलै, सुनै बिनु काना।

(१७) व्यतिरेक—जहाँ उपमेय और उपमान को समान बताकर, उपमान की हीनता द्वारा उपमेय की श्रेष्ठता सिद्ध की जाय , जैसे—

जन्म सिंधु पुनि बन्धु बिष, दिन मलीन सकलंक।
सिय मुख समता पाव किमि चन्द बापुरो रंक॥

यहाँ उपमान चन्द्रमा की हीनता, खारी समुद्र से जन्मने, विष का भाई होने, दिन मे कातिहीन हो जाने तथा कलंकपूर्ण रहने, की बात कहकर, सीता के मुख की श्रेष्ठता सिद्ध की गयी है।

(१८) अत्युक्ति—किसी के दान, वीरता आदि का बहुत बढ़ा-चढ़ा का वर्णन करना , जैसे—

(क) जाचक तेरे दान ते भये कल्पतरु भूप।
(ख) इते उच्च सैलन चढ़े तुब डर अरि सकलत्र।
तोरत कंपित करन सों मुकुता समुझि नछत्र॥

(१९) विरोधाभास—जहाँ दो वस्तुओ का विरोध न होने पर भी विरोध बताया , जैसे—

देश पर जो मरते हैं, अमर होते हैं।

(२०) परिसख्या—किसी वस्तु, धर्म या गुण को सब स्थानों से हटाकर केवल एक स्थान पर बताना, जैसे—

केसन ही में कुटिलता, संचारिन मे संक।
लखो राम के राज मे इक ससि माँहि कलक॥

आशय यह कि राम के राज्य में कुटिलता, शंका और कलक ये अवगुण सब स्थानों से हटकर केवल बालो, संचारीभावो और चन्द्रमा मे ही रह गये हैं।

(२१) प्रतिवस्तूपमा—जहाँ उपमान और उपमेय वाक्यों का भिन्न भिन्न शब्दो द्वारा एक ही धर्म कहा जाय , जैसे—

भ्राजत भानु प्रताप सो, राजत धनु सो सूर—यहाँ दोनों वाक्यों का एक ही धर्म 'भ्राजत' और 'राजत' शब्दों द्वारा बताया गया है।

(२२) परिकर—जहाँ साभिप्राय विशेषण का प्रयोग हो, जैसे—

पिनाकपाणि महादेव को कुसुमायुध मैं करूँ अधीर—यहाँ 'पिनाक-पाणि' (कठोर धनुष हाथ मे लेनेवाले) और 'कुसुमायुध' (फूलो के तीर वाला) दोनों विशेषण साभिप्राय हैं।

(२३) परिकरांकुर—जहाँ विशेष्य साभिप्राय हो, जैसे—शेष न तुव गुन कहि सकै—सहस्रजीभवाला शेष भी गुणो के वर्णन मे असमर्थ बताया गया है।

(२४) पर्यायोक्ति—जहाँ कोई बात घुमा फिराकर कही जाय, जैसे—

सीता-हरन तात जनि कहेउ पिता सन जाइ।
जो मै राम तो कुल सहित कहहि दसानन आइ॥

मै रावण को मारूँगा—सीधे सादे शब्दों मे यह बात न कह कर राम ने घुमाकर कही है।

## छंद

रचना के दो रूप हैं—(१) गद्य (२) पद्य। गद्य मे व्याकरण के नियमों और वाक्य में शब्दों के निश्चित क्रम का विशेष ध्यान रखा जाता है। परन्तु पद्य मे वर्ण, मात्रा, गति और लय पर कवि की प्रधान दृष्टि रहती है। अतएव रचना के समय वर्ण, मात्रा और लय के नियमों का विशेष ध्यान रखना, उसे छंद-बद्ध करना कहलाता है। छंदनियमो के अनुसार लिखी गयी रचना पद्य कहलाती है। छंदबद्ध रचना अर्थात पद्य पढ़ने मे सुन्दर और कंठाग्र करने में सरल होती है। यही कारण है कि पद्य का आदर मानव के सभ्य होने के समय से आज तक बराबर होता आया है।

छन्द के दो प्रधान अंग हैं—(१) वर्ण (२) मात्रा। इसलिए छंद मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं—

(१) वर्णिक छंद या वर्ण वृत्त—जिन छन्दों की रचना में वर्णों या अक्षरों की सख्या और उन के लघु-गुरु होने का ध्यान रखा जाय जैसे—

कैसे मै रहूँगा हाय, शून्य लंकाधाम में। (१५ वर्ण)

(२) मात्रिक छंद—जिस छन्द की रचना में अक्षरों की मात्राओं का ध्यान रखा जाय और प्रत्येक पंक्ति मे मात्राएँ समान हों; जैसे—

जो घनीभूत पीड़ा थी (१४ मात्राएँ)
मस्तक मे स्मृति सी छायी (१४ मात्राएँ)

## गुरु-लघु

वर्णों और उनकी मात्राके लघु-दीर्घ होनेका पता उनके उच्चारण से लगता है। उच्चारण के अनुसार हिन्दी स्वरों के दो भेद किये जाते हैं—(१) ह्रस्व स्वर—जिनके उच्चारण मे थोड़ा समय लगे; जैसे अ, इ, उ ऋ। (२) दीर्घ स्वर—जिनके उच्चारण में ह्रस्व स्वर से दूना समय लगे, जैसे आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः।

स्वरों के इसी भेद के अनुसार मात्राओं के भी दो भेद हो जाते हैं—(१) लघु मात्राएँ—ह्रस्व स्वरो ( अ इ उ ऋ ) की मात्राएँ। (२) दीर्घ या गुरु मात्राएँ—दीर्घ स्वरो (आ ई ऊ ए ऐ ओ औ अं अ:) की मात्राएँ।

व्यजन की मात्रा उसमे मिले हुए स्वरके अनुसार या उसमें मिले हुए स्वर की मात्राके अनुसार होती है। क कि कु कृ वर्ण लघु होते हैं और का की कू के कै को कौ क कः दीघ या गुरु होते हैं। लघु मात्रा का चिन्ह 'I' है और दीर्घ या गुरु का 'S'। लघु की 'एक' और गुरु की 'दो' मात्राएँ गिनी जाती हैं।

कविता मे लघु-गुरु मात्राओं के ये नियम काम में आते हैं—

(१) अनुस्वार की मात्रा गुरु होती है, परन्तु चद्रबिंदु (ँ) की लघु। रग में ( र ) गुरु समझा जायगा लेकिन रँगना का ( रँ ) लघु होता है।

(२) सयुक्ताक्षरों के पहले आये हुए व्यंजनो का उच्चारण करते समय यदि लघु वर्ण पर जोर पड़े तो उसे 'गुरु' और जोर न पड़े तो 'लघु' समझना चाहिए। 'धन्य' मे 'ध' पर जोर पडता है इसलिए 'ध' की दो मात्राएँ गिनी जायँगी। पर 'कन्हैया' मे 'क' पर जोर नहीं पड़ता; अतः 'क' की मात्रा लघु रहेगी। इसी तरह कविना पढ़ते समय किसी लघु वर्ण या मात्रा पर जोर पड़े तो उसे गुरु मान लेना चाहिए और गुरु पर जोर न पड़े तो उसे लघु समझना चाहिए। 'धनुषजज्ञ जेहि कारन

होई—में 'जेहि' का 'जे' हल्के उच्चारण के कारण, गुरु मात्रा के रहते हुए भी, लघु समझा जायगा। इसी प्रकार नीचे के उदाहरण में 'यदि' का 'दि' लघु होते हुए भी दीर्घ समझा जायगा—

दुखित है धनहीन, धनी सुखी—
यह विचार परिष्कृत है यदि ।
मन ! युधिष्ठिर को फिर क्यों हुई
विभवता भव-ताप विधायनी ॥

(३) हलंत के पहले का अक्षर दीर्घ समझा जाता है और हलंत वर्ण की मात्रा नहीं गिनी जाती जैसे 'राजन्' मे 'ज' गुरु होगा और 'न्' की मात्रा नहीं रहेगी।

(४) लघु-गुरु का संक्षिप्त रूप 'ल' और 'ग' होता है।

## गति या लय

छन्द में मात्राओं या अक्षरों की संख्या का ध्यान रखना पड़ता है। इसके साथ-साथ प्रत्येक छन्द की एक लय या गति भी होती है। जिस छन्द की लय या गति ठीक होती है वह बड़े सुन्दर स्वर से गाकर पढ़ा जा सकता है। अतएव काव्य रचना करते समय इसका ध्यान रखना मात्रा या वर्ण की संख्या से अधिक आवश्यक है। उदाहरण के लिए—धन्य जनम जगतीतल तासू—इस में नियम के अनुसार १६ मात्राएँ हैं। यदि इस पंक्ति के शब्दों का क्रम इस प्रकार कर दिया जाय—तासू जनम जगतीतल धन्य–तब मात्राएँ तो वही १६ रहेगी, पर छन्द की लय बिगड़ जायगी। कवि जब भावमग्न होकर रचना करता है उस समय वह प्रत्येक पंक्ति की मात्राएँ गिनता नहीं चलता ; ऐसा होता तब तो तुलसी दास का आधा जीवन चौपाइयों की मात्रा गिनते ही बीत जाता। वास्तव मे छन्द के बार बार के उच्चारण से उसकी लय का अभ्यास हो जाता है और तब जो पंक्ति मुख से निकलती है उसकी मात्राएँ, वर्ण तथा उनका क्रम ठीक ही होता है।

## यति

छन्द के चरण के अन्त में पढ़ने वाले को विश्राम की आवश्यकता होती है। इसलिए छन्द की मात्राओं के अनुसार प्रत्येक चरण पूर्ण होना चाहिए। कभी कभी एक चरण की दो- एक मात्राएँ दूसरे मे पहुँच जाती हैं। ऐसे छन्दो में दो चरणों की मात्राओ के जोड़ के हिसाब से तो छन्द ठीक होता है पर पढ़ने के अन्त में पाठक के न रुकने के कारण उस मे दोष आ जाता है, जैसे—

दोउ समाज निमिराज रघु। राज नहाने प्रात।

ये दोहे छन्द के दो चरण हैं। पहले मे तेरह मात्राओं पर यति या विराम होना है, परन्तु तेरहवी मात्रा पूरी होती है 'रघु' के 'घु' पर। इससे 'रघुराज' शब्द को तोड़ कर पढना पडता है। अतएव यहाँ 'यति भग' दोष आ गया है।

## गण

वर्णिक अक्षरो की रचना मे सुविधा के लिए तीन-तीन अक्षरों का एक-एक समूह बना दिया गया है जिसमे लघु-गुरु मात्राओं का क्रम भिन्न होता है। प्रत्येक समूह 'गण' कहलाता है। लघु-गुरु मात्राओं के क्रम को ध्यान में रखकर 'गण' आठ माने गये हैं। इनके नाम हैं—यगण, मगण, तगण, रगण, जगण, भगण, नगण, और सगण। इन आठों गणों की मात्राएँ याद रखने के लिए इन नामों का पहला अक्षर लेकर एक सूत्र बना लिया गया है—

यमाताराजभानसलगा
ISSSISIIIS

इस सूत्र के अन्त में 'ल' से 'लघु' और 'ग' से 'गुरु' मात्राएँ समझनी चाहिएँ। शेष आठ वर्ण आठ गणो के नामो के पहले अक्षर हैं। इससूत्र की सहायता से प्रत्येक 'गण' की मात्रा निकालने का नियम बहुत सरल है। जिस गण के अक्षरों का क्रम जानना हो उसके नाम का एक और उस के आगे के दो अक्षर लेकर तीन अक्षरों का एक शब्द बना लें। इस शब्द में मात्राओं का जो क्रम होगा वही उस गण की मात्राओं का समझना

चाहिए। उदाहरण के लिए 'यगण' की मात्राएँ जानने के लिए 'यमाता' ( ISS ), तगण की मात्राएँ जानने के लिए 'ताराज' ( SSI ) और अन्त में 'सगण' के लिए 'सलगा' ( IIS ) शब्द बनते हैं।

## शुभाशुभवर्ण एवं दग्धाक्षर

हिन्दी के स्वरो और व्यंजनों मे कुछ 'शुभ' माने जाते हैं और कुछ 'अशुभ'। सब स्वर शुभ माने जाते हैं और व्यंजनो मे क ख ग घ च छ ज त द ध न य श स—ये 'शुभ' माने जाते हैं और शेष 'अशुभ'। अशुभ अक्षरों में भी झ भ र ष ह बहुत 'अशुभ' समझे जाते हैं। इसलिए इन्हें 'दग्धाक्षर' कहते हैं। छन्द के पहले शब्द का इनसे आरंभ होना एक दोष समझा जाता है। परन्तु यदि अशुभ अक्षरो से किसी देवता का नाम हो अथवा वह अक्षर दीर्घ होकर आये तो दोष मिट जाता है।

## सख्यासूचक शब्द

कविता में एक, दो, तीन, चार, आदि संख्याएँ न लिखकर प्रायः सख्यासूचक शब्दों का प्रयोग किया जाता है। बीस तक की सख्याओं के लिए ये शब्द आते हैं—

शून्य—आकाश। एक—पृथ्वी, चन्द्रमा, आत्मा। दो—आँख, पक्ष, हस्त, सर्पजिह्व, नदीकूल। तीन—गुण, राम, काल, अग्नि, शिव-नेत्र, ताप। चार—वेद, वर्ण, आश्रम, ब्रह्मा के मुख, युग, धाम, पदार्थ। पाँच—कामशर, इन्द्रिय, शिवमुख, पाडव, गति, प्राण। छः—ऋतु, राग, रस, वेदाग, शस्त्र, ईति, कार्तिकेयमुख, भ्रमर के पद। सात—मुनि, स्वर, पर्वत, समुद्र, लोक, सूर्य के घोड़े, वार, पुरी, गोत्र, ताल। आठ—सिद्धि, वसु, प्रहर, नाग, दिग्गज, योग। नौ—भूखड, अंक, निधि, ग्रह, भक्ति, नाड़ी। दस—दिशाएं, अवतार। ग्यारह—शिव। बारह—सूर्य। तेरह—नदी, भागवत, किरण। चौदह—भुवन, रत्न, मनु, विद्या। पंद्रह—तिथि। सोलह—शृंगार, सस्कार, कला। सत्रह—( कोई शब्द नहीं हैं )। अठारह—पुराण। उन्नीस—( कोई शब्द नहीं है ) बीस—नख।

ऊपर विभिन्न संख्याओं के लिए जो शब्द लिखे गये हैं, उनके स्थान पर पर्यायवाची शब्दों से भी काम निकल सकता है; जैसे चन्द्रमा के लिए शशि, इन्दु, मयंक आदि।

कविता में अंकों की गति दाहिनी ओर से बाईं ओर को होती है। १९४९ लिखने के लिए निधि (९) वेद (४) ग्रह (९) चन्द्र (१) लिखेंगे।

## तुक

छन्द की पंक्तियों के अंतिम शब्दों में समान स्वर होना 'तुक' कहलाता है। तुक वाले छन्दों को 'तुकांत' कहते हैं। जिन छन्दों में तुक न हो वे 'अतुकांत' कहलाते हैं।

## मुख्य वर्णिक छंद

यहाँ प्रत्येक छंद का एक चरण दिया गया है। शेष तीन चरण भी इसी तरह होंगे।

भुजग—य य य और अंत में ।ऽ—ग्यारह वर्ण।

महामोद-भागीरथी-सी भरी।

उपेंद्रवज्रा—ज त ज और अंत में ऽऽ—ग्यारह वर्ण।

तिन्हे न रामानुज बंधु जानौ।

इंद्रवज्रा—त त ज और अंत में ऽऽ—ग्यारह वर्ण।

भागीरथी रूप अनूप कारी।

द्रुतविलंबित—न भ भ और र—बारह वर्ण।

दिवस का अवसान समीप था।

वंशस्थ—ज त ज और र—बारह वर्ण।

मदीय प्यारी अयि कुंज-कोकिला।

भुजंगप्रयात—चार यगण—बारह वर्ण।

पियै एक हाला गुहै एक माला।

वसंततिलका—त भ ज ज और ऽऽ—चौदह वर्ण।

योगीश ईश तुम हौ यह योगमाया।

मालिनी—न न म य और य—पद्रह अक्षर।

जब विरह विधाता ने सृजा विश्व मे था।

मंदाक्रांता—म भ न त त और SS—सत्रह वर्ण।

जो दो प्यारे हृदय मिल के एक ही हो गए हैं।

शिखरिणी—य म न स भ और IS—सत्रह वर्ण।

अनूठी आभा से सरस सुषमा से सुरस से।

शार्दूलविक्रीड़ित—म स ज स त त और S—उन्नीस वर्ण।

काले कुत्सित कीट का कुसुम मे कोई नही काम था।

मदिरा सवैया—सात 'भगण' और अत में एक 'गुरु'—बाईस वर्ण।

तोरि सरासन सकर को सुभ सीय स्वयंबर माँझ बरी।

मत्तगयद—सात 'भगण' अंत मे दो 'गुरु'—तेईस वर्ण।

जान गए सब लोग इसे अब है तुममे कितनी निठुराई।

सुन्दरी—आठ सगण और अत में एक 'गुरु'—पच्चीस वर्ण।

सुख शाति रहे सब ओर सदा,

अविवेक तथा अघ पास न आवे।

घनाक्षरी या मनहरण कवित्त—इकत्तीस वर्ण; अतिम वर्ण गुरु; १६ वे वर्ण पर यति—

सच्चे हो पुजारी तुम, प्यारे प्रेम-मंदिर के,

उचित नहीं है तुम्हें, दुःख से कराहना।

रूप घनाक्षरी—बत्तीस वर्ण, १६-१६ पर यति, अत मे एक लघु—

तुलसी सराहैं ताको भाग सानुराग सुर,

बरषै सुमन जय जय कहैं टेरि-टेरि।

## प्रमुख मात्रिक छन्द

आँसू—१४ मात्रा। जो घनीभूत पीडा थी, मस्तक मे स्मृतिसी छाई

चौपई—१५ मात्रा, अंत में गुरु-लघु।

उपवन में अति भरी उमंग, कलिया खिलती हैं बहुरंग।

चौपाई—१६ मात्रा, अंत में ऽ । न हो ।

हाथ लिए बल्कल सुकुमारी, ठाढ़ भई लाज उर भारी ।

मौलिक—१६ मात्रा ।

जगत के दो दिन के ओ अतिथि, प्रेम करना है पापाचार

ग्रथि—१९ मात्रा । आजकल के छोकरे सुनते नहीं ।

अरिल्ल—२१ मात्रा । स्याम कठोर न होहु हमारी बार को ।

विहारी—२२ मात्रा । तो मेरी चिता रक्त की धारा से बुझाना ।

लावनी—२२ मात्रा, अत मे 'गुरु' ।

मुख-लाली रखलो ऐ माई के लालों ।

रोला—२४ मात्राएँ—११ वीं पर यति ।

शांत नदी का स्रोत बिछा था अति सुखकारी ।

दिग्पाल—२४ मात्रा, १२वीं पर यति ।

प्रहलाद जानता था तेरा सही ठिकाना ।

गीतिका—२६ मात्रा,१४वीं पर यति. अन्त मे लघु गुरु ।

होइ जाको भाव तैसो, तुमहिं ते फल पावहीं ।

विष्णुपद—२६ मात्रा, १६वीं पर यति, अन्त में गुरु ।

मेरे कुँवर कान्ह बिन सब कछु वैसेहि धरयौ रहै ।

हरिगीतिका—२८ मात्रा, १६वी पर यति, अंत मे गुरु-लघु-गुरु-

रोती फिरेंगी कौरवो की नारियाँ कुछ काल मे ।

चवपैया—३० मात्रा, १०वीं और १८वीं पर यति, अन्त मे गुरु ।

माता पुनि बोली, सो मति डोली, तजहु तात यह रूपा ।

वीर—३१ मात्रा, १६वीं पर यति, अन्त में गुरु-लघु ।

मुझको भी उस पार लगाना, जगती-नौका-खेवनहार ;

त्रिभगी—३२ मात्रा ; १०वीं, १८वीं और २६वीं पर यति, आदि में जगण न हो, अन्त मे गुरु रहे ।

पिय जियहिं रिझावै दुखनि भजावै विविध बजावै गुण गीता ।

बरवै—१९ मात्रा, १२वीं पर यति, अन्त मे लघु।

सीय-मुख सरद कमल जिमि किमि कहि जाय।

दोहा—२४ मात्रा, १३वीं पर यति, आदि में जगण नहीं रहना चाहिए; अन्त में लघु होता है।

बतरस-लालच लाल की, मुरली धरी लुकाइ।

सोरठा—२४ मात्रा, ११वीं पर यति, 'दोहे' का उल्टा।

मुरली धरी लुकाइ, बतरस-लालच लाल की।

(क) उल्लाला—२९ मात्रा, १३वीं पर यति।

भारतेंदु हरिचद्र की उज्जवल कीर्ति सदा रहे।

(ख) उल्लाला—२८ मात्रा, १५वीं पर यति।

वह जाति ध्वस हो जायगी जो दिन दिन है छीजती।

छप्पय—६ पंक्तियाँ होती है; प्रथम चार चरणों में रोला और अन्तिम दो मे उल्लाला (ख) रहता है।

कुंडलिया—६ पक्तियाँ होती हैं। पहले दो चरण दोहे के और अन्तिम चार रोला छद के रहते हैं। दोहे की दूसरी पक्ति का अन्तिम चरण, रोला की पहली पक्ति के आरभ मे रखते हैं। पाँचवें चरण के आरभ मे कवि का नाम रहता है।

## काव्य-रचना

विद्यार्थी जीवन में कवियों और लेखको की सुन्दर रचनाओं से जब हम प्रभावित होते है, स्वभावतः यह इच्छा मन में जन्मती है कि उन्हीं की तरह सुन्दर कविता हम भी किया करें। छोटे-मोटे कवि-सम्मेलन में जाकर और अपने समवयस्क मित्रो या बालकों को कविता-पाठ करते देख कर यह इच्छा और भी तीव्र हो जाती है। हममें से कुछ ऐसे हैं जो इस इच्छा को कार्य-रूप देने का प्रयत्न भी करते हैं। किसी एकात कोने मे, मकान की सबसे ऊपर कोठरी, में बाग-बगीचे में या शात नदी-तट पर जाकर धीरे-धीरे गुनगुनाते हुए, पेंसिल या फाउटेनपेन से दो-चार पक्तियाँ वे लिखते और बार बार इन्हें पढ़ कर स्वयं ही आनन्द-सागर में गोते खाने लगते हैं। यदि कविता पूर्ण हो गयी तो निष्टतम मित्रों को दिखाने और उनसे प्रशसा पाने की चाह मन में

पैदा होती है। पश्चात्, अपनी रचना वे छपने भेजते हैं। दो-तीन महीने तक जब उनकी कविता पत्र में छपती नहीं तब धीरे-धीरे निराश हो जाते हैं और एक दिन कविता करने की इच्छा का अंत हो जाता है।

प्रश्न यह है कि कविता करने की इच्छा रखने वाले ये विद्यार्थी अपने प्रयत्न में सफल क्यों नहीं हुए! इनकी रचनाएँ ऐसी सुन्दर क्यों न हो सकीं कि पत्र-सपादक उन्हें पसंद करते, अपने पत्रों मे छापते? बड़े-बूढे इसका यह उत्तर देंगे—भाई, कवि बनते नहीं, पैदा होते हैं। उनका आशय यह है कि कोरा अभ्यास करने से कोई व्यक्ति कवि नहीं हो सकता। कविता वही कर सकता है जिसे ईश्वर ने विशेष गुण प्रदान किये हैं, जिसमें दैवी प्रतिभा है।

कहने-सुनने में यह बात ठीक है, भली मालूम होती है। परंतु हमारे विद्यार्थियों को इससे निराश होने को आवश्यकता नहीं है और न वे यह जानने के लिए हाथ पर हाथ धरे बैठे ही रहें कि हममें ईश्वर प्रदत्त प्रतिभा है या नहीं। कविता करना सरस्वती की सबसे बड़ी साधना है, तपस्या है। साधारण इच्छा तो थोड़े प्रयत्न और अभ्यास से पूरी हो जाती हैं। काव्य-रचना मे कुशल होने के लिए बहुत ही सच्ची लगन, बहुत ही सच्चा अभ्यास और अध्यवसाय चाहिए। सच्ची लगन से मतलब यह है कि मार्ग मे आने वाली बाधाओ की चिंता न करके हम बराबर आगे बढ़ते रहें। ईर्ष्यालु प्रकृति के मित्र हमारी काव्य-रचना-कामना की सूचना पाकर हँसी उड़ायेंगे, फबतियाँ कसेंगे, निरुत्साहित करेंगे, परन्तु हमें उनकी परवाह नहीं करनी है। उनके विरोध की परवाह न करके अगर हम आगे बढ़ सकें तो निश्चय ही हमारी लगन सच्ची समझी जायगी।

सच्चे अभ्यास से आशय यह है कि शांत चित्त से रचना की जाय, बार बार उसे पढ़ कर भाव और भाषा मे संशोधन और सस्कार किया जाय। अध्यवसाय का तात्पर्य है साहित्य के सुन्दर ग्रंथों का नियमित रूप से इस तरह अध्ययन करना जैसे सच्चे पुजारी नियम के साथ धर्म-ग्रंथों का पठन-पाठन और मनन किया करते है। साहित्य-शास्त्र और कवि-कर्म के सबध में जो पुस्तके लिखी गयी हैं उन्हें समय-समय पर पढ़ना और उनमें बतायी गयी बातों को ध्यानपूर्वक अपनाना

-कवि बनने की इच्छा रखने वाले के लिए आवश्यक है। इस समय वे यह भी ध्यान रखें कि ससार के अधिकाश बड़े कवि दो-चार महीनों के प्रयत्न से ही प्रसिद्धि नहीं पा सके, दस-दस और बीस-बीस साल तक ईमानदारी और लगन के साथ सरस्वती की साधना में लगे रहने पर ही उन्हे अभीष्ट सफलता प्राप्त हुई। अतः सबसे पहले आपके मन में कवि बनने की इच्छा जब पैदा हो तो एकात मे बैठकर, हृदय पर हाथ रखकर अपनी आत्मा से पूछिए—दस-पॉच वर्ष तक लगातार तपस्या करने को आप तैयार हैं? आपकी शारीरिक, मानसिक और पारिवारिक स्थिति इस योग्य है कि आप निश्चिंत रहकर सरस्वती-साधना मे लगे रह सकें? आप मे इतनी दृढ़ता है कि दो चार महीने तक असफल होने पर भी आप निराश न हों? यदि आत्मा इन प्रश्नों का उत्तर स्वीकारात्मक देती है, तब अपने को भाग्यशाली समझिए और विश्वास कर लीजिए कि सरस्वती का सपूत कहलाने की प्रतिभा या दैवी शक्ति आपमें उसी तरह है जैसे छोटे बीज में वट का विशाल वृक्ष पैदा कर देने को। आवश्यकता केवल उचित ढंग से कार्य आरंभ कर देने की है। काव्य-रचना के पूर्व आपको नीचे लिखी बातें ध्यान में रखनी चाहिए—

१. कविता करने का विचार जिस दिन मन में पैदा हो उसी दिन दो कापियाँ बना लीजिए। एक आपकी डायरी का काम देगी और दूसरी में प्रतिष्ठित कवियों की चुनी हुई वे पंक्तियाँ लिखते चलिए जो आपको सुन्दर लगती हैं और बहुत पसन्द हैं। डायरी में आप अपने विचार लिखते चलें। डायरी प्रतिदिन भरना जरूरी नहीं है; पर यह बहुत आवश्यक है कि आप उसे अपने पास रखें हर समय।

२. छंद और अलंकार की साधारण शिक्षा लेने के पश्चात् आप अपनी रुचि के सम्बन्ध मे इतना मालूम कीजिए कि किस ढंग की कविता आपको पसन्द है। आरंभ मे आप ऐसे छन्द चुनें जिनमे मधुर लय हो। इन छन्दों में लिखी हुई कविता आप बार-बार पढ़िए। हर समय

गुनगुनाते रहने से उस छन्द की लय से आपका ठीक-ठीक परिचय हो जायगा। कान उसके अभ्यासी हो जायँगे। अपने चुने हुए छन्द के नियम अब आप ध्यान से समझ लें। मान लीजिए, आपने 'द्रुतविलम्बित' छन्द चुना है। यह संस्कृत का छन्द है। इसका उदाहरण—

मन रमा रमणी रमणीयता।
। । । ऽ । । ऽ । । ऽ । ऽ

इस पंक्ति मे अक्षरों का क्रम समझ लीजिए और किसी भी सीधी-सादी बात को फुरसत के समय इसी छंद मे ढालने का प्रयत्न कीजिए। छत पर आप बैठे हैं. बादल आकाश में उड रहे हैं, ठंडी-ठंडी हवा चल रही है, कभी-कभी बिजली चमक जाती है और पानी बरसने ही वाला है। बस, कागज-पेंसिल हाथ मे लीजिए और लिखिए—

उड रहे नभ मे जलमेघ हैं। चल रही यह शीतल वायु भी॥
चमकती बिजली गगनाक मे। बरसता जल है अब देखना॥

इसी तरह किसी भी विषय पर दो-चार वाक्य गद्य में लिख कर छंद बनाने का प्रयत्न कीजिए।

३ लगभग पच्चीस साधारण विषयों पर चार-चार पंक्तियाँ बनाने के पश्चात्, पच्चीस सूक्तियों का संकलन कीजिए और उनका सारांश गद्य में लिख लीजिए। अथवा दूसरे कवियो की कविताओं का भावार्थ दो चार वाक्या मे लिख लीजिए। अब इसे अपने चुने हुए छंद मे ढालिए। डा० रामकुमार वर्मा की कविता है—

क्या शरीर है? शुष्क धूल का थोडा सा छविजाल।
इस छवि मे ही छिपा हुआ है, वह भीषण कंकाल॥

भावार्थ—अपने जिस शरीर को मनुष्य सुंदर समझता है जिस पर वह गर्व करता है, वह धूल से बना है और धूल ही मे एक दिन मिल जायगा। कविता के लिए वह सुन्दर विषय है। आप कापी पर लिख सकते हैं—

अति मनोरम है रमणीयता, न पड़ते पग भूमि कठोर पै।
समझ ले मन सत्य विधान तू, यह कभी रज मे मिल जायगा॥

४. लगभग पच्चीस कविताओ का साराश लेकर छंद बनाने के पश्चात् अपनी रचनाओं का स्वयं सशोधन कीजिए। कहो आपको शब्द खटकेंगे, कहीं आप भाव बदलना चाहेगे, कहीं भाषा कर्ण-कटु जान पड़ेगी। इन सब दोषों को सुधार लीजिए। अब चुनी हुई दो-चार रचनाएँ लेकर अपने अध्यापक या अन्य शुभचिंतक को दिखलाइए। जो संशोधन वे करें उन्हें ध्यान से समझिए और आगे रचना करते समय उनसे लाभ उठाइए। ध्यान रहे कि किसी कुशल शिक्षक या शुभचिंतक से ठीक कराए बिना आप कोई रचना किसी को न दिखाएँ, घनिष्ट मित्रो से भी इसकी चर्चा न करें। शुभचिंतक से परामर्श लेने के बाद छोटी-छोटी कहानियाँ पद्य-बद्ध कीजिए। बच्चों के लिए सरल भाषा मे कविता करना भी इस समय उपयोगी होगा।

५. अब आप इस योग्य हो गये हैं कि पत्रों में प्रकाशित होने योग्य कविताएँ लिख सकें। इस समय आप चुने हुए सुदर काव्यो का अध्ययन आरभ करे। उनके जो स्थल प्रिय लगें, उनकी विशेषताएँ गद्य में आप लिखें, जो पंक्तियाँ आपको प्रिय हों नोट करके उन्हे कंठाग्र करें। इसमें आपको नियमित रूप से एक वर्ष का समय देना चाहिए। स्मरण रहे, आपका यह अध्ययन भावी काव्य कुशलता रूपी प्रासाद की नींव होगी। नीव जितनी गहरी होगी, प्रासाद उतना ही स्थायी होगा। इसलिए अध्ययन ठोस रहना ही उपयोगी है। अब आप साधारण कथात्मक विषयों पर रचना कीजिए, किसी योग्य व्यक्ति से सशोधन कराकर बालोपयोगी पत्र में भेजिए। रचना प्रकाशित होगी और आपको काम आगे बढ़ाने का प्रोत्साहन मिलेगा।

---